# ज्ञानवार्ता

छठा संस्करण | अंक : 6 | वर्ष : 2015

Jammu Airport

Kashmir Railway

NH Jammu - Kashmir

Katra Railway Station

## नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू

# 30 जून 2015 को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति जम्मू की छमाही बैठक की गतिविधियाँ

# अध्यक्ष की कलम से .....

**अध्यक्ष, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति**
**एवं निदेशक,**
**सीएसआईआर–भारतीय समवेत औषध संस्थान, जम्मू**

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू की वार्षिक राजभाषा गृह पत्रिका 'ज्ञानवार्ता' के छठवें अंक के प्रकाशन पर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। आप सबको मंगलकामनाएं!

नराकास जम्मू के सभी केन्द्रीय कार्यालयों/बैंकों/उपक्रमों में राजभाषा नीति कार्यान्वयन एवं प्रयोग का कार्य प्रशंसनीय है। हिन्दी आज के सन्दर्भ में वैश्वीकरण की एक ऐसी धारणा है जिसका मूलाधार बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद है। सूचना प्रौद्योगिकी, तकनीकी उन्नति प्रत्येक देश की राष्ट्रीय अस्मिता, भाषा संस्कार, बोलियां भाषाएं, लोक-संस्कृति सब कुछ अमेरिकीकरण की प्रक्रिया में अपनी निजता खो चुके हैं। हम भी वैश्वीकरण के वहाव में बहकर नव विकास के नाम पर वैश्विक गाँव, ग्लोबल गाँव का अंग बनते जा रहे हैं। भूमण्डलीकरण और वैश्वीकरण दोनों ही आज ग्लोबलाइजेशन, ग्लोबीकरण के लिए सर्व स्वीकृत शब्द हैं। इस दिग्भ्रमित स्थिति ने हमारे साहित्य और कलाओं को व्यापक रूप में प्रभावित किया है। जबकि भारतीय संस्कृति का चरित्र सदैव से ही सर्वग्राही तथा सर्वसमावेशी रहा है।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति वर्ष 2014-2015 के लिए क्षेत्रीय राजभाषा पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। समिति के सभी सदस्य कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन उत्कृष्ठ एवं के निष्ठावान प्रयास के लिए धन्यवाद। हिन्दी को पूर्ण रूप से सशक्त बनाने के लिए हमारे प्रयास जारी हैं और हमें आपके अपेक्षित सहयोग की अपेक्षा है। राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार की दिशा में ज्ञानवार्ता का प्रकाशन एक सराहनीय प्रयास है। ऐसी पत्रिकाएं सार्थक भूमिका निभाती हैं, ज्ञानवार्ता निरन्तर प्रकाशन की दिशा में अग्रसर है।

हमारा प्रयास है कि हिन्दी भाषा का कार्यान्वयन, तकनीकी दृष्टिकोण से हो जिसके लिए नगर समिति की वेबसाइट www.tolicjammu.org पर समिति के कार्यान्वयन की उपलब्धियों को देखा जा सकता है साथ ही सदस्य कार्यालयों में पत्राचार तकनीकी दृष्टि से ई-मेल के माध्यम से किया जा रहा है। यह नराकास, जम्मू की महत्वपूर्ण उपलब्धि ही है।

ज्ञानवार्ता के प्रस्तुत अंक में लेखकों/रचनाकारों की लेखन कला एवं उनकी साहित्यिक अभिरूचि को उजागर करने के साथ-साथ हिन्दी को सर्वव्यापी व सर्वग्राही बनाने में हिन्दी पत्रिकाएं सशक्त माध्यम होती हैं।

ज्ञानवार्ता के प्रकाशन में डॉ. अमर सिंह, मुख्य संपादक व श्री राजेश कुमार, हिन्दी टंकक ने श्रमपूर्वक अपने दायित्वों का निर्वाहन किया है साथ ही संपादक मंडल के सभी सहयोगी बंधुओं/लेखकों/रचनाकारों को हार्दिक बधाई।

ज्ञानवार्ता के उज्ज्वल भविष्य के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

राम विश्वकर्मा

डॉ. राम विश्वकर्मा

# संपादकीय....

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू की राजभाषा गृह पत्रिका **'ज्ञानवार्ता'** का छठवां अंक आपको समर्पित करते हुए मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। यह अंक एक नए कलेवर के साथ प्रस्तुत है। पत्रिका का उद्देश्य हिन्दी में लेखन शैली की प्रवृत्ति व तकनीकी शैली को प्रोत्साहन देना तथा अभिनव उपयोगी बौद्धिक जानकारी को हिन्दी माध्यम से सर्व सुलभ कराना है। पत्रिका में महत्वपूर्ण लेखों का संकलन किया गया है।

भाषा प्रयोक्ता की सोच उसके सामाजिक सन्दर्भो तथा परिवेशों को उद्घाटित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत जैसे बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र के सन्दर्भ में भाषा का समाज सापेक्ष अध्ययन और भी सार्थक सिद्ध होता है। भाषा और साहित्य का क्षेत्र भी भूमण्डलीयकरण स्थितियों से अलग नहीं है। भूमण्डलीकरण ने आर्थिक विकास की तीव्रगामी पूरी दुनिया में गति तेज की है। सूचना क्रान्ति का जो विस्फोट किया है, वह सब अंग्रेजी भाषा के माध्यम से हुआ इंटरनेट और कम्प्यूटर ने औद्योगिक विकास में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उनका माध्यम अंग्रेजी ही रहा। वैश्वीकरण जिस प्रकार एकल संस्कृति, (मोनो-कल्चर) का विकास कर रहा है, भाषा की दृष्टि से भी उसी प्रकार समस्त विश्व को अंग्रेजीकरण की प्रक्रिया में ढाल रहा है। जिससे विश्व की अनेक भाषाओं के सामाने अस्तित्व का संकट आ खड़ा है।

भाषा का लिखित स्वरूप हमें एक नयी श्रृजनात्मक क्षमता प्रदान करता है। लिपि के बिना भाषा के विकास का कोई आधार नहीं हैं। भाषा में ही हमारी ज्ञान शक्ति का आधार स्थित है। इस तरह भाषा, ज्ञान और लिपि का आपस में गहरा संबंध है। लिपि के माध्यम से भाषा-ज्ञान में प्रवेश कराया जाता है। आज रोमन लिपि का अनेक देशों में प्रचार दिखता है। आज देवनागरी की कंप्यूटर के लिए उपयुक्तता साबित हो रही है।

समिति के कार्य-कलापों में समय-समय पर जो दिशा-निर्देश एवं मार्गदर्शन संस्थान के निदेशक एवं अध्यक्ष, नराकास, जम्मू श्रद्धेय डॉ. राम विश्वकर्मा जी व सभी सदस्य कार्यालयों से प्रोत्साहन एवं सहयोग प्राप्त हुए उनके प्रति आभार सहित धन्यवाद व्यक्त करता हूँ। कुल मिलाकर यह श्रम कितना सार्थक हुआ, इसका निश्चय पत्रिका की उपयोगिता करेगी। ज्ञानवार्ता की त्रुटियों के संदर्भ में पाठकों, विद्वानों की सम्मतियाँ पाकर प्रसन्नता होगी। इस रचनात्मक स्पर्धा में विद्वान तथा जागरूक लेखकों ने बड़ी संख्या में हिस्सा लिया और अपने उत्कृष्ट लेख एवं रचनाएं भेजी। इस अंक के लिए लेखों का चयन, संशोधन व गुणवत्ता युक्त बनाने में अध्यक्ष महोदय एवं स्वयं व संपादक मंडल की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। टंकण कार्य के लिए श्री राजेश कुमार, हिन्दी टंकक ने सहयोग प्रदान किया है। मैं उनका हृदय से आभार सहित धन्यवाद करता हूँ।

**(डॉ. अमर सिंह)**
**सदस्य-सचिव, नराकास, जम्मू**

## 27 जनवरी 2015 को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति जम्मू की छमाही बैठक की गतिविधियाँ

# 9–10, जून 2015 को राजभाषा सम्मेलन / यूनिकोड/कंप्युटर प्रशिक्षण कार्यक्रम की गतिविधियाँ

# अनुक्रमणिका


| क्रमांक | लेख | लेखक |
|---|---|---|
| 1. | आयुर्वेदिक चिकित्सा : मधुमेह समस्या में प्रयोग किये जाने वाले कुछ औषधीय पौधे | डॉ. बिक्रमा सिंह |
| 2. | महिला अधिकार एवं सुरक्षा | रामेश्वर लाल मीना |
| 3. | भाषा और अस्मिता | आनंद कुमार सौरभ |
| 4. | गीता पर तिलक, रामनुज एवं गांधी का मत | डॉ. मंजू उपाध्याय द्विवेदी |
| 5. | दलित साहित्य के सरोकार | ज्योति रानी |
| 6. | डाक्टर पेशे में लिप्त स्वार्थ | मुक्ति शर्मा |
| 7. | प्रसाद का मूल्यपरक जीवन-दर्शन | डॉ. मिथिलेश दीक्षित |
| 8. | प्रधानमंत्री मोदी जी की कविताओं में दृष्टि, दिशा और दर्शन | डॉ. मिथिलेश दीक्षित |
| 9. | अपने-अपने चेहरे उपन्यास में संवेदनहीनता के कारण : अर्थ एवं स्वार्थ | पूजा शर्मा |
| 10. | सत्ता और स्वाधीनता के लिए स्त्री संघर्ष | डॉ. गीता मीना |
| 11. | दहेज | डॉ. गीता मीना |
| 12. | स्त्री प्रश्नों पर एक विहंगम दृष्टि-रह गई दिशाएँ इस पार। | रजनी कुमारी |
| 13. | हकलाना (वाक् विकार) : एक संक्षिप्त परिचय | शालिनी अग्रवाल |
| 14. | आत्म विमोह : एक परिचय | अनुजा सिंह, डॉ.राजनाथ भट्ट |
| 15. | संघर्षमय स्त्री की गाथा-कस्तूरी कुण्डल बसै | निशा वर्मा |
| 16. | दलित साहित्य आन्दोलन एवं दलित समाज | एम.पी.सिंह |
| 17. | गीतांजलि श्री की कहानियों में बिखरते पति | रजनी शर्मा |
| 18. | नक्सलवाद : एक समस्या के रूप में | सोनिया गुप्ता |
| 19. | लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और पंचायतीराज | डॉ. रामेश्वर लाल मीणा |
| 20. | द्वादशी महाव्रत | श्री कृष्ण निर्मल |
| 21. | भारतीय समाज एवं स्त्री जीवन की गाथा | भगवती देवी |
| 22. | ''भूमंडलीकरण''-पूँजीवादी विकृतियों की उत्पादक | संजीत सिंह |
| 23. | स्टिकर : संवदेना और सरोकार | नरेश कुमार |
| 24. | नारी का कैसा हो वसन्त | डॉ. मिथिलेश दीक्षित |
| 25. | 'जूठन' दलित उत्पीड़न का दस्तावेज | विजय कुमार |
| 26. | समस्या का निपटारा | राजेन्द्र कुमार च्रोंगू |
| 27. | रेल लाइन का भूत | राजेश जोशी |
| 28. | चींटी और सूरज | राजेश जोशी |
| 29. | स्वयं प्रकाश के 'पार्टीशन' कहानी संग्रह में साम्प्रदायिका के दुष्परिणाम | सुनील मंगोत्रा |
| 30. | लोक कलाओं का विलुप्तिकरण 'स्वांग' कहानी के संदर्भ में | वन्दना शर्मा |
| 31. | दो पाटों के बीच बंटी | ज्योति शर्मा |
| 32. | उर्मिला शिरीष की कहानियों में बदलते पिता-पुत्र सम्बन्ध | शाम सिंह |
| 33. | जिन्दगी | सुनीता आनंद |
| 34. | माँ | |
| 35. | इंसान | |
| 36. | संजीव कृत ''सर्कस'' उपन्यास में सामाजिक समस्याएँ | रूचिका शर्मा |
| 37. | जम्मू-कश्मीर का हिन्दी साहित्य : ऐतिहासिक संदर्भ | अशोक कुमार |
| 38. | बोतल संस्कृति | डॉ. कु0 मालती जैन |
| 39. | लोक | डॉ. शिवशंकर मिश्र |
| 40. | ब्रज की लोकोक्तियाँ | डॉ. शिवशंकर मिश्र |
| 41. | कौन चुका पायेगा कीमत.....? | श्री कृष्ण निर्मल |
| 42. | हिन्दी साहित्य में समस्यापूर्ति परक रचनाएँ | डॉ. भारतेन्दु कुमार पाठक |
| 43. | देवनागरी लिपि : विकासक्रम एवं प्रासंगिकता | डॉ.हरीश कुमार सेठी |
| 44. | भारत एवं विश्व की सभ्यता और संस्कृति में समन्वय | विनीत कुमार |

**वर्ष : दिसम्बर, 2015 अंक : छठवां वार्षिक गृह पत्रिका**


## संरक्षक

डॉ. राम विश्वकर्मा

निदेशक, आइ.आइ.आइ.एम. एवं अध्यक्ष

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू

## प्रधान संपादक

डॉ. अमर सिंह

वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी एवं सचिव

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू

## संपादक मंडल

1. श्री अब्दुल रहीम
2. श्री पंकज बहादुर
3. श्री जगदीश लाल
4. श्री जॉनसन गिल
5. श्री बीरेन्द्र सिंह
6. श्री फूल सिंह

## सहयोग

**श्री राजेश कुमार (कंप्यूटर हिन्दी टंकक)**


**नोटः**

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। नराकास जम्मू व संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

**संयोजक संपर्क सूत्र :** नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू

**सीएसआईआर–भारतीय समवेत औषध संस्थान**

**नहर मार्ग, जम्मू तवी–180 001 (भारत)**

**दूरभाष :** 0191–2584999 **फैक्स :** 0191–2586333

E-mail : amarsingh@iiim.ac.in; website : www.tolicjammu.org

**नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू**

# आयुर्वेदिक चिकित्सा : मधुमेह समस्या में प्रयोग किये जाने वाले कुछ औषधीय पौधे

**डॉ. बिक्रमा सिंह,**
**वनस्पति विज्ञान (प्रभाग)**
**सीएसआईआर-भारतीय समवेत औषध संस्थान, जम्मू**

आयुर्वेदिक प्रणाली में डायबिटीज (Diabetes) को मधुमेह के नाम से जानते है जिसे दो अलग रूपों में देखने पर इसके सही अर्थ का पता चलता है 'मधु' का अर्थ ''शहद (Suger/Honey)" से तथा 'मेह' का अर्थ ''मूत्र (Urine)'' से है। इस प्रणाली के अनुसार मधुमेह शरीर के प्रमुख अंगों को प्रभावित करता है और इसे कुछ लोग 'चीनी की बीमारी' के रूप में भी जानते है। डायबिटीज़ एक हार्मोनल (Hormone-related) बिमारी है जिससे रक्त में ग्लूकोज़ (Glucose) की मात्रा इन्सुलिन (Insulin) की कमी के कारण बढ़ जाती है। अगर रक्त में इस ग्लूकोज़ की मात्रा को नियंत्रित नहीं किया जाए तो यह कई अन्य शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न होने का कारण हो सकती हैं। सन् 2013 में छपी विलियम्स पाठयपुस्तक ऐनेडोक्रनोलोजि (Endocrinology) के अनुसार दुनिया भर में 38.2 करोड़ से अधिक लोगों को मधुमेह होने का अनुमान लगाया जा चुका है।

आयुर्वेद के अनुसार मधुमेह का मुख्य लक्षण पाचन तंत्र में असमान्य परिवर्तन होना एवं इन्सुलिन की मात्रा में कमी होना इत्यादि है। आयुर्वेद यह कहता है कि मधुमेह का उपचार सिर्फ दवा और पर्याप्त आहार के सेवन से किया जा सकता है। आयुर्वेद यह भी कहता है कि यदि मधुमेह का उपचार समय से नहीं किया जाए तो यह आंख की समस्याओं, जोड़ों में दर्द, नपुंसकता, गुर्दे की विफलता, कबज रहना आदि और भी विभिन्न प्रकार की कई जटिलताओं को जन्म दे सकता है क्योंकि मधुमेह को एक महारोग के रूप में वगीकृत किया जाता है। इसलिए मधुमेह रोगी को उसके रक्त में उपस्थित ग्लूकोज़ की मात्रा को समय-समय पर जाँच कर उसे नियंत्रित करने का प्रयास करना चाहिए। मधुमेह को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा जीवन भर चलने वाला रोग माना जाता हैं किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार यह पाचन संस्थान का विकार है जिसे नियमित योगाभ्यास (Yoga-exercise), जीवन शैली में परिवर्तन और पथ्याहार के प्रयोग से शीघ्र नियन्त्रण में लाया जा सकता है। वास्तव में मधुमेह ऐसे लोगों का रोग है जिनके जीवन में शारीरिक व्यायाम या शारीरिक परिश्रम के लिए कोई स्थान नहीं है। इस रोग में अग्न्याशय ग्रंथियों (Pancreas glands) द्वारा बनायी जा रही इन्सुलिन की मात्रा, परिमाणात्मक एवं गुणात्मक, रूप से कम हो जाती हैं। परिणामस्वरूप रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती हैं और अतिरिक्त शर्करा मूत्रमार्ग से बाहर निकलने लगती है। शारीरिक श्रम का अभाव, मानसिक श्रम की अधिकता, अप्राकृतिक रहन-सहन और असंयमित अपथ्याहार इस रोग के होने का मूल कारणों में हैं। अधिक भारी चिकने तथा मीठे पदार्थो के निरन्तर प्रयोग से जठराग्नि मंद (Sauces dim) होकर पाचक ग्रन्थियों (Digestive lymph) को दुर्बल बना देती हैं। यह रोग शरीर में चयापचय (Metabolism) की प्रक्रिया को अस्त-व्यस्त कर देता है। मधुमेह को आनुवंषिक रोग (Hereditary disease) भी माने जाने लगा है। पहले बुढ़ापावस्था में ही लोग मधुमेह से ग्रस्त होते थे किन्तु अब तो मधुमेह से ग्रस्त नवयुवक भी बहुतायत से देखने में आते हैं। इस वृधि का एक कारण हमारी जीवन शैली में हो रहा है परिवर्तन माने जाने लगा हैं।

मधुमेह के मुख्य लक्ष्ण निम्नलिखित हैं:- मूत्र गाढ़ा एवं चिपचिपा हो जाना, मूत्र में शर्करा का आना, बार-बार मूत्र त्याग (Frequent urination), रात के समय भी, अधिक भूख लगना (तीव्र भूख), वजन में बढ़ोतरी, आय से अधिक प्यास लगना, त्वचा में रुखापन, नेत्र ज्योति कम हो जाना, थकान एवं दुर्बलता का अनुभव, चिड़चिड़ापना, कटने/घाव भरने में विलम्ब होना, अधिक त्वचा संक्रमण, शरीर में खुजली होना, मसूढ़ें लाल और/या सूजी होना,

लगातार मसूढ़े की बीमारी/संक्रमण, पुरुषों के बीच यौन रोग, स्तब्ध हो जाना या झुनझुनी आना आदि मुख्य लक्ष्ण हैं। हमारे भोजन में कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) एक प्रमुख तत्व है, यही कैलोरी (Calorie) व ऊर्जा (Energy) का स्रोत है। वास्तव में शरीर के 60 से 70 कैलोरी इन्हीं से प्राप्त होती है। कार्बोहाइड्रेट पाचन तंत्र (Digestive system) में पहुँचते ही ग्लूकोज के छोटे-छोटे कणों में बदल कर रक्त प्रवाह में मिल जाते हैं इसलिए भोजन लेने के आधे घंटे भीतर ही रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है तथा दो से तीन घंटे में अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। दूसरी ओर शरीर तथा मस्तिष्क की सभी कोशिकाएं इस ग्लूकोज का उपयोग करने लगती हैं। ग्लूकोज छोटी रक्त नलिकाओं द्वारा प्रत्येक कोशिका में प्रवेश करता है, वहां इससे ऊर्जा प्राप्त की जाती है। यह प्रक्रिया दो से तीन घंटे के भीतर रक्त में ग्लूकोज के स्तर को कम कर देती है। अगले भोजन के बाद यह स्तर पुनः बढ़ने लगता है। सामान्य स्वस्थ व्यक्ति में भोजन से पूर्व रक्त में ग्लूकोज का स्तर 70 से 100 मि.ग्रा./डे.ली. रहता है। भोजन के पश्चात् यह स्तर 120 से 140 मि.ग्रा./डे.ली. हो जाता है तथा धीरे-धीरे कम होता चला जाता है। मधुमेह में इंसुलिन की कमी के कारण कोशिकाएं (Cells) ग्लूकोज का उपयोग नहीं कर पाती क्योंकि इंसुलिन के अभाव में ग्लूकोज कोशिकाओं में प्रवेश नहीं कर पाती। इंसुलिन एक रक्षक की तरह ग्लूकोज को कोशिकाओं में प्रवेश करने का काम करती है ताकि ऊर्जा उत्पन्न हो सके। यदि ऐसा न हो सके तो शरीर की कोशिकाओं के साथ-साथ अन्य अंगों को भी रक्त में ग्लूकोज के बढ़ते स्तर के कारण हानि होती है। यह स्थिति उस प्यासे की तरह है जो अपने पास पानी होने पर भी उसे चारों तरफ ढूंढ़ता रहता है। इन द्वारा रक्षकों (इंसुलिन) की संख्या में कमी के कारण रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ कर 140 मि.ग्रा./डे. ली. से भी अधिक हो जाए तो व्यक्ति मधुमेह को रोगी माना जाता है।

मधुमेह को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान कार्बोहाइड्रेट (Moden Medical Science) के अनुसार निम्नलिखित वर्गों में बांटा गया है-(1) आई.डी.डी.एम.: इंसुलिन डिपेंडेंट डायबिटीज मेलाइट्स (I.D.D.M.: Insulin-Dependent Diabetes Mellitus, इंसुलिन आश्रित मधुमेह), (2)एन.आई.डी.डी.एम: नॉन इंसुलिन डिपेंडेंट डायबिटीज मेलाइट्स (N.I.D.D.M.: Non-Insulin- Dependent Diabetes Mellitus, इंसुलिन आश्रित मधुमेह), (3) एम.आर.डी.एम.: मालन्यूट्रिशन रिलेटिड डायविटीज मेलाइट्स (M.R.D.M.: Malnutrition-Related Diabetes Mellitus, कुपोषण जनित मधुमेह), (4) आई.जी.टी. (I.G.T.: Impaired Glucose Tolerance, इंपेयर्ड ग्लूकोज टोलरेंस), (5) जैस्टेशनल डायबिटीज (General Diabetes), (6) सैकेंडरी डायबिटीज (Secondary Diabetes), इंसुलिन आश्रित मधुमेह में अग्नाशय इंसुलिन नामक हार्मोन नहीं बना पाता जिससे ग्लूकोज शरीर की कोशिकाओं को ऊर्जा नहीं दे पाता। इस समय में रोगी को रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य रखने के लिए नियमित रूप से इंसुलिन के इंजेक्शन लेनी पड़ती हैं। इसे 'ज्यूविनाइल ऑनसैट डायबिटीज' (Juvenile-Onset-Diabetes) के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग प्रायः किशोरावस्था में पाया जाता है। लगभग 90% लोग इंसुलिन अनाश्रित मधुमेह के रोगी होते हैं। इस रोग में अग्नाशय इंसुलिन बनाता तो है परंतु इंसुलिन कम मात्रा में बनती है, और अपना असर खो देती है या फिर अग्नाशय से ठीक समय पर छूट नहीं पाती जिससे रक्त में ग्लूकोज का स्तर अनियंत्रित हो जाता है। इस प्रकार के मधुमेह में जेनेटिक कारण भी महत्वपूर्ण हैं। कई परिवारों में यह रोग पीढ़ी दर पीढ़ी पाया जाता है। अधिकतर रोगी अपना वजन घटा कर, नियमित आहार पर ध्यान देकर तथा औषधि लेकर इस रोग पर काबू पा लेते हैं। कुपोषण (Malnutrition) जनित मधुमेह 15-30 आयु वर्ग के किशोर तथा किशोरियां कुपोषण (Adolescents malnutrition) से ग्रस्त हैं। रोगियों को इंसुलिन के इंजेक्शन देने पड़ते हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार जब रोगी को 75 ग्राम ग्लूकोज का घोल पिला दिया जाए और रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य तथा मधुमेह के बीच हो जाए तो यह स्थिति आई.जी.टी. कहलाती है। इस श्रेणी के रोगी में प्रायः मधुमेह के लक्षण दिखाई नहीं देते परन्तु ऐसे रोगियों को भविष्य में मधुमेह हो सकता है। गर्भावस्था के दौरान होने वाली मधुमेह जैस्टेशनल डायबिटीज कहलाती है। 2-3 गर्भावस्था में ऐसा होता है। इसके दौरान गर्भावस्था में मधुमेह से संबंधित जटिलताएं बढ़ जाती हैं तथा भविष्य में माता तथा संतान को भी मधुमेह होने की आशंका बढ़ जाती है। जब

अन्य रोगों के साथ मधुमेह हो तो उसे सेकेंडरी डायबिटीज कहते हैं। इसमें अग्नाशय नष्ट हो जाता है जिससे इंसुलिन का स्तर असामान्य हो जाता है जिसे माइक्रो एंजियोपैथी (Microangiopathy) कहा जाता है। माइक्रो एंजियोपैथी एक रोग है जिसमें केशिका दीवारे (Capillary walls) मोटी और कमजोर हो जाती है, जिसमें खून, प्रोटीन, रिसाव और रक्त का प्रवाह धीमा हो जाते है।

मधुमेह या डायबिटीज ऐसी बीमारी है जिसके अनेक दुश्प्रभाव है, जो इस प्रकार है : गुर्दे तथा यकृत की खराबी, तंत्रिका संस्थान की विकृतियाँ, नपुंसकता, स्नायुविक विकृतियाँ, दृष्टि-नाड़ी शोथ, मधुमेही संमूर्छा आदि। मधुमेह को नियंत्रित रखने में योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा विशेष रूप से प्रभावी है। केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद् के अन्तर्गत विभिन्न संस्थानों में हुए अनुसंधानात्मक कार्यो से भी इस रोग के नियंत्रण में इन चिकित्सा पद्धतियों के प्रभावी होने की पुष्टि हुई हैं। मधुमेह की चिकित्सा में यह ध्यान रखना चाहिए कि रोगी पर्याप्त श्रम करे, उसका आहार नियंत्रित हो, तनाव मुक्त रहे, उसका पाचन संस्थान सुव्यवस्थित कार्य करे, तथा मधुमेहजन्य जो व्याधियाँ प्राय: उत्पन्न हो जाती हैं वे नियंत्रित रहें। महर्षि वागभट्ट ने कहा है कि प्रात:काल सूर्योदय से 2-3 घण्टे के अन्दर भरपेट भोजन करना चाहिये क्योंकि उस समय जठराग्नि सबसे तीव्र होती है और फिर शाम को 4-6 बजे के बीच में भोजन ग्रहण करना चाहिए क्योंकि सूर्यास्त के बाद जठराग्नि मंद होने लगती है। मधुमेह में लाभप्रद आहार अनिवार्य है: सोयाबीन, सेम, शलजम, खीरा, ककड़ी, लहसुन, साँप लौकी, करेला, पालक, मेथी, बथुवा, सहेजन, सत्तू, हल्दी, आँवला, जामुन, बेल आदि मुख्य हैं। मधुमेह एक दु:साध्य रोग हैं जिसमें आयुर्वेदिक प्रणाली के अनुसार निम्नलिखित आहार वर्जित हैं जैसे तेल, दही, घी, गन्ने का रस, गुड़, मघ्य (Alcohol), पिशतन्ना (कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन), अनूपा मेमसा (दलदली भूमि का मांस), नई अनाज, आदि मुख्य हैं। उपयुक्त सिद्धान्तों का पालन करते हुए मधुमेह के रोगी की चिकित्सा का निर्धारण किया जाता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा के अनुसार मधुमेह के उपचार में प्रयोग किये जाने वाली कुछ आयुर्वेदिक दवाएँ उदाहरण, मधुविजय कैप्सूल-500 मिलीग्राम (Madhuvijay Capsules-500 mg), चंद्रप्रभा वटि (Chandraprapha vati), त्रिवैनग भस्म (Trivang Bhasma), धात्रि निशा (Dhatri Nisha), वसंत कुसुमाकर रासा (Vasant kusumakar rasa) आदि वन के वनस्पतियों से तैयार की गई हैं। इन दवाईयों में उपयोग की गयी कुछ मुख्य वन वनस्पतियों के नाम तथा उपयोग निम्नलिखित है:

मुरैया कोएनीगी-*Murraya koenigii* (स्थानिक नाम : करी पत्ता, उपयोगी हिस्सा, पत्तियां)

प्रयोग की विधि: 8-10 ताजी पत्तियां सुबह खाली पेट लें ।

ऐगले मारमेलस-*Aegle marmelos* (स्थानिक नाम : बेल, उपयोगी हिस्सा, पत्तियां/छाल)

प्रयोग की विधि: पत्ती का काढ़ा/50 ग्राम छाल एक गिलास पानी में मिलाकर आधा लघुकृत करें और सुबह खाली पेट लें ।

केथरेन्थस रोजीयस *Catharanthus roseus* -(स्थानीय नाम: सदाबहार, उपयोगी हिस्सा: पत्तियां/फूल)

प्रयोग की विधि: 2-3 पत्तियां/4-6 फूल एक कप पानी में सुबह रखे औ एक घण्टे बाद खाली पेट लें।

टिनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया *Tinospora cordifola* -(स्थानीय नाम: गूचए गोलीय, उपयोगी हिस्सा: तना)

प्रयोग की विधि: तने का काढा 50 ग्राम एक गिलास पानी में मिलाकर सुबह खाली पेट लें।

जिमनेमा सिवेस्टरी -*Gymnema sylvestre* -(स्थानीय नाम: गुडमार, उपयोगी हिस्सा: पत्तियां)

प्रयोग की विधि: 5-6 पत्तियां दिन में तीन बार खाने से पहले लें ।

स्टीविया रेबएण्डीना - *Stevia rebaudiana* (स्थानीय नाम: स्टीविया, उपयोगी हिस्सा: पत्तियां)

प्रयोग की विधि: पत्तियों का रस कम कैलोरी की शक्कर का काम करता है।

मोमोरडीका चारानतिया - *Momordica charantia* (स्थानीय नाम: करेला, उपयोगी हिस्सा: फल का रस)

प्रयोग की विधि: 50 ग्राम फल का रस सुबह खाली पेट लें ।

अजादीराक्ता इंडीका - *Azadirachta indica* (स्थानीय नाम: नीम, उपयोगी हिस्सा: पत्तियां)

प्रयोग की विधि: 6-8 पत्तियां सुबह खाली पेट चबाए ।

ब्युटीया मोनोस्परमा - *Butea monosperma* (स्थानीय नाम: प्लास, उपयोगी हिस्सा: पत्तियां)

प्रयोग की विधि: 2-3 पत्तियों का रस एक कप पानी में डालकर सुबह खाली पेट लें।

सिजिजीयम कुमीनी - *Syzygium cumini* (स्थानीय नाम: जामुन, उपयोगी हिस्सा: बीज)

प्रयोग की विधि: जिमनेमा सिलवेसटरी की 6-8 पत्तियाएं, सिजिजीयम कुमीनी 10 ग्राम और पाइपर नाइग्रस 6-10 बीज दिन में तीन बार लें ।

फाइलेन्थ्स इम्बलिका - *Phyllanthus embelica* (स्थानीय नाम: ऑवला, उपयोगी हिस्सा: फल)

प्रयोग की विधि: एक चम्मच फल का रस एक कप ताजा मोमोरडीका चारानतिया *(Momordica charantia)* के रस के साथ मिलाकर दिन में एक बार लें। फाइलेन्थ्स इम्बलिकाए-मोमोरडीका चारानतिया के फल का चूर्ण और सिजितीयस कुमीनी के बीज को बराबर मात्रा में लेकर मिश्रण तैयार करें और रोज ऐ चम्मच लें ।

मधुका लोंगिफोलिया - *Madhuca longifolia* (स्थानीय नाम: महुआ, उपयोगी हिस्सा: छाल)

प्रयोग की विधि: 50 ग्राम छाल का काढा एक गिलास पानी में मिलाकर आधा लघुकृत करें और खुबह खाली पेट लें ।

ट्रिगोनेला फोइनम ग्रेइकम - *Trigonella foenum-graecum* (स्थानीय नाम: मेथी, उपयोगी हिस्सा: बीज)

प्रयोग की विधि: 2-3 चम्मच बीज का चूर्ण सुबह खाली पेट लें। 2-3 चम्मच बीज रात में एक कप पानी में सोख दें, और सुबह खाली पेट लें ।

अबरुस पूर्वकेटोरियस - *Abrus precatorius* (स्थानीय नाम: गुमची/गुंजा, उपयोगी हिस्सा: पत्तियां)

प्रयोग की विधि: पत्तियों का रस 2 चम्मच एक दिन में दो बार मौखिक रूप से लें।

कीसिया फाईसटुला - *Cassia fistula* (स्थानीय नाम: अमलतास, उपयोगी हिस्सा: बीज)

प्रयोग की विधि: बीज से बने पाउडर एक चम्मच 15-20 दिन तक सुबह लें ।

सिनामोम टैमाला - *Cinnamomum tamala* (स्थानीय नाम: तेजपता, उपयोगी हिस्सा: पत्तियां)

प्रयोग की विधि: चाय में एक पति रोज लें ।

# महिला अधिकार एवं सुरक्षा

**डॉ. रामेश्वर लाल मीना**
**हिन्दी प्राध्यापक**
**हिन्दी शिक्षण योजना**
**राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, जम्मू**

भारतीय समाज महिलाओं के मामले में सदा से ही उदार और श्रद्धावान रहा है, अन्यथा घर की बहू को लक्ष्मी और नारी शक्ति को देवी के रूप में स्थापित नहीं करता। मध्यकाल में इस ममाले में कुछ विकृतियां आ गई थीं, जिन्हें कानून की सख्ती से दूर किया गया। स्वतंत्रता के बाद नारी को समता का अधिकार मिला। इसके बाद एक के बाद एक जैसी आवश्यकता समझी गई वैसी ही नारी सुरक्षा के लिए कानून और अधिनियम बनते गये। महिला अधिकार के सशक्त कानून बनाने से पूर्व सती प्रथा को सम्मान दिया जाता था, विधवा-विवाह को देय दृष्टि से देखा जाता था, बाल-विवाह होना आम बात थी जिसमें बालिकाओं के व्यस्कता के आधार को छीना जाता था। देश की स्वतंत्रता के बाद समानता को मौलिक अधिकार मिलने के बाद स्त्री-पुरुष में कोई भेद-भाव नहीं होना चाहिए था। नारी को अबला न मानकर पुरुष के बराबरी का अधिकार मिलना चाहिए था-पर ज्यों-ज्यों देश विकास की मंजिल तय करता गया, त्यों-त्यों घटनाओं में बढ़ौत्तरी आती गई। ज्यौं-ज्यौं पढ़-लिखकर, कामकाजी घरेलू महिलाओं की संख्या बढ़ती गई, त्यों-त्यों दहेज उत्पीड़न, बलात्कार के मामले बढ़ते गए।

16 दिसम्बर, 2012 की रात दिल्ली में निर्भया के साथ जो हुआ, उसने देश में महलिाओं के अधिकार और सुरक्षा को लेकर कड़ी सच्चाई से रू-बरू बरवाया। महिलाओं की सुरक्षा और सम्मान से जुड़े महत्त्वपूर्ण कानून और प्रावधान इस प्रकार है:-

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 में देश के प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार दिया गया है। इसमें किसी प्रकार का लिंग-भेद नहीं है। समानता, स्वतंत्रता और न्याय का अधिकार महिलाओं-पुरुष दोनों को समान रूप से दिया गया है।

**स्वतंत्रता और समानता का अधिकार:** अनुच्छेद 19 में महिलाओं को यह अधिकार दिया गया है कि वह देश के किसी भी हिस्से में नागरिक की हैसियत से स्वतंत्रता के साथ आ-जा सकती है। महिला होने के कारण किसी भी कार्य के लिए उनको मना करना उनके मौलिक अधिकार का हनन होगा और ऐसा होने पर वे कानून की मदद ले सकती है।

**नारी की गरिमा का अधिकार :** अनुच्छेद 23 नारी की गरिमा की रक्षा करते हुए उनको शोषण मुक्त जीवन जीने का अधिकार देता है। महिलाओं की खरीद-बिक्री, वैश्यावृत्ति के धंधे में जबरदस्ती लाना, भीख मांगने पर मजदूर करना आदि दण्डनीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत सजा का प्रावधान है। संसद ने अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 पारित किया है। जिसके तहत अपराधी को सात साल से लेकर 10 वर्ष तक की कैद और जुर्माने की सजा का प्रावधान है। अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों से काम करवाना बाल अपराध है।

**घरेलू हिंसा कानून :** घरेलू हिंसा अधिनियम-2005 जिसके तहत वे सभी महिलायें जिनके साथ किसी भी तरह घरेलू हिंसा की जाती है, उनको प्रताड़ित किया जाता है, वे सभी पुलिस थाने जाकर FIR दर्ज करा सकती है। इस कानून के तहत 3 साल की कैद और जुर्माने की सजा हो सकती है।

**दहेज निवारक कानून:** दहेज लेना ही नहीं दहेज देना भी अपराध है। अगर वधू पक्ष के लोग दहेज लेने के आरोप में वर-पक्ष को कानूनी सजा दिला सकते हैं तो वर पक्ष भी इस कानून के ही तहत वधू-पक्ष को दहेज देने के जुर्म में सजा करवा सकता है। 1961 से लागू इस कानून के तहत वधू को दहेज के नाम पर प्रताड़ित करना संगीन जुर्म है। इस

कानून के तहत 5 साल की कैद व 15 हजार रुपये जुर्माने को प्रावधान है।

**स्व व्यवसाय/नौकरी करने का अधिकार :** संविधान के अनुच्छेद 16 में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि हर व्यस्क लड़की व हर महिला को कामकाज के बदले पुरुषों के समान वेतन प्राप्त करने का अधिकार है। केवल महिला होने के नाते रोजगार से वंचित करना किसी नौकरी के लिए अयोग्य घोषित करना, लैगिंग भेदभाव माना जाएगा।

**राजनीतिक अधिकार :** प्रत्येक महिला व व्यस्क लड़की को चुनाव प्रक्रिया में स्वतंत्र रूप से भागीदारी करने और स्वविवेक के आधार पर वोट देने का अधिकार प्राप्त है। कोई भी संविधान सम्मत योग्यता रखने पर किसी भी तरह से चुनाव में उम्मीदवारी कर सकती है।

**आपराधिक संशोधन कानून, 2013:** व्यक्ति विशेष की खरीद फरोख्त करना, बलात्कार के अपराधी को सजा व जुर्माना, सांकेतिक ढंग से किसी महिला के साथ अश्लील बातें करना, किसी महिला या लड़की को शारीरिक फब्बतियां कसना, तेजाब से हमला करना। व्यक्ति विशेष की खरीद फरोख्त करना। यदि कोई व्यक्ति किसी लड़की/महिला को वैश्यावृत्ति के लिए खरीदता या बेचता है तो उसे 10 साल की कैद व जुर्माने की सजा का प्रावधान है।

**महिलाओं के हक**

**पिता की संपति पर हक :** अपने पिता और पिता की पुश्तैनी संपत्ति में पूरा अधिकार मिला हुआ है। अगर लड़की के पिता ने खुद बनाई संपत्ति के मामले में कोई वसीयत नहीं की है, तब उसके बाद प्रॉपर्टी में लड़की को भी उतना ही हिस्सा मिलेगा जितना लड़के को और उसकी माँ को। यह अधिकार शादी के बाद भी कायम रहेगा।

**पति से जुड़े हक:**– शादी के बाद पति को संपत्ति में महिला का मालिकाना हक नहीं होता लेकिन पति की हैसियत के हिसाब से गुजारा भत्ता दिया जाता है। वैवाहिक विवादों से संबंधित मामलों में कई कानूनी प्रावधान हैं, जिनके जरिए पत्नी गुजारा भत्ता मांग सकती है। अगर पति ने कोई वसीयत बनाई है तो उसके मरने के बाद उसकी पत्नी को वसीयत के मुताबिक संपत्ति में हिस्सा मिलता है लेकिन पति अपनी खुद की अर्जित संपत्ति की ही वसीयत कर सकता है। पैतृक संपत्ति की अपनी पत्नी के फेवर में बिल नहीं कर सकता। अगर पति ने कोई वसीयत नहीं बनाई हुई है और उसकी मौत हो जाए तो पत्नी को उसकी संपत्ति में हिस्सा मिलता है।

अगर पति–पत्नी के बीच किसी बात को लेकर अनबन हो जाए और पत्नी पति से अपने बच्चों के लिए गुजारा भत्ता चाहे तो अर्जी दे सकती है। घरेलू हिंसा कानून के तहत भी गुजारा भत्ता की मांग कर सकती है। पति और पत्नी के बीच तलाक का केस चल रहा हो तो वह हिन्दू मैरिज एक्ट के तहत गुजारा भत्ता मांग कर सकती है। पति–पत्नी में तलाक हो जाए तो तलाक के वक्त जो मुआवजा राशि तय होती है, वह भी पति की सैलेरी और उसकी अर्जित संपत्ति के आधार पर ही तय होती है।

**मुफ्त कानूनी सहायता का अधिकार:**– अगर कोई महिला केस में आरोपी है तो वह फ्री कानूनी मदद ले सकती है। वह अदालत से गुहार लगा सकती है कि उसे सरकारी खर्चे पर वकील चाहिए। महिला की आर्थिक स्थिति कुछ भी हो, लेकिन महिला को यह अधिकार मिला है। हर राज्य में लीगल सर्विस अथॉरिटी का गठन इस काम के लिए किया गया है।

**पुलिस हिरासत में महिलाओं को कुछ खास अधिकार:**–

महिला की तलाशी केवल महिला पुलिसकर्मी ही ले सकती है।

महिला को सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय से पहले पुलिस हिरासत में नहीं ले सकती।

अगर महिला को कभी लॉकअप में रखने की नौबत आती है, तो उसके लिए अलग से व्यवस्था होगी।

महिला को तुरंत गिरफ्तारी का कारण बताना जरूरी होगा और जमानत संबंधी अधिकार के बारे में भी बताना जरूरी है।

गिरफ्तार महिला के निकट संबंधी को सूचित करना पुलिस की ड्यूटी है।

**सेक्सुअल हैरेसमेंट से सुरक्षा:** सेक्सुअल हैरेसमेंट, छेड़छाड़ या फिर रेप जैसी बारदातों के लिए सख्त कानून बनाए गए हैं। 16 दिसम्बर, 2012 की दिल्ली गैंग रेप की घटना के बाद सरकार ने वर्मा आयोग की सिफारिश पर ऐंटी रेप कानून बनाया है। इसके तहत जो कानूनी प्रावधान किए गए है। आई.पी.सी की धारा 375 के तहत रेप के दायरे में प्राईवेट पार्ट या फिर ओरल सेक्स दोनों को ही रेप माना गया है। बलात्कार के वैसे मामले जिसमें पीडिता की मौत हो जाए या कोमा में चली जाए, तो फॉसी की सजा का प्रावधान किया गया है। रेप मे कम से कम 7 साल और ज्यादा से ज्यादा उम्रकैद की सजा का प्रावधान किया गया है। रेप के कारण लड़की कोमा में चली जाए या फिर कोई शख्स दोबारा रेप के लिए दोषी पाया जाता है तो फांसी तक का प्रावधान है। सेक्सुअल नेचर का कॉन्टैक्ट करना, सेक्सुअल फेवर मांगना आदि छेड़छाड़ के दायरे में आएगा। दोषी पाए जाने पर अधिकतम 3 साल तक की कैद का प्रावधान है। महिला पर सेक्सुअल कमेंट करने पर एक साल तक कैद का प्रावधान है। महिला की इज्जत के साथ खेलने के लिए जबरदस्ती करना उसके कपड़े उतारना या इसके लिए मजबूर करने पर 3 साल से 7 साल तक की कैद हो सकती है। अगर कोई शख्स किसी महिला का पीछा करता है या कॉन्टैक्ट की कोशिश करता है तो 3 साल तक कैद की सजा का प्रावधान है। अगर अपराध संज्ञेय है तो ऐसे हालात में शिकायती के बयान के आधार पर या पुलिस संज्ञान लेकर केस दर्ज कर सकती है।

**दफ्तर / कार्यालय में सुरक्षा :** कार्यस्थल पर भी महिलाओं को तमाम तरह के अधिकार मिले हुए हैं। सैक्सुअल हैरेसमेंट से बचाने के लिए सुप्रीमकोर्ट ने 1997 में विशाखा जजमेंट के तहत गाइडलाइंस तय की थी। सुप्रीमकोर्ट की यह गाइडलाइंस तमाम सरकारी व प्राईवेट दफ्तरों में लागू है। इसके तहत एंप्लॉयर (नियोजक) की जिम्मेदारी है कि वह गुनहगार के खिलाफ कार्रवाई करे। सप्रीमकोर्ट ने 12 गाइडलाइंस बनाई है। एंप्लॉयर को रोके। सेक्सुअल हैरेसमेंट के दायरे में छेड़छाड़, गलत नीयत से टच करना, सेक्सुअल फेवर की डिमांड या आग्रह करना, महिला सहकर्मी को पोर्न दिखाना, अन्य तरह से आपत्तिजनक व्यवहार करना, या इशारा करना आता है। इन मामलों के अलावा, कोई ऐसा एक्ट जो आईपीसी के तहत ऑफेंस है, की शिकायत महिला कर्मी द्वारा की जाती है, तो एंप्लॉयर की ड्यूटी है कि वह इस मामले में कार्रवाई करते हुए संबंधित अथॉरिटी को शिकायत करें।

कानून इस बात को सुनिश्चित करता है कि विक्टिम अपने दफ्तर में किसी भी तरह से पीड़ित-शोषित नहीं होगी। इस तरह की कोई भी हरकत दुर्व्यवहार के दायरे में होगी और इसके लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई का प्रावधान है। प्रत्येक दफ्तर में एक कंप्लेंट कमेटी होगी, जिसकी चीफ महिला होगी। कमेटी में महिलाओं की संख्या आधे से ज्यादा होगी। इतना ही नहीं, हर दफ्तर को साल भर में आई शिकायतों और कार्रवाई के बारे में सरकार को रिपोर्ट करना होगा। मौजूदा समय में वर्क प्लेस पर सेक्सुअल हैरेसमेंट रोकने के लिए विशाखा जजमेंट के तहत ही कार्रवाई होती है। इस बाबत कोई कानून नहीं है, इस कारण गाइडलाइंस प्रभावी है। अगर कोई ऐसी हरकत जो आईपीसी के तहत अपराध है, उस मामले में शिकायत के बाद केस दर्ज किया जाता है। कानून का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ आईपीसी की संबंधित धाराओं के तहत कार्रवाई होती है।

**मेटरनिटी लीव :** संविधान के अनुच्छेद 42 के तहत कामकाजी महिलाओं को तमाम अधिकार दिए गए हैं। संसद ने 1961 में गर्भवती महिलाओं के लिए यह कानून बनाया था। इसके तहत कोई भी महिला अगर सरकारी नौकरी में है या फिर किसी फैक्ट्री में या किसी अन्य प्राईवेट संस्था में, जिसकी स्थापना इम्प्लॉइज स्टेट इंश्योरेंस एक्ट 1948 के तहत हुई हो, में काम करती है ते उसे मेटरनिटी सुविधा मिलेगी। इसके तहत 12 हफ्ते की मेटरनिटी लीव मिलती है जिसे वह अपनी जरूरत के हिसाब से ले सकती है। इस दौरान महिला को वह सैलरी और भत्ता दिया जाएगा जो उसे आखिरी बार दिया गया था। अगर महिला का अबॉशर्न (गर्भपात) हो जाता है तो भी उसे इस एक्ट का लाभ मिलेगा। अगर महिला प्रेगनेंसी के कारण या फिर वक्त से पहले बच्चे का जन्म होता है या फिर गर्भपात हो जाता है तो मेडिकल रिपोर्ट के आधार पर उसे एक महीने का अतिरिक्त अवकाश मिल सकता है। इस दौरान भी उसे तमाम वेतन और भत्ते

# भाषा और अस्मिता

आनंद कुमार सौरभ
शोध छात्र, भाषाविज्ञान विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

जब बात अस्मिता की आती है तो यह तथ्य है कि अस्मिता सभी को प्यारी होती है और भाषिक मूल्य भी हमारी अस्मिता का एक रूप है। इस भूमण्डल पर सभी जीवों की अपनी भाषा और अस्मिता है और सभी की अपनी सम्प्रेषण क्षमता होती है। अब रही बात उस सम्प्रेषण को समझने की तो, यह विशेष अध्ययन का विषय है। चूंकि भाषाविज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते यह जरूरी है कि हम अस्मिता के साथ भाषा और भाषा के साथ अस्मिता दोनो पहलु पर विचार करें। कोई भी भाषा जो कहती है उससे कहीं अधिक अनकहे कह जाती है यह भी विशेष विश्लेषण की माँग करता है। भाषाओं में अर्थ की संदिग्धता वाले शब्द और वाक्य सामान्य होते है। अब यह सर्वविदित है कि संसार भर में बोली शब्द और वाक्य सामान्य होते है। अब यह सर्वविदित है कि संसार भर में बोली जाने वाली जीवित भाषाओं की संख्या 6112 है, जिनमें लुप्तप्राय: भाषाओं की संख्या 516 के करीब है। अकेले भारत में 1652 भाषाएँ बोली जाती है। समाजिक और भौगोलिक परिवर्तनों के कारण कुछ भाषाएं मृत होने के कगार पर है। दज़ला फरात के पास की एक भाषा 'मितानी' और इटली की एक भाषा एत्रुस्कन को मृत भाषा घोषित कर दिया गया। भाषाविद् की दृष्टि में किसी भी भाषा के समाप्त होने का तात्पर्य उस भाषा-भाषी समुदाय की रीति-रिवाज की, सांस्कृतिक चेतना, स्थानिय विशिष्टताओं, अस्तित्व और अस्मिता का समाज होना है। भाषाविद् के अनुसार, भाषा का लुप्त होना एक सांस्कृतिक विघटन का द्योतक है।

**भाषा और राष्ट्र :-**

सभी देशों की अपनी एक मानक और राष्ट्र भाषा होती है। किसी देश की दो भी हो सकती है जैसे कनाडा में फ्रांसीसी और अंग्रेजी दोनों को बराबर का दर्जा है। इसके अलावा हिन्दी भारत में, चीन चीनी में, स्पेनिश स्पेन में, फ्रांसीसी फ्रांस में आदि मुद्राओं की तरह राष्ट्र की अस्मिता भी भाषा से है। भाषा राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। राष्ट्र की भाषा एक भावनात्मक स्वीकृति है जैसे राष्ट्रीय चिन्ह। जैसे इरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में 'स' ध्वनि नही बोली जाती, 'स' को 'ह' के रूप में बोला जाता था जैसे संस्कृत के 'असर' शब्द को 'अहर' बोला जाता था। चीन, तिब्बती, बर्मी, स्यामी, सुडानी की आयोजात्मक भाषा है। आयोगात्मक से तात्पर्य ये भाषा एकाक्षर होती है इन अक्षरों का स्वतंत्र अर्थ होता है इसमें रचनातत्व के योग से कोई परिवर्तन नही किया जा सकता। बोलने के ढंग, सुद नान, टोन के कारण भिन्न-भिन्न अर्थ हुआ करते है। उसी तरह योगात्मक भाषाओं की अपनी एक अलग पहचान है। चाय शब्द चीनी, रूसी, तुर्की, हिन्दी में समान रूप से प्रयोग किए जाते है लेकिन ये सभी एक परिवार की नही है। भाषिक समानता के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि यूरोप निवासी जिप्सी मूलत: भारतीय हैं।

**भाषा और व्यक्ति :-**

कहा जाता है 'चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानीं।' व्यक्तिगत स्तर पर भाषाओं में परिवर्तन और समानता होती है। अनुतान-तान स्तर पर चीनी, थाई, पंजाबी आदि रूपायन के स्तर पर बाणभट्ट की कादम्बरी और शब्द क्रम के स्तर पर बोलने वाले व्यक्ति की अस्मिता भाषा से जुड़ी है। ''व्यक्ति भाषा को न तो बदल सकता है न समाज की उपेक्षा कर सकता है। भाषा को बदलने की क्षमता तो समाज में भी नहीं होती, भाषा परिवर्तन विकास के क्रम में स्वाभाविक क्रिया है जो लम्बे काल के पश्चात गोचर होती है कहना सिर्फ यह कि समाज की वस्तु, पूर्णत: सामाजिक वस्तु भाषा का प्रयोग व्यक्ति द्वारा होने से भाषा पहले व्यक्तिगत है'' (डॉ0 देवेन्द्र नाथ शर्मा, भाषाविज्ञान और हिन्दी भाषा का स्वरूप विकास, पृ0-12) अशोक के समय प्राकृत बोली जाती थी बुद्ध के समय पालि-प्रकृत और वाल्मिकी के समय संस्कृत। अमेरिका में तो स्थानों पर स्त्री और पुरूष की भाषा में भी अन्तर दिखता है।

**भाषा और साहित्य :-**

साहित्य तथा देशकाल का बोध हम भाषा से प्राप्त कर सकते हैं। साहित्य के अभाव में ही संसार की अनेक भाषाएँ लुप्त हो गई। भाषा के बिना साहित्य निष्प्राण हैं साहित्य में व्यक्ति भेद के कारण भाषा-भेद दिखाई पड़ता है इसे ही शैली कहते है। प्रसाद की भाषा, प्रेमचंद की भाषा, अज्ञेय की भाषा का जो अन्तर है वह भाषा का शैलकीय

अन्तर है। सब एक ही भाषा में साहित्य लिख रहे हैं और सब की भाषा अलग-अलग है। उदाहरण स्वरूप कालिदास की रचनाओं में भाषा संस्कृत है। जय शंकर प्रसाद संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग करते है। प्रेमचंद की रचनाओं में उर्दू का कमोवेश ज्यादा प्रभाव दिखता है, और बाणभट्ट की कादम्बरी काफी रूपायन है जिसमें सीधे और समाज के संयोग से वाक्यों में नौ-दस पंक्ति के बाद तवराम आता है। दाराशिकोह को संस्कृत का अच्छा ज्ञान था यह उस समय संस्कृत को प्रभाव को परिलक्षित करता है। अंग्रेजी के नाटककारों में अग्रणी स्थान प्राप्त शेक्सपीयर ने अपनी कृतियों के माध्यम से एक हजार से ज्यादा नए शब्द दिए जो पहले अंग्रेजी में नहीं थे। इसके अलावा अकबर के दरबार में मुसलमान सभासद अब्दुल रहीम खनखाना, अबुल फजल और फौजी संस्कृत का अच्छा ज्ञान रखते थे। इसके अलावा हितोपदेश का फारसी अनुवाद 'मुर्फरी-अल-कूलूब' शीर्षक से ताब्जुलमाली ने किया। 'हीरा-सौभाग्यम' जिसके लेखक देव विमल जिन्होंने अकबर के दरबार में जैन साधुओं के भ्रमण का विवरण दिया था और पदमावत के लेखक मल्लिक मुहम्मद जायसी की भाषा शुद्ध अवधी है और लिपि फारसी।

**भाषा और व्याकरण :-**

किसी भी भाषा को उसके व्याकरण से पहचानते हैं। व्याकरण से ही भाषा का ढांचा सुरक्षित रहता है। व्यक्ति बोलने में स्वतंत्रता चाहता है, नियमों का उल्लंघन करके भी बोलता है, लेकिन व्याकरण नियंत्रण को पाश लिए खड़ा रहता है। पहले भाषा आती है, फिर भाषा में साहित्य आता है और अन्त में व्याकरण। व्याकरण भाषा की अशुद्धियों को टोकता हैं व्याकरण से ही भाषा का मानक स्वरूप निर्धारित होता हैं जब जीवन बदलता है संस्कृति के साथ शब्द भी बदल जाते है। लेकिन व्याकरण के बदलने की गति बहुत धीमी होती है। इसी कारण कोई भी भाषा उसके व्याकरण से पहचानी जाती है। इसमें शब्द निर्माण प्रक्रिया का मुख्य भूमिका होती है। इस तरह सभी भाषाओं की अपनी एक व्याकरिणक संरचना होती है। उदाहरण स्वरूप सूर्य और चन्द्रमा अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग लिंग प्रदर्शित करते है। उर्दू और हिन्दी का व्याकरण एक ही है। द्रविड़ परिवार की भाषाओं पर संस्कृति परिलक्षित है। अंग्रेजी में चौआलीस ध्वनि है और हिन्दी में चौअन है। संस्कृत में रूप चलते है। हिन्दी में नही। हिन्दी में दो लिंग है गुजराती में तीन, हिन्दी में भूतकाल में केवल छः भेद है रूसी में केवल दो, हिन्दी में केवल दो वचन है संस्कृत में तीन। (भा0वि और हि0 भा0 का स0 वि0, डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ0-39) अंग्रेजी में स-ट-र का संयोग खूब चलता है, स्ट्रीट, स्टेट आदि, पर जपानी में यह बिल्कुल नही है। रूसी में ज-द-र का संयोग खूब चलता है, अंग्रेजी व फ्रांसीसी में नहीं। जापानी में कोई भी अक्षर या शब्द स्वारांत ही होगा, व्याजनांत नहीं। जैसे हा-रा-की, ना-सा-सा-की आदि। रूसी में 'ह' नहीं होता 'ख' होता है अतः नेहरू को नेखरू लिखा है। मंदारिन जो चीन की राष्ट्रभाषा है उसमें पांच सुर है जबकि उसकी बोली 'फुकनी' में आठ सुर। चीनी भाषा का व्याकरण नहीं है। एक ही शब्द स्थान और आवश्यकतानुसार संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि हो जाता है। भाषा का मुख्य लक्षण है कि यह व्याकरण से नियंत्रित हुआ करती है। शब्द स्तर पर भाषा में काल और परिस्थिति के अनुसार शब्दों का आगमन और उनका विलोपन होता रहता है।

**भाषा और संस्कृति :-**

भाषा और संस्कृति में घनिष्ठ संबंध है। किसी एक का संज्ञान होने से दुसरे का अनुमान स्वाभाविक है। जैसे बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार तिब्बत, लंका, जापान तीनों देशों में है। धर्म की दृष्टि से तीनों देश बौद्ध धर्म को स्वीकार किए हैं मगर तीनों की भाषाएं अलग है और संस्कृति अलग। किसी भी देश की संस्कृति के ज्ञान का आधार उस देश की भाषा हो सकती हैं इंडोनेशिया, ईराक, ईरान, सुडान ये चारों देश इस्लाम धर्म को मानते हैं ये चारों मुस्लिम देश है लेकिन इनकी संस्कृति अलग है और भाषाएँ अलग। इंडोनशिया में आस्ट्रोनेशियन परिवार की इंडोनेशियन बहासा तथा जाती आठि भाषाएँ बोली जाती हैं तथा यहाँ जावा-सुमात्रा-बोर्नियों आदि द्वीपों की संस्कृति है। इराक में सामी या सेमेटिक परिवार की अरबी तथा कर्दिश भाषाएँ बोली जाती हैं, जबकि इराक, मेसोपोटामिया संस्कृति का वंशधर है। सुडान में अफ्रीका महाद्वीप की संस्कृति है तथा वहाँ अफ्रीकन परिवार की डिन्का नूबा आदि भाषाएँ बोली जाती हैं। हिन्दुओं के लिए 'संस्कृत' आदि भाषा है, मुसलमानों के लिए 'अरबी' इसाइयों के लिए हिन्दू, बौद्धों के लिए पालि, और जैन के लिए अर्ध-मागधी।

**भाषा और लिपि :-**

लिपि भी भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। लिपि का विकास मनुष्य की बुद्धि का क्रांन्तिकारी आविष्कार है। भाषा का लिखित रूप वाचिक भाषा को स्थायित्व प्रदान करता हैं इस सन्दर्भ में भारत के प्राचीन भाषाविद् पाणिनि लिखते हैं ''मौखिक भाषा को उत्कृष्ट कहते है लिखित को निकृष्ट'' (पाणिनीय शिक्षा, पृ0-32) आधुनिक भाषा विज्ञान स्लूमफील्ड भी वाचिक भाषा का समर्थन है ''भाषा के लिखित रूप को भाषा नहीं मानते।'' (ब्लूमफील्ड, लैग्वेज,

पृ0-21)। यह सत्य भी है कि भाषा के लिए लिपि का होना बहुत जरूरी नहीं है क्योंकि ऐसी बहुत सी भाषाएं हैं जिसकी अभी तक लिपि नही बनी। लेकिन लिपि से भाषा में स्थायित्व आता है। जैसे पिज़िन रोज बदलती है पिज़िन का कोई व्याकरण भी नही होता हैं कई हजार भाषाएं जीवित हैं पर लिखी नहीं जाती। बोडो को हाल में ही देवनागरी की मान्यता मिल गई। एक उदाहरण ऐसा भी है जब तुर्की में तर्क कामालपाशा नामक सम्राट ने 1928 में जो मुस्लिम देश था और वहॉ की भाषा टर्किश और लिपि अरबी थी। जो कि अरबी की शब्दावली से ही बोझिल थी, किसी दिन अचानक सम्राट ने आदेश दिए कि कल से केवल रोमन भाषा का प्रयोग किया जाएगा, और वही हुआ जिससे तुर्की भाषा की रोमन लिपि से पहचान बनी। गूंगा और बहरा भी लिखित भाषा से अपना अभिप्राय व्यक्त करते है इसलिए अंधों के लिए ब्रेल लिपि का विकास हुआ। लिखित भाषा ने मनुष्य की बहुत सेवा की है, मनुष्य के विकास में, बौद्धिक उन्नयन में अप्रतिम सहायता पहुॅचायी हैं जैसे हिन्दी (देवनागरी) अंग्रेजी उर्दू (फारसी) पंजाबी (गुरूमुखी) आदि।

लिपि के इतिहास में प्रथम सैधव लिपि जो कि चित्रात्मक है अभी तक पढ़ पाना संभव नहीं हुआ। इसके बाद ब्रह्मी लिपि जो कि मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में एक बास्ट्रोफेडेन नामक लिपि मिलती है जो पहली पंक्ति बाऐ से दाहिने तथा पुनः उसी क्रम को जारी रखते हुए दाहिने से बांए लिखी जाती हैं गुजराती के मुद्राओं पर भी हमें ब्राह्मी लिपि के अच्छे उदाहरण मिलते हैं इज़राइल की डिब्रू 2000 (दो हजार) वर्ष पुरानी है यह वहॉ की सांस्कृतिक भाषा भी है और इसका प्रयोग वर्तमान में भी हो रहा है और ये वहॉ की मानक तथा राष्ट्रीय भाषा भी है। जबकि संस्कृत के साथ ऐसा नहीं हुआ, जितनी तेजी से संस्कृत बोली जा सकती हैं उतनी तेजी से हिन्दी या चीनी नहीं। भाषाविद् संस्कृत को सिंचते है किन्तु भारतीय सरकार का सहयोग नाममात्र है। 'लैडिनो' स्पेन की भाषा है 'येदिश' जर्मन की, जबकि दोनों हिब्रू में ही लिखी जाती है। चीन और तिब्बत में प्राचीन काल में सूत्रलिपि का प्रयोग होता है। चित्र लिपि, सुत्रलिपि के बाद भावलिपि आया इसमें चित्र के द्वारा चित्र से उत्पन्न भाव की अभिव्यक्ति होती थी। कम से कम रेखाएं खींचकर अधिक से अधिक भाव निष्पन्न करना भावलिपि का प्रयोजन था। भावलिपि का ही विकसित रूप आज का व्यंग्य चित्र है। इसके बाद ध्वनि लिपि अन्तिम चरण है जिसका प्रयोग देवनागरी, अरबी रोमन आदि में हो रहा है। किंतु यह सत्य है कि संसार की कोई भी लिपि इतनी समर्थ नहीं है कि वाणी के सुक्ष्म झंकारों को भी लिख सके।

**भाषा और नामकरण :-**

नामकरण का तो अपना एक इतिहास है कहते हैं 'यथा नामं तथा गुणं'। किंतु समय के अनुसार इसके अर्थ परिवर्तन भी हो जाते हैं जैसे, प्राचीन समय में 'प्रवीण' उसी का नाम हो सकता था जो वीणा बजाने में निपुण हो। किंतु अब तो किसी का भी हो सकता है। वैसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में नामकरण की तो एक व्यापक परंपरा रही है इसमें धर्म और समुदाय के अनुसार शब्दों पर प्रभाव परिलक्षित होता है जैसे हिन्दू उच्च वर्ग में राम नारायण तिवारी, हनुमान प्रसाद, सीताराम दूबे और निम्न वर्ग में भूअरा, चन्द्रिका, डोमा, ढ़ोड़ा, पियाजू, बिकाउ, बोतल, खुॅटी आदि और मुस्लिम वर्ग में अकबर, इकबाल, आफताब, नौशाद आदि और सिक्ख धर्म में जोगिंदर, सिंधु, पुरविन्दर तथा ईसाई धर्म में जॉन, अब्राहम आदि इन शब्दों से किसी निश्चित धर्म से सम्बन्धित व्यक्ति की अस्मिता का पता चलता है।

**भाषा और व्यवसाय :-**

यह प्रमाणित है कि भाषा सामाजिक वस्तु है क्योंकि इसे व्यक्ति प्रयोग करता है व्यक्ति समाज से भाषा लेता है और समाज को देता भी है, देता कम है और लेता ज्यादा है। यह भी सर्वविदित है कि शिक्षा, संस्कृति, संगीत और प्रभाव के कारण भाषा-भेद होता है। किंतु भाषा पर व्यवसाय का, पेशे का कितना स्पष्ट और प्रत्यक्ष प्रभाव दिखता है उतना संस्कृति का भी नहीं। हिन्दु की भाषा में मुसलमानों की भाषा की तरह फारसी शब्दों का बहुल्य नही होता। समाज अनेक जातियों का संलिप्त रूप है। समाज में रहने वाले ब्राह्मण, लोहार, सोनकर, बढ़ई, चमार, कुम्हार, कहार, शर्मा, मेहतर, पासी, तेली, जुलाहा आदि जाति का अपना-अपना पेशा होता हैं कदाचित देखने में आता है कि ब्राह्मण की भाषा और ब्राह्मण के घर में चौका बर्तन करने वाली दाई की भाषा एक नही रहती है। ऊँच-नीच, सामाजिक असमानता के कारण भी। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई व्यक्ति चाहे जिस पेशा में हो, वह अपने पेशे की शब्दावली का प्रयोग अवश्य करता हैं शिक्षित किसान और अशिक्षित किसान की भाषा में स्पष्ट अन्तर दिखता है। धर्म के कारण भी भाषा प्रभावित होती है लेकिन भाषा पर व्यवसाय का असर अधिक होता है। दार्शनिक की भाषा और लोहा फूटने वाले की भाषा में समानता कैसे हो सकती है ? प्रोफेसर, डॉक्टर, अधिवक्ता, अभियंता, दुकानदार और दर्जी, ज्योतिषी और वैज्ञानिक के भाषा भेद का मुख्य कारण व्यवसाय हीं होता हैं अतः भाषा अथवा भाषा का प्रभाव धर्म, जाति, शिक्षा और संस्कृति के कारण तो होता हीं है, किंतु व्यवसाय के कारण बहुधा अधिक प्रत्यक्ष होता है।

**भाषा और पत्र :-**

पत्रों की भी अपनी ऐतिहासिक विकास और शैलियॉ है। प्रेमपत्र, प्रस्ताव पत्र, व्यापार पत्र, अनुसंधान पत्र आदि। इसी तरह आत्महत्या पत्र भी। आत्महत्या पत्र में लगभर 300 शब्दों का समावेश होता है। आत्महत्या पत्र भावनात्मक बातों की अंतिम सीमा छू रहा होता है। किसी तरह के मजाक के लिए थोड़ा भी जगह नहीं होता। जब हिन्दी आत्महत्या पत्र की बात आती है तो उसमें ऐसे वाक्य सामान्य मिलते है, जैसे - हमारा इतने दिनों का ही साथ था, अब सहा नही जाता, उनको गद्दी पर बैठाना (अर्थात हम जा रहे है), मेरे पास दूसरा रास्ता नहीं था, मेरी हालत धोबी के कुत्ते की तरह थी, आदि। दूसरे पत्रों की भॉति इसका भी शुरूआत शीर्षक ईश्वर के नाम (जय मॉ दुर्गे) आदि से मिलता है। इसमें व्यंग्यात्मक कटाक्षपूर्ण शब्द/वाक्य, व्यंग्यात्मक मुहावरे, आशारहित शब्दों का खुब प्रयोग मिलता है। इसमें भी पत्र के प्रारम्भ ईश्वर के नाम के बाद, सलामी/नमस्कार आदि से होना है। इसकी संरचना भी सामान्य पत्रों की तरह ही लगभग होती है। क्योंकि पत्रों की मानसिक संरचना, सामान्य पत्रों की भांति ही मानव मस्तिष्क में है। अर्थात आत्महत्या पत्र का भी प्रारूप सामान्य पत्रों की भांति ही होता है, किन्तु शब्द और वाक्य पूरी तरह से भावनात्मक होते है।

भाषा के माध्यम से हम वक्ता के इतिहास तथा वर्तमान को बखुबी जान पाते हैं। भाषा विश्वदृष्टिकोण को प्रभावित करती है। जैसे भारत की 22 सरकारी भाषाएं है जबकि 1650 के लगभग अन्य भाषाएं और बोलयां भी हैं। वही अंग्रेजी 44 देशों की सरकारी भाषा बनी हुई है। इसलिए हम कह सकते हैं कि विश्व की एक तिहाई जनसंख्या अंग्रेजी को स्वीकार कर सरकारी भाषा मान चुकी है। यूरोपियन देशों में आधे से अधिक व्यापार-संचार अंग्रेजी में ही होता है जबकि यूरोप से क्षेत्रफल में बड़ा हमारा हिन्दुस्तान हैं। भाषा का भौगोलिक सीमा का विस्तार राजनीतिक या व्यापारिक साख्यिकीय कारणों से भी कभी-कभी इतना हो जाता है कि अपने देश के बाहर भी बोली और समझी जाती है। अंग्रेजी इसका जीवंत उदाहरण हैं भारत प्रारम्भ से ही बहुभाषी देश रहा है। यहॉ हिन्दी 28 राज्यों में से केवल 10 राज्यों में बोली जाती है। वैसे वैज्ञानिक और एन्थ्रोपोलिकल रिसर्च भी मानता है कि मानव एक से अधिक भाषाएॅ आसानी से सीख सकता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विश्व के बहुत से देशों का आकर्षण केवल अंग्रेजी है कई देशों ने अपनी राष्ट्रभाषा अंग्रेजी को ही घोषित कर दिया है। नाइजिरिया, लिबिया आदि। अभी भारत ने अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा घोषित तो नहीं किया है, परन्तु उसी रास्ते पर है। इस सन्दर्भ में डॉ0 अनंत लाल चौधरी लिखते हैं ''भारत के अनेक ख्यातनाम भाषाशास्त्रियों, शिक्षाविशारदों एवं उच्च पदासीन व्यक्तियों ने रोमन प्रचार का झंडा अपने स्वामी अंग्रेजों के हाथ से अपने हाथ में ले लिया और बिना गंभीरता पूर्वक सोचे समझे, देवनागरी के विरूद्ध रोमन का खुलेआम प्रचार करने के लिए, कृतसंकल्प हो, रणक्षेत्र में कूद पड़े।'' (नागरी लिपि और हिन्दी वर्तनी, डॉ0 अनंत लाल चौधरी, पृ0-97) रूस के पतन के बाद अमेरीका का पताका पूरे विश्व में फहर रहा है। अमेरिका, अमेरिकावासी और अमेरिका की भाषा सर्वोपरि है, अमेरिका सबसे बड़ा दरोगा है ऐसा दुनियां मानती है। एक उदाहरण, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, एसोसिएट प्रोफेसर, प्रोफेसर जैसे शब्द जो कि अमेरिकन अंग्रेजी का आधार है, यू जी0 सी0 ने भी इसकी मान्यता देकर प्रोत्साहित कर दिया। जबकि लेक्चरार, रीडर ब्रिटिश अंग्रेजी के आधार थे। मानव की तरह भाषा भी एक दूसरे को दबाती है।

भारतीय सन्दर्भ में पंजाबी, कोंकणी से गोवा, लेप्चा से सिक्किम, मेवाती से राजस्थान, छत्तीसगढ़ी से छत्तीसगढ़, भोजपुरी, मैथली, और मगही से बिहार की अस्मिता जुड़ी है। किन्तु स्वायत्ता न होने से भोजपुरी बोली बनकर हीं रह गयी। जबकि हिंदी का इतिहास 1000 वर्ष पुराना है और भोजपुरी हजारो वर्ष पुरानी है। जबकि भोजपुरी ने ही हिन्दी की अस्मिता दी। डॉ0 सुनिति कुमार चटर्जी ने लिखा है ''कबीर भोजपुरी के प्रथम कवि थे।'' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने एक सम्मेलन में भोजपुरी के सन्दर्भ में कहा - ''हम माई के धन मौसी को देते हैं''। जहॉं 'माई' भेजपुरी शब्द है और 'मौसी' हिन्दी।

इस तरह हम कह सकते है कि आने वाले दिनों में नई पीढ़ी के पास मात्र अंग्रेजी भाषा होगी। ऐसा डेविड क्रिस्टल भी मानते है। किंतु आज विश्व भर में कुल केवल आठ भाषाओं का राज है जो इस प्रकार अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी, चीनी स्पेनिश, रूसी, जापानी हैं। जिनमें अंग्रेजी का स्थान प्रथम है। एक बात और सत्य है कि जिस तरह अंग्रेजी की मांग पूरी दुनिया में है और विकासशील देश इसे प्राथमिकता दे रहे है। इसी सन्दर्भ में डेविड क्रिस्टल ने कहा है- ''बहुत कभी ऐसा हो सकता है जिस तरह से अंग्रेजी को प्रोत्साहन दिया जा रहा है, भाषाओं में केवल एक अंग्रेजी ही बच जाए, और सभी भाषाएं लुप्त हो जाएं, तो वह दिन मनुष्य की बौद्धिक क्षमता के ह्रास की पराकाष्ठा का दिन होगा। हालांकि यह अभी बहुत दूर की कड़ी है, किंतु दुनिया इसी मार्ग पर अग्रसर है।

# गीता पर तिलक, रामनुज एवं गांधी का मत

**डॉ. मंजू उपाध्याय द्विवेदी**
**जम्मू**

उपर्युक्त कालावधि में मैंने जो कार्य किया है उसे यहाँ संक्षेप में ही प्रस्तुत किया जा रहा है। यह विवरण चार खण्डों में विभक्त है।

1. गीता पर लिखे गये मानक ग्रंथों का अध्ययनः-

पुस्तकों के नाम :-

1. श्रीमद्भगवत्गीता और इसकी टीका शंकर मान्य अर्थात् शंकराचार्य कृत भगवत्गीता का हिन्दी अनुवाद ।
2. कर्म योग भगवत्गीता का तृतीय अध्ययनखण्डानन्द
3. श्रीमद् भगवत्गीता अग्रवाल वासुदेवशरण
4. गीता विज्ञान अरविन्द श्री
5. श्रीमद् भगवद्गीता श्रीरामानुज भाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित
6. भगवद्गीता राधा कृष्णनन्
7. भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय
8. अनासक्तियोग महात्मा गांधी
9. भगवद्गीता - एक अध्ययन गुरूदत्त
10. गीता निबन्धावली गोयन्दकर जयदयाल ।

2. गीता का संदर्भः-

गीता महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है गीता ग्रेस से प्रकाशित महाभारत के भीश्मपर्व में अ. 25 से 42 तक भगवद्गीता है। पूना से प्रकाशित आलोचनात्मक संस्करण में भीष्म पर्व के 23 से 40 में गीता समाविष्ट है। यह प्रश्न बार-बार उठाया जाता है कि क्या गीता मूलतः महाभारत का अविभाज्य अंग था, अथवा इसे बाद में महाभारत में समाविष्ट कर लिया गया। मैंने बड़ी रूचि से इस विषय का गंभीरता से अध्ययन किया। ढाका विश्वविद्यलय के पुस्तकालय में सुरक्षित भीष्म पर्व की एक हस्तलिपि (स.669 तिथि 1675) से इस विषय पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। दूसरी एक प्रति भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इस्टीट्यूट पूना मे विद्यमान है। यह बंगला लिपि में लिखी गई कश्मीरी परम्परा की हस्तलिपि है। इसमें भीष्म पर्व में भगवद्गीता सम्बन्धी अध्याय नहीं है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि भीष्म पर्व पर अर्जुन, मिश्र की व्यवस्था है किन्तु गीता सम्बन्धी ग्रन्थकारों पर कही व्याख्या नहीं मिलती। अर्जुन मिश्र की व्याख्या युक्त भीष्म पर्व की पाण्डुलिपियों में गीता सम्बन्धी अध्यायों पर श्रीधर स्वामी की टीका की गई है। इन भाष्यों से स्पष्ट है कि अति प्राचीन एक ऐसी परम्परा थी जो भीष्मपर्व में भगवद्गीता का अस्तित्व नहीं मानती थी।

3. शंकराचार्य एवं रामानुजः-

गीता में ज्ञान, कर्म भक्ति तीनों ही मार्गों का प्रतिपादन है। शंकराचार्य गीता की केवल ज्ञान परक व्याख्या करते है दूसरी ओर रामानुज भक्ति परक। अपने सिद्धान्तों के अनुसार वे दोनों कर्ममार्ग की भी अलग-अलग अवधारणा बनाते हैं और तदनुसार व्याख्या करते हैं। एक-एक श्लोक को लेकर अनेक टीकाओं की तुलना करने पर ही विदित है कि वे व्याख्यायें कितनी संगत हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे है। सर्वप्रथम अ. 4 को लेते हैं जो भक्ति की आधारशिला माना जाता है। सुप्रसिद्ध श्लोक है -

'यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत,
अभ्युत्थानमर्धस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।7।।

इसे तो अद्वैत वेदान्त से जोड़ना कठिन लगता है। सृजामि अडंमामया, ऐसी टिप्पणी करके ही शंकराचार्य इस श्लोक को अद्वैत सिद्धान्त से जोड़ पाते है। यह श्लोक स्वयं ही रामानुज के सिद्धान्त के अनुकूल ही है, अतएव उन्हें इसकी व्याख्या में कठिनाई नहीं होती ।

अन्य उदाहरण –

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्पत: ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।9।।

शंकराचार्य जन्म की व्याख्या करते है 'जन्म मायारूपम्' तभी इस श्लोक की अद्वैतवादी व्याख्या हो पाती है। रामानुज इससे अपने सिद्धान्त को और विकसित करते हैं –

दिव्य मजाकृतं मदसाधारणं ममजन्मम् चेष्टितं च।

वे इस प्रकार व्याख्या करके भगवान की लीलाओं का संकेत खोज लेते हैं ।

अगले दो श्लोक देखिए –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम् ।

मम वर्त्मामुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश: ।।11।।

काड.क्षन्त: कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवता:।

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ।।12।।

यहाँ शंकराचार्य मम की व्याख्या ईश्वरस्य तो कर देते हैं जिससे यह भ्रम हो सकता है कि उन्होंने ब्रह्म से भिन्न ईश्वर की सत्ता मान ली किन्तु आगे –

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागश: ।

तस्यं कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ।।13।।

की व्याख्या में लिखते है – माया संव्यं – बहारेण तस्य कर्मण: कर्तारम् । इस प्रकार तीनों ही श्लोकों में अद्वैत के सिद्धान्त को प्रतिपादित कर लेते है।

गीता का नवम अध्याय भी भक्ति मार्ग का एक प्रमुख स्रोत माना जाता है। देखिए इसके अन्तिम श्लोक की व्याख्या शंकराचार्य कैसे करते है:–

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्तुरु ।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण: ।।34।।

यहां शंकर 'युक्त्वां' को छोड़कर व्याख्या करते हैं और 'आत्मानं'' को मानं एव एष्यसि' के साथ जोड़कर वेदान्ती व्याख्या कर लेते हैं किन्तु यह सर्वथा ठीक नहीं है। चूंकि रामानुज द्वैत से विशिष्ट अद्वैत को मानते हैं। इसलिए वे गीता के ज्ञान मार्गी अंश की व्याख्या ज्ञानपरक कर लेते हैं और भक्तिमार्गी अंश की भक्तिपरक ।

4. तिलक और गांधी :–

जिस तरह मैंने दो प्राचीन टीकाकारों की टीकाओं की तुलना की उसी शैली से मैंने तिलक और गाँधी की गीता सम्बन्धी व्याख्या को सूक्ष्मता से पढ़ा । तिलक की पुस्तक का नाम है श्रीमद्भगवद् गीता रहस्य अथवा कर्मयोग (पूना, 1916 और गांधी की पुस्तक का नाम है अनासक्तियोग (नई दिल्ली, 1987)। यहाँ योग से तात्पर्य कर्मयोग से है। स्पष्ट है कि दोनों की ही व्याख्याओं में कर्मयोग अलग-अलग है। यह सर्वविदित है कि दोनों ही भारतीय स्वातन्त्य आन्दोलन के प्रमुख कर्मयोगी थे –तिलक गरम दल के थे और गांधी शान्तचितं से राजनीति करते थे। स्वाभाविक है कि दोनों के कममार्ग की व्याख्या अलग-अलग होगी। गीता के ये श्लोक स्वातन्त्य आन्दोलन के लिए प्रेरणा स्रोत रहे हैं –

तस्माद्युद्धस्वं भारत 2/12

अथ चेत्वमिमं धर्म्य संग्राम न करिष्यसि ।

ततः स्वधर्म कीर्ति च हित्वा पापमवात्स्यसि ।।33।।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग जित्वा वा मोक्ष्यते महीम् ।

तस्मादुतिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः ।।37।।

तिलक ने न केवल शंकराचार्य की ज्ञानपरक व्याख्या का विस्तार से खंडन किया है अपितु इस मत की स्थापना की है कि गीता प्रवृत्ति प्रधान भागवत् धर्म या कर्मयोग ही प्रतिपाद्य विषय है। यदि उपर्युक्त श्लोकों से तिलक के उग्रवाद को समर्थन मिला तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अहं प्रश्न यह है कि अहिंसावादी गांधी इन श्लोकों को कैसे समझते हैं? आरम्भ में गांधी गीता के कुछ श्लोकों से अपने अहिंसा मार्ग का समर्थन कर लेते थे। असहयोग के जमाने में उनके एक मित्र स्वामी आनन्द ने उनसे कहा ''आप गीता का अर्थ करते हैं, वह अर्थ तभी समझ में आ सकता है जब आप एक बार समूची गीता का अनुवाद कर जायें और उसके ऊपर जो टीका करनी हो करें और हम वह सम्पूर्ण एक बार पढ़ जायें। फुटकर श्लोकों में से अहिंसादि का प्रतिपादन तो मुझे ठीक नहीं लगता'' (अनासक्ति योग पृ. 1)। यह थी गांधी के गीता अनुवाद की पृष्ठभूमि। गीता का पूरा अनुवाद पढ़कर अब समझा जा सकता है कि वे गीता और अहिंसा नीति में कैसे समांजस्य स्थापित करते हैं।

गांधी की अवधारणा थी कि गीता ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं है वरन इसमें भौतिक युद्ध के वर्णन के बहाने मनुष्य के हृदय के भीतर निरन्तर होते रहने वाले द्वन्द युद्ध का वर्णन है। मानुषी योद्धाओं की रचना हृदयगत युद्ध को रोचक बनाने के लिए गढ़ी हुई कल्पना है। महाभारत ग्रथ में गांधी आधुनिक अर्थ में इतिहास नहीं मानते। उनके अनुसार इसके प्रबल प्रमाण आदि पर्व में है जहाँ पात्रों की अमानुषी और अतिमानुषी उत्पत्ति का वर्णन है। उसमें वर्णित पात्र मूल में ऐतिहासिक भले ही हों परन्तु महाभारत में उनका उपयोग केवल धर्म का दर्शन कराने के लिए किया गया है। गांधी के अनुसार महाभारत ने भौतिक युद्ध को आवश्यक नहीं, उसकी निरर्थकता ही सिद्ध की है। ऊपर हमने गीता के द्वितीय अध्याय के कुछ श्लोकों के उद्धव किया है। गांधी का कहना है कि दूसरा अध्याय भौतिकयुद्ध के बदले स्थितप्रज्ञ के लक्षण सिखाता है। गांधी की मान्यता है कि गीता के कृष्ण शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान है, किन्तु काल्पनिक है। यहाँ कृष्ण नाम के अवतारी पुरुष का निषेध नहीं है किन्तु 'सम्पूर्ण' कृष्ण काल्पनिक है।

गीता के अन्तिम श्लोक जिसमें योगेश्वर कृष्ण का उल्लेख है पर गांधी टिप्पणी करते है - योगेश्वर कृष्ण से तात्पर्य है अनुभवसिंह ज्ञान और धनुर्धारी अर्जुन से अभिप्राय है तदनुसारणी क्रिया।

गांधी ने स्वयं लिखा है कि उनका संस्कृत का ज्ञान अल्प था। इस कारण गांधी की व्याख्या में तिलक जैसा पाण्डित्य नहीं है किन्तु मौलिकता कहीं अधिक। प्रतीकात्मक व्याख्या करके गांधी ने गीता में प्रस्तुत ज्ञान कर्म एवं भक्ति तीनों में सामांजस्य स्थापित कर दिया है।

# दलित साहित्य के सरोकार

**ज्योति रानी**

पीएचडी (शोध छात्रा)

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

दलित समाज के उद्‌बोधन हेतु लिखा गया साहित्य 'दलित साहित्य'। 'दलित' शब्द शोषित पीड़ित, वंचित, उत्पीडित तबकों अथवा मनुष्य के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है लेकिन साहित्य में 'दलित' शब्द ऐसे समूह अथवा समुदाय का बोध कराता है जिसके अन्तर्गत वे सभी जातियाँ सम्मिलित हैं जो जातिगत सोपान क्रम में अतिनिम्न स्तर पर हैं। जिन्हें हजारों वर्षो से वर्ण-व्यवस्था से बहिष्कृत, अधिकारिविहीन रखा गया है। ''वे हिन्दू जाति से संबद्ध तो थे परन्तु उसका अंग नहीं थे क्योंकि चतुवर्ण समाज के सोपानतंत्र में उन्हें कोई स्थान नहीं दिया गया था। (जगजीवन राम, हाशिये की वैचारिकी पृष्ठ 103) जिसके लिए भारत के संविधान में विशेष रूप से अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया गया है। पंचमवर्ण, अवर्ण, अंत्यज अस्पृश्य, हरिजन, अछूत, अपवित्र आदि इसके पर्यायवाची शब्द हैं। इन अपमान सूचक शब्दों से अलगाव हेतु ''महान क्रांतिकारी चिन्तक ज्योतिबा फुले ने दलित शब्द का प्रयोग किया। बाद में भीमराव अम्बेडकर ने इस शब्द का प्रचार-प्रसार किया। (डॉ. सुभाषचन्द्र, दलित मुक्ति आन्दोलन पृष्ठ 15) दलित साहित्य का सर्वप्रथम आरम्भ मराठी साहित्य में हुआ। डॉ. अम्बेडकर के मुक्ति आन्दोलन ने दलितों में एक नई चेतना पैदा की जिसके फलस्वरूप दलित साहित्य की रचनात्मक का उदय हुआ। इसी चेतना का परिणाम है कि गांधी द्वारा दिए गए, ''हरिजन' शब्द को भी दलित अस्वीकार कर देते हैं, उनके अनुसार हरिजन तो दक्षिण भारत में वह कहलाता है जो देवदासी की संतान हैं।

''विधिवत् रूप से हिन्दी में दलित साहित्य का उदय लगभग सन् 1990 के दशक से माना जाता है। (उमाशंकर चौधरी, दलित विमर्श कुछ मुद्‌दे कुछ सवाल पृष्ठ 7) मोहनदास नैमिषराय , ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, सूरजपाल चौहान, श्यौराजसिंह बेचैन, तुलसीराम, कंवल भारती, रूपनारायण सोनकर, डॉ. धर्मवीर, अनीता भारती, रजतरानी मीनू आदि प्रमुख दलित साहित्यकार हैं। इन्होंने हिन्दी में दलित जीवन एवं समाज को उसके यथार्थ रूप में पूर्ण समग्रता से चित्रित किया है। दलित साहित्य मानवीय सरोकार और संवेदना का साहित्य है। इसके केन्द्र में मनुष्य है। मनुष्य के बेहतर, स्वस्थ जीवन की संकल्पना है। यहाँ दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा और शोषण के विरूद्ध साहित्यिक अभिव्यक्ति की है। यह ''सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति के सवालों का साहित्य है। (केवल भारती, दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक पृष्ठ 16)।

यहाँ परम्परागत सामंती मूल्यों, ब्राह्मणवादी मानसिकता का नकार, विरोध एवं विद्रोह तथा स्वतंत्रता की पुकार है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षणिक विद्वेष और वेदनाओं को वहन करते मनुष्य की जीवन गाथा तथा जिजीविषा और मुक्ति का आह्वान है। दलित साहित्य वस्तुतः उन्हीं शक्तियों के साथ है जो भारतीय समाज को मानवीय विवेक के आधार पर पुनर्गठित करते हुए एक समता मूलक समाज के रूप में बदलना चाहती है। (मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य पृष्ठ 316)

दलित साहित्य का आधार अम्बेडकरवाद है (उमा शंकर चौधरी, दलित विमर्श पृष्ठ 160) इसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में सरोकार वे हैं जो अमबेडकर के थे। महात्माबुद्ध, ज्योतिबा फुले तथा डॉ. भीमराव अम्बेडकर के दर्शन, विचाराधारा तथा जीवन संघर्ष ही दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत है। शरण कुमार लिंबाले के शब्दों में - दलित साहित्य की प्रेरणा डॉ. बाबा साहेब का ही विचारहै और दलित साहित्य का सृजन 'दलित चेतना' से हुआ है। (दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र)।

वेदना दलित साहित्य की जननी है। अपने समय से लड़ते हुए आने वाले कल की बेहतर जिन्दगी के लिए आशावादी दलित साहित्य प्रेम का साहित्य है। उसकी दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति और उसकी पीड़ा, उसके सुख-दुःख महत्वपूर्ण हैं। उसमें दलित हो या स्त्री, उसके प्रति रागात्मक तादात्म्य स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख प्रयोजन है। (ओमप्रकाश बाल्मीकि, द.स. का सौन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 26) मनुष्य की स्वतन्त्रता इसका प्राणतत्व है। व्यक्ति के अस्तित्व और अस्मिता के लिए जो आवश्यक है, दलित साहित्य उसका पक्षधर है, मानवता का पक्षधर साहित्य है। मानमंगल तथा मुक्ति के लिए संघर्षरत है, जो हाशिए पर खड़ा है। उसके लिए आर्थिक समानता और राजनीतिक भागीदारी चाहता है। मोहनदास नैमिषराय, हि.द.साहित्य पृष्ठ 311) इसी कारण दलित साहित्य अलग सौन्दर्यशास्त्र की माँग करता है। मोहनदास नैमिशराय - समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व - इन तीनों को दलित साहित्य का सौन्दर्यतत्व मानते है। (हि. दलित साहित्य पृष्ठ 248)। दलित साहित्य दो प्रकार का है - दलित साहित्यकार केवल दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही दलित साहित्य मानते हैं। उनका मानना है कि दलित की पीड़ा को कोई भुक्त भोगी ही जान सकता है, वह उसे जिस गहनता के साथ व्यक्त कर सकता है, वैसा कोई गैर-दलित नहीं कर सकता। (ओम प्रकाश वाल्मीकि, द. साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, पृष्ठ 24) चाहें दलित साहित्य की बात हो अथवा गैर दलित यानी दलित विषयक साहित्य दोनों का लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन और समतामूलक समाज। यहाँ अस्पृश्यता जैसी महामारी का विनाश होगा। बाहरी असमानता के साथ-साथ दलित साहित्य अपने आन्तरितक समाज में जड़े जमाएँ जात-पांत, अस्पृश्यता, जातिगत उत्पीड़न और जाति परिवर्तन जैसी समस्याओं के प्रति भी संघर्षरत है। वस्तुतः समाजिक बराबरी, आर्थिक बराबरी, पेशा चुनने की स्वतंत्रता, सत्ता की भागीदारी आदि प्रमुख रूप से दलित साहित्य के बीज बिन्दु है, जिसके लिए वह निरन्तर कार्यरत है।

# डाक्टर पेशे में लिप्त स्वार्थ

**मुक्ति शर्मा,**

**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने हेतु कर्त्तव्यों से व्यक्ति विमुख होता जा रहा है अपने मूल्यों को खोता जा रहा है आज पैसे की चकाचौंध कई बार व्यक्ति को गलत करने के लिए उकसाती है डॉक्टर को देवता के रूप में माना जाता है आज स्वार्थ के कारण कर्त्तव्य से विमुख हो रहे है। इसका चित्रण लेखिका ने 'विजन' के माध्यम से किया है डॉक्टर शरण अपने आई सेन्टर को आसमान की ऊँचाईयों तक पहुँचाना चाहते थे वह मरीजों को लुटते है वह चाहते हैं उनकी बहु उनके इस पाप में शामिल हो परन्तु नेहा कर्तव्य का पालन करते हुए पति का विद्रोह करती है वह कहती है चन्द-पैसे की खातिर आप मरीज को इस तरह नहीं ठग सकते ''मरीजो को ठगने का यह तरीका खासा घिस-पिट गया है ठगाई की दुनिया में कुछ नया इजाद हुआ ही होगा करे कोशिश अपनाने की। ही इज अ सर्जन और अ बूचर ?' एक तरफ लेखिका ने पेशे के प्रति ईमानदार डाक्टरों को प्रस्तुत किया है तो दूसरी तरफ पेशे में धांधली करने वाले डॉक्टरों का पर्दाफाश किया है। कुछ डॉक्टर अपने स्वार्थ एवं लाभ के लिए यूरीन टैस्ट किसीस्कैन, एम.आर.आई आदि जैसे रोगी को उसकी आवश्यकता हो न हो। डाक्टरों को अपने लाभ के आगे दूसरों को दर्द नहीं दिखता। ये डॉक्टर प्राइवेट अस्पतालों का जाल फैला लोगों को गुमराह करते है। भारी-भरकम फीस देने के बावजूद भी लोगों को लम्बी कतार में रहना पड़ता है। लम्बे इन्तजार के पश्चात रोगी जब डॉक्टर के पास पहुँचता है तो वह रोगी की परवाह किए बिना फोन पर बातें करते है जिसका वर्णन लेखिका ने कुइँयाजान में किया है -''माफ करिएगा, डॉक्टर साहब! मैं भी बाई प्रोफेशन राइटर हूँ। अगर मैं अपनी लेखनी के प्रति ईमानदार नहीं तो फिर लिखने का फायदा क्या ? आप तो डॉक्टर है, खुदा के बाद जिन्दगी देने वाला एक इंसान। अगर वह मरीजों में विश्वास न जगा सका तो ..... मेरे इस बरताव के लिए मुझे माफ करेंगे, मगर आप जैसों को झिझोड़ना मैं जरूरी समझती हूँ।''

डाक्टर का अपने पेशे के प्रति ईमानदार होना अत्यावश्यक है। आज डॉक्टरों में यह धारणा घर कर चुकी है कि पेशे के प्रति ईमानदार डॉक्टर परिवार के प्रति हकदार नहीं हो सकता। परन्तु इसका उदाहरण डॉ. कमाल है जो अपने परिवार एवं पेशे में संतुलन बनाए रखते है लेखिका का मानना है कि एक माँ भी तो सारे काम छोड़ पहले रोते बच्चे को उठाती है। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं निकलता कि उसे परिवार के अन्य सदस्यों से प्रेम नहीं है। इसीलिए वह सकते है ''डॉक्टर का निज कुछ नहीं होता है। जो है उसका 'मरीज होता है। यदि कुरबानी आप नहीं दे सकते तो शैकिया डॉक्टर भी मत बनिए या फिर अपने को शादी-ब्याह से मुक्त कर ले। अगर यह भी न कर पाएँ तो फिर जिंदगी में संतुलन लाएं, जब मरीज के सामने है तो सिर्फ उसके और जब परिवार में है तो केवल उसके लेखिका कहती है सब काम छोड़ मरीजों को देखना डॉक्टर का कर्तव्य है परन्तु कुछ डॉक्टर अपने प्राइवेट क्लीनिक को और ऊँचा उठाने के लिए समझौता नहीं करते। नेहा अजय से सहयोग चाहती है कि अगर मैं मरीजों के हित में बात करूँ तो मेरा पति मेरे साथ हो परन्तु अजय का उत्तर सुनकर हैरान हो जाती है अजय कहता है बहुत बड़ी रकम लगा कर इस भव्य इसमात का निर्माण किया है अगर आप्रेशन के तुरंत बाद हम मरीजों को घर भेजते हैं तो हमारा कितना नुकसान होगा। नेहा को समझौते हुए कहता है-''डे केयर सर्जरी अच्छी चीज़ है समय बचाने वाला तरीका! मगर यह उन नार्सिंग होम्ज के लिए लाभकारी नहीं जिनमें मरीजों के ठहरने के लिए कमरे बनाये गये और सुविधाओं की व्यवस्था की गई है।

साधन मुफ्त में तो जुट नहीं जाते बैड, पंखें, एअर कड़ीशनर फ्रिज बगैरह देखती हो न तुम ?इनकी मेटेंनस कैसे हो आदमी का आधा हिस्सा कमरों की बुकिंग से आता है।''

पति की बाते सुन कर नेहा अत्यंत दुखी होती है कि किस प्रकार अजय भी मरीजों के साथ विश्वासघात कर रहा है। मात्र आर्थिक समृद्धि हेत उसको ऊँचा उठने की ललक पर आश्चर्य होता है वह स्पष्ट शब्दों मे कहता है ''घोड़ा घास से पारी करे तो खाये क्या ? मेडिसन के विशेषज्ञ यदि मरीज भर्ती न करें तो भूखे मर जाए।

नेहा पति को समझाने का अत्यंत प्रयास करती है परन्तु असफल हो जाती है। नेहा को यह मालूम है कि उसका पति सब देख रहा है जो गलत हो रहा है परन्तु वह पिता के खिलाफ नहीं जा सकता वह उस परिवार में अपने आप को अकेला महसूस करती है वह सोचती है मैंने तो कसम खाई थी मरीजों का ख्याल अच्छे ढंग से रखेगी परन्तु परिस्थितियाँ उसका साथ नहीं देती उसे याद आते है वो दिन जब डॉक्टर बनने से पहले उसने जो सपने पूरे करने की कसमें खाई थी भाग्य की बिडम्बना नेहा का डॉक्टर बनना अपने कर्तव्य का पालन करना था परन्तु स्थिति विपरीत थी नेहा की आँखों के सामने मरीजों पर अत्याचार हो रहा था। उनकी भावनाओं के साथ खिलबाड़ किया जा रहा था। डॉ. शरण अपने आई सेंटर को अत्यंत आकर्षित बनाने हेतु प्रयास कर रहे थे। जिनके लिए वह मरीजों को ठगने के नए तरीके ढूढ़ रहे थे-''पेइंग पेशेंट (खर्च करने वाले मरीज) को कैसे भाँपा जाता है ? फिर घेरकर अस्पताल के बाड़े में भेड़ों की तरफ कैसे हाँका जाता है ?घुमा-घुमाकर कैसे हलकाना किया जाता है ? और फिर होता है शिकार...'' पच्चीस साल पहले शरण आई सेंटर शिशु रूप में था पी शरण ने अत्यंत मेहनत करके क्लीनिक का रंग बदलकर आई सेन्टर के रूप में सामने आया। डॉ. शरण आधुनिक से अत्याधुनिक होना चाहते थे जिन मरीजों के पास पैसा होता है वह आराम करते है जिनके पास नही ंतो वह दर-दर की ठोकरें खाते हैं-''आँख, बैंक में आने के पहले ही बिक जाती है। पूअर परीज दो-दो, तीन-तीन साल में नम्बर आता है।''

नेहा एक ईमानदार डॉक्टर है वह मरीजों से धोखा नहीं कर सकती परन्तु वह पारिवारिक रिश्तों में उलझ कर रह जाती है वह अपने आप को असहय महसूस करती है क्योंकि पति और ससुर मरीजों की जिन्दगी से खिलवाड़ करते है नेहा को अत्यंत दुख होता है- ''अपना ही वजूद कटे टुकड़ों में पड़ा दिखता है-कहीं मन, कहीं आँखें, कहीं कान कहीं हाथ पाँव.....।'' और एक दिन आचनक ऐसी घटना घट जाती है नेहा के पैरों तले जमीन ही खिसक जाती है जब आई. सेन्टर में मरीज की मृत्यु हो जाती है चारों ओर भागदौड़ मच जाती है मरीज की साँस नहीं चल रही अजय कोशिश कर रहा है। परन्तु कोई फायदा नहीं होता, नेहा समझ खड़ी है अजय मदद के लिए गुहार लगा रहा है। वह कहता है-'', मैनेज फॉर द सेप्सर्स शेक!'' (नेहा सेंटर के लिए इस संकट से उबारों)! एक ओर लेखिका ने डॉ. अजय और डॉ. शरण जैसे डॉक्टर को सामने लाया है दूसरी ओर ऐसे डॉक्टर भी है जो अपना स्वार्थ नहीं देखते मरीजों के हित के लिए कार्य करते हैं। डॉ. काजिम तो अपना सारा फंड कैंसर अस्पताल को दे देते हैं। डॉ. सुबोध, डॉ. गंगुली समाज सेवा को जीवन का महत्वपूर्ण अंग समझते हैं। डॉक्टर के माध्यम से नासिरा शर्मा अपने सपने को साकार होता देखती है-''डॉक्टर को केवल एक सपना देखने का हक है वह है अधिक से अधिक मरीजों तक पहुंचना और उनको रोग-मुक्त बनाना।

अगर डॉक्टर अपने कर्तव्य का पालन ईमानदारी, कर्मठता से करें तो समाज में एक चेतना का आरम्भ होगा कोई भी मरीज पैसे के कारण जान से हाथ नहीं धो सकता ।

# प्रसाद का मूल्यपरक जीवन-दर्शन

**डॉ. मिथिलेश दीक्षित**
**लखनऊ (उ.प्र.)**

मूल्यों का मानव-जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। मूल्य मानव-जीवन के अस्तित्व तथा आध्यात्मिक-आदर्शात्मक-सांस्कृतिक आयामों से उद्‌भूत होते हैं। मानव-जीवन मूल्यों से ही नियन्त्रित होता है। मूल्यों का महत्व सापेक्षिक होता है तथा इनका सम्बन्ध मानवीय चेतना से होता है। मानवीय मूल्यों में जीवन की सार्वभौम संवेदना और प्रयोजनशीलता को स्वीकार किया जाता है, ये जीवन-मूल्य साहित्य में सौन्दर्य, शिवत्व एवं सत्य के रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं। मूल्यपरक होने के कारण ही साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। साहित्य की मूल्यवत्ता उसके स्वरूप के साथ-साथ उसके व्यापक प्रयोजन में निरपेक्ष या असम्पृक्त प्रवृत्ति या कृति नहीं होती। उसके पीछे एक लम्बी साहित्य परम्परा होती है। वह क्षण या अवधि, जिसमें वह कृति रची गयी, उस लम्बी परम्परा की ही एक सम्बद्ध कड़ी है और वह कृतिकार उसी समूह की एक इकाई है, फिर भी किसी विशिष्ट अनुभूति-प्रक्रिया और रचना-प्रणाली के बल पर सृजल का वह क्षण समस्त परम्परागत इतिहास से अधिक सजीव और मर्मस्पर्शी बन जाता है। इस क्षण में उसके द्वारा अनुभूत भावसत्य केवल उसका और उस क्षण का ही न रहकर साधारणीकृत और स्थायी हो जाता है। मूल्याधिष्ठित साहित्य शाश्वतता को प्राप्त होता है।

छायावाद के सुप्रसिद्ध रचनाकार जयशंकर प्रसाद की कृति 'कामायनी' का इसीलिए शाश्वत महत्व हैं। रचनाकार का व्यक्तित्व और उसका जीवनदर्शन जितना उदात्त, उदार और परिष्कृत होगा, उसकी रचनाधर्मिता कभी तदनुरूप ही होती है। चिन्तन का व्यापक शितिज उस व्यापक भावबोध और जीवन-मूल्यों के प्रति प्रेरित करता है। हिन्दी के छायावादी काव्य की मूल प्रवृत्ति मूल्यपरक रही है। छायावाद के प्राय: सभी कवियों ने भी प्रकारान्तर से यह बात स्वीकार की है। सुमित्रानन्दनपन्त जी का कहना है, छायावाद की मुख्य तथा मध्यवर्त्तिनी धारा राष्ट्रीय अन्तर्जारण की चेतन तथा वैश्वविकास के नये मूल्य के रूप -स्पर्श को वाणी देने की ओर गतिशील रही है। उन्होंने छायावाद का मूल प्रयोजन बताया-जिस प्रकार वैज्ञानिक विचारधारा ने बाह्य जीवन के प्रति एक ऐतिहासिक-भौतिक दृष्टि दी है, उसी प्रकार छायावाद भी मनुष्य के अन्तर्जीवन के विकास तथा विश्व-संयोजन के लिए नवीन चेतनात्मक ऐतिहासिक अनुभूति से अनुप्राणित है। प्रसाद ने छायावाद का सम्बन्ध स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति से माना तथा महोदवी वर्मा ने छायावादी काव्य को हृदय की अभिव्यक्ति माना है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने छायावाद को हृदय की अनुभूति बताया। वह भौतिक संसार में अनन्त जीवन के तत्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवन से जोड़कर हृदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है।

छायावाद की एक स्वस्थ एवं दार्शनिक पीठिका थी, जो भारत की प्राचीन संस्कृति और उसके वाड्.मय से परिवपुष्ट थी, साथ ही उस पर युगीन चेतना का अत्यधिक प्रभाव रहा। सांस्कृतिक चेतना, सर्वात्मवाद, अध्यात्मवाद तथा लोकमंगल की भावना छायावाद के समष्टिबोध के परिचायक बने। छायावाद पर 'रोमांटिसिज्म का प्रभाव रहा, परन्तु उसे भारतीय संस्कृति और परिवेश के आलोक में ही ग्रहण किया गया था। संसार में ईश्वर की व्यापकता, कण-कण में चेतना का अस्तित्व, आत्मबोध, आस्थावादिता आदि से सम्बन्धित श्री अरविन्द और स्वामी विवेकानन्द की धारणाओं का छायावादी कवियों पर अधिक प्रभाव पड़ा। गाँधी जी के सत्य, अहिंसा, सेवा, करुणा, सर्वोदय, प्रेम, समता आदि का भी उन पर प्रभाव पड़ा। प्रसाद पर शैवदर्शन के प्रत्यभिज्ञा-चिन्तन का तथा अद्वैतवेदान्त और बौद्धदर्शन का प्रभाव रहा है। महादेवी पर वेदान्त और गीता का, पन्त पर श्री अरविन्द एवं गाँधी जी का तथा निराला पर कवीन्द्र एवं विवेकानन्द का सर्वोपरि प्रभाव रहा। समष्टि-प्रभाव की दृष्टि से छायावाद का कथ्य अत्यन्त संवेदनशील तथा सीमा अत्यनत विराट् है।

छायावाद के कवियों की दृष्टि मूल्यकेन्द्रित रही है। पन्त जी ने माना कि छायावाद ने सामूहिक जीवन-संचरण को बहिर्मुखी अर्थ में न ग्रहण कर उसे उसके वैश्विक मूल्य या अन्तर्मूल्य के अर्थ में ग्रहण किया। स्वानुभूति उसके लिए विश्वात्मा या विश्व-जीवन का पर्याय बन गयी । इन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से व्यष्टिचेतना से व्यापक चेतना

की एकता स्थापित की। छायावादी कवियों का काव्य प्रेम, आशा, आस्था और विश्वास का काव्य है। उनके काव्य में सत्य सौन्दर्य के रूप में मूर्त्तित हुआ है, मंगलमय प्रयोजन को अपने साथ लेकर अभिव्यक्त हुआ है। इन कवियों ने लौकिक प्रेम को भी आध्यात्मिक धरातल पर पहुँचा दिया। ''महोदवी ने इस आध्यात्मिकता को करुणा की आत्मा में खोजा है। पन्त ने सर्वात्मवादी चेतना में इसे ढूँढा हैं। प्रसाद ने आनन्दवादी उदात्तधारा में उसे पाया है और निराला को वह मिला है-सांस्कृति चेतना में, जो शक्ति और सोऽहम्-बोध में सन्निहित है।''

वर्तमान समय में पूरा विश्व अपसंस्कृति के दौर से गुज़र रहा है। अब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की बात स्वप्न-सी लग रही है। भौतिक रूप से जितनी सुख-सामग्री बढ़ती जा रही है, उतनी ही लालसाएँ बढ़ती जा रही हैं, उतनी ही अतृप्ति बढ़ती जा रही है और उतने ही दु:ख बढ़ते जा रहे हैं। प्रसाद ने विश्व की आकुल-व्याकुल, त्रस्त मनुष्यजाति को अपने काव्य के माध्यम से चेतना आनन्द और जागरण का सन्देश दिया। 'कमायनी' के मनु के द्वारा जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उठने का सन्देश दिया। श्रद्धा की वाणी द्वारा कर्म का सन्देश दिया। उनके द्वारा रचित 'कामायनी' महाकाव्य सम्पूर्ण विश्व की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक चेतना के स्फुरण के लिए एक विशिष्ट वरदान है। इस महाकाव्य के द्वारा प्रसाद ने निरन्तर द्वयता में लगी रहने वली, अनजान समस्याओं में व्यस्त तथा एकता के नष्ट हो जाने के कारण अनन्त कोलाहल एवं कलह में फँसी हुई संकुचित दृष्टि वाली आधुनिक युग की इस 'अभिनव मानव प्रजा-सृष्टि' को भी सन्देश दिया है। यह दु:ख तो ईश्वर का रहस्यमय वरदान है। मनुष्य अपनी कमियों पर विजय प्राप्त कर विजयी कहलाने का अधिकारी हो सकता है। वह अपनी अन्तश्चेतना को समझकर ही शक्तिशाली हो सकता है। तभी प्रसाद कहते हैं-''शकितशाली हो, विजयी बनो'' मनुष्य विधाता की इस कल्याणी सृष्टि को सफल तभी बना सकता है, जब वह कर्मशील रहकर मानवता की उन्नति में सहायक हो सकता है।

प्रसाद ने आधुनिक बुद्धिजीवी मानव की समस्याओं पर गहराई से चिन्तन किया और उसके व्यक्तित्व को पूर्णत्व देने के लिए संसार की सत्यता का प्रतिपादन किया, सौन्दर्य को आन्तरिक चेतना से जोड़ा तथा अभेदवादी अवधारणा व श्रेष्ठकर्मों के विघटन से आनन्द-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। संसार का प्रत्येक पदार्थ कर्मरत है। मनुष्य जब सत्कर्म और सेवा रत होता है, तो उसके कर्म कर्त्तव्य बन जाते हैं। सेवा अपनी सुख-संस्कृति है। उन्होंने कर्म पर बल देते हुए मानव-मानव तथा ईश्वर औश्र मानव में अभेद की स्थिति बतलायी। उन्होंने, इस प्रकार दर्शन के श्रेय को काव्य का श्रेय बना दिया। मानव का जीवन अमूल्य है। उसमें कर्म का प्रावधान अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वह इच्छा से ज्ञान तक की समीाओं का अतिक्रमण करता है। पाप-पुण्य का कारण बनता है, तो मानव को देवत्व तक पहुँचाने का भी कारण बनाता है। सम्पूर्ण विश्व को उन्होंने कर्मभूमि माना है और कर्म की श्रेष्ठता को सृष्टि से स्थायित्व के लिए आवश्यक माना है-

''यह नीड़ मनोहर कृतियों का, यह विश्व कर्म रंग-सथल है।''

कर्म के प्रति आस्था ही जगत् के प्रति सत्य का आभास कराती है। संसार के प्रति मानव की प्रगतिपरक रूचि को दृढ़ करती है, जहाँ उसे निरन्तर कर्म करते रहने पर सुख का प्रकाश दिखायी पड़ता है-

''जीवन-धारा सुन्दर प्रवाह, सत् सतत प्रकाश सुखद अथाह।''

यह संसार सुन्दर है। यह जीवनधारा सुन्दर है। प्रसाद जी के अनुसार कर्म का भोग और भोग का कर्म-यही जड़ का चेतन आनन्द है। कर्मवीर अपने पथ और अपने गन्तव्य का चयन कर लेता है। प्रसाद की 'प्रेमपथिक' की प्रक्तियाँ हैं-

''इस पथ का उद्देश्य नहीं है, श्रान्त भवन में टिक रहना,
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक, जिसके आगे राह नहीं,
अथवा उस आनन्दभूमि में, जिसकी सीमा कहीं नहीं।'' (प्रेमपथिक)

यह आनन्द चरम जीवन-मूल्य है और जीवन का परमलक्ष्य है। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप आनन्दमय ही है। मनुष्य की जीवन-यात्रा इसी आनन्द की प्राप्ति हेतु अनवरत चलती रहती है। यह यात्रा आनन्द से आनन्द तक की यात्रा है। इसके लिए संसार के सभी मनुष्य प्रयासरत हैं। प्रसाद ने इस मानव-जीवन का महत्व प्रतिपादित किया है और संसार को ब्रह्म का ही विराट् स्वरूप माना है। इस संसार में मानव जीवन ईश्वर का वरदान है, श्रद्धा द्वारा यह तथ्य प्रतिपादित

हुआ है-

''जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत् की ज्वालाओं का मूल।

ईश का वह रहस्य वरदान, कभी मत इसको जाओ भूल।''

जीवन और जगत् से विमुख नहीं हुआ जा सकता। मानव को चाहिए कि वह जड़-चेतन-सभी से समरस होकर अपने सुखों का विस्तार करे। समरसता से आनन्द की स्थिति आती है।

प्रसाद की मूल्यचेतना भारतीय दर्शन, विशेषकर प्रत्यभिज्ञादर्शन पर आधारित है। इस दर्शन के अनुसार 'शिव' ही परमत्व है, जो चिन्मय सत्ता है। वे शक्ति से समन्वित हैं और विश्व के प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त हैं। 'चित् शक्ति के द्वारा वे स्वतः प्रकाशित होते हैं। आनन्द शकित के द्वारा वे निरतिशय आनन्द का साक्षात्कार करते हैं। इच्छाशक्ति के द्वारा वे वैद्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं और क्रियाशक्ति के द्वारा वे सर्वआकारधारण करने की योग्यता प्राप्त करते हैं।'' सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह और तिरोधान-उनके पाँच कार्य हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार परमसत्ता की इच्छा से सृष्टि उन्मीलित होती है। प्रसाद ने भी कहा है-''उसी का उन्मीलन अभिराम, उसी में सब होते अनुरक्त।''

वह परमत्व चिन्मय है, अतः प्रसाद यह मानते हैं कि यह सृष्टि भी चिन्मय है। यह चराचर सृष्टि उस परम शिव के हृदय रूपी बीज या शक्ति में इस तरह विद्यमान रहती है, जैसे वट के बीज में, पूरा वृक्ष समाहित रहता है। यह सृष्टि इसी परमचेतना सत्ता का स्फुरण है, जिसके लिए प्रसाद कहते हैं-''चेतनता एक विलसती।'' प्रसाद मानते हैं कि यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी की लीला है। ''जलथलनभ में कुहुक बन गया, जो अपनी ही लीला से।'' जब इस परमतत्व का यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तभी मोक्ष की स्थिति होती है। यही प्रत्यभिज्ञादर्शन का अभेदवाद है, जिसे प्रसाद ने अपने काव्य द्वारा अभिव्यंजित किया है।

परमसत्ता को 'सच्चिदानन्द स्वरूप' कहा जाता है। प्रसाद ने भी उसे सत्, चित् और आनन्दस्वरूप माना है, साथ ही समग्र सृष्टि को सत्य, चिरन्तन और आनन्दमय माना है। 'विशाक्ष' में उन्होंने कहा है-

''यही सत्य, यही स्वर्ग, यही पुण्य पोष है''। (पृ0 31) तथा

''वह और कुछ नहीं, विशाल विश्व रूप है।'' (पृ0 31)

यह प्रकृति उसी चिति का चेतन रूप है। जिस समय जीवन को यह ज्ञान हो जाता है कि सर्वत्र शुद्ध चेतन ही है, जड़ में भी चेतन है तथा अखिल विश्व एक अखण्ड सत्ता है, उसी समय उसे अनुभव होने लगता है कि वह सबका है, और सर्वस्व उसी का है। उसे उसके आनन्द स्वरूप का बोध हो जाता है। वह क्रियाशील प्रकृति की क्रीड़ा के चेतन रहस्य को समझने लगता है। उसे विश्व और विश्वात्मा रूप ईश्वर और सृष्टि में अभिन्नता दिखायी देने लगती है। वह विश्वत्मा के साथ विश्व में खेल खेलने लगता है। वह सर्वत्मा के स्वर में, आत्म समर्पण के प्रत्येक ताल में, अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को विस्मृत कर देता है। उसका चैतन्य सागर-निस्तरंग हो जाता है। उसकी ज्ञानज्योति निर्मल हो जाती है और वह संसार के बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार प्रसाद ने प्रत्यभिज्ञादर्शन के अभेदवाद को समत्व के लिए आवश्यक समझकर अपनी अनेक कृतियों के माध्यम से मानवता को मूल्यपरक सन्देश दिया। इस ''अभेद बुद्धि से विराट् विश्व और विश्वात्मा, ईश्वर और सृष्टि, जीव और जगत्.... सभी की अभिन्नता एवं समरसता का बोध होता है। इसी से पारस्परिक द्वेष मिटकर मानवता का विकास हो सकता है और इसी से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का प्रसार होकर विश्व-बन्धुत्व के साथ-साथ विश्वभर में एक कुटुम्ब की स्थापना हो सकती है। इतना ही नहीं, इसी दार्शनिक विचाराधारा को अपनाकर जीव सम्पूर्ण जड़-चेतन पदार्थों को सम्य मानकर उन्हें, 'शिवमय' देखता हुआ, इसी जीवन में अपने को भी 'चिरानन्दमयी' सत्ता का रूप मानता हुआ, अखण्ड आनन्द का अनुभव कर सकता है।''

परमतत्व की भाँति जीव भी शुद्ध, चित्रूप, आनन्द स्वरूप हैं, परन्तु 'नियति-कंचुक जीव की व्यापकता को संकुचित करके सीमित बना देता है। यह नियति ईश्वर की नियामिका शक्ति है। जीव को ज्ञान या अविज्ञा में डालने वाले आवरण या कंचुक पाँच हैं-कला, विद्या, राग, काल और नियति। इनमें से नियति पाँचवा कंचुक है। प्रसाद ने अनेक स्थलों पर इसी 'नियति का वर्णन किया है। प्रसाद ने 'कामायनी' के रहस्य सर्ग में 'नियति' के बारे में कहा है-

'नियति चलाती कर्मचक्र यह।'

सृष्टि का समस्त क्रिया-व्यापार नियति के अधीन है। नियति एवं भाग्यवादिता में अन्तर है। भाग्यवादी निष्क्रिय हो सकता है। नियतिवादी क्रियाशील रहता है। प्रसाद के अनुसार यह नियति ही सृष्टि की समरसता और आनन्दप्राप्ति में सहायता करती है। इस समरसता का मूलाधार श्रद्धा है। श्रद्धा मानसिक जगत् की विषमता को दूर करती है। यह ऐसी सात्विक वृत्ति है, जो मन को उच्चतम भावभूमि पर ले जाती है।

उपनिषदों के अद्वैतवाद तथा शैवदर्शन के समरसता के सिद्धान्त को प्रसाद ने आत्मसात् किया तथा अपने काव्य में उच्च मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में उन्हें प्रस्तुत किया। शैवदर्शन के समता के सैद्धान्तिक स्वरूप को उन्होंने मानव जीवन के हितार्थ व्यावहारिक रूप दिया। इस प्रकार प्रसाद की समरसता दृष्टि में व्यक्ति के अन्तर्तय से लेकर विश्व तक के संघर्ष को समाप्त करने का प्रसास है। समरसता के कारण न कोई अधिकारी रहता है और न कोई अधिकार का भाव रहता है-

''समरसता ही सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।''

द्वयता की स्थिति से ही जीवन में दु:ख आते हैं। मनुष्य जब तक संसार को अपने से पृथक् देखता है, तब तक वह भ्रम, भय शंका, संघर्ष, दु:ख में निमग्न रहता है, ज बवह संसार का ही स्वयं को एक अंग मान लता है, तो उसमें भेद बुद्धि नहीं रहती और उसे आनन्द की अनुभूति होती है। इसके लिए प्रसाद ने मूलमन्त्र दिया है-

''चिति का विराट् वपु मंगल।'' तथा

''कर रही लीलामय आनन्द, महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त।
उसी का उन्मीलन अभिराम, उसी में सब होते अनुरक्त।।''

प्रसाद ने 'समरसता' के दार्शनिक सिद्धान्त का सरलीकरण कर दिया है। उनकी समरसता की व्यावहारिक दृष्टि भी एकांगी नहीं है। उन्होंने समरसता की स्थिति में ही सभी पदार्थों की विद्यमानता सिद्ध की है। धर्म, दर्शन, विज्ञान और साहित्य में, व्यक्ति और समाज में, व्यक्ति एवं राष्ट्र एवं विश्व में, जड़ एवं चेतना में व्याप्त या आरोपित विषमत को अपने इस व्यावहारिक मूल्यपरक दृष्टिकोण द्वारा दूर करने का प्रयास किया है।

प्रसाद की भावधारा में सभी जीवन-मूल्य समाहित हुए हैं। उन्होंने विभन्न दार्शनिक विचारधाराओं, प्राचीन भारतीय वाड्.मय के अमूल्य एवं उपयोगी अंशों को स्वीकृत कर आत्मसात् किया और अपने काव्य में स्थान दिया। उनके द्वारा मानव को कर्म के प्रवृत्ति मार्ग पर चलने का सन्देश दिया। श्रद्धा के माध्यम से प्रसाद ने कहलवाया कि 'काम' मंगल से परिणाम है, अत: श्रेयस्कर है। यह संसार भी तो उस परमसत्ता की इच्छा का परिणाम है। काम जब शाश्वत सुख की अनुभूति बन जाता है, तब उसे प्रेम कहा जाता है। प्रेम और अद्वैत अभेद की स्थिति में मनुष्य को पहुँचाता है। प्रेम एक शाश्वत जीवन-मूल्य है, जो सभी प्राणियों को एक सूत्र में बाँधता है। मानवता की स्थिति एवं विकास प्रेम के कारण है। वैश्विक एकात्मबोध प्रेम की व्यापकता का परिणाम है। प्रकृति प्रेम और मानव प्रेम-दोनों की अभिव्यक्ति चरम जीवन-मूल्य के रूप में प्रसाद के काव्य में हुई है। प्रेम, आनन्द एवं करुणा चिरन्तन जीवन-मूल्य हैं, जिनका व्यापक दृष्टि से चित्रण प्रसाद के साहित्य में मिलता है। इन शाश्वत मूल्यों के अन्तर्गत ही सभी जीवन-मूल्य समाविष्ट हो जाते हैं, ताकि वह अन्य में स्वयं की स्थिति समझे, सबसे प्रेम करके आनन्दित हो, ईश्वर से प्रेम करके आनन्द की अनुभूति करे।

प्रसाद का काव्य समष्टिबोध का काव्य है। उनका मूल्यपरक मानवतावादी चिन्तन उनके काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होता है। प्रसाद की रचनाधर्मिता की प्रतिबद्धता मानवजीवन के समत्वपूर्ण विकास के प्रति रही। सौन्दर्य-चेतना में ही सत्य समाहित है, शिवत्व समाहित है। सौन्दर्य चेतना से पृथक् नहीं है। सत्य चेतना से पृथक् नहीं हैं। जहाँ पर सत्य, शिव और सुन्दर हैं-वहीं आनन्द की स्थिति है। प्रसाद का जीवन-दर्शन इन दो पंक्तियों में गागर में सागर की तरह समाहित है-

''चिति का विराट् वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर।' (कामायनी)

सौन्दर्य चेतना से अलग नहीं है। चेतना सत्य से अलग नहीं हैं। जहाँ सत्य, शिव, सुन्दर हैं- वहीं आनन्द है। प्रसाद ने सर्वत्र विरट् के दर्शन किये, इसीलिए उनका जीवन-दर्शन भी विराट् है। जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति भी विराट्

है।

प्रेम उदात्त मानवीय जीवन-मूल्य है। प्रसाद प्रेम के गायक हैं, प्रेम का भी सत्य, शिव, सुन्दर से सम्बन्ध है। जिसके हृदय में आनन्द निवास करता है, उसी के हृदय में प्रेम निवास करता है।

प्रसाद ने श्रद्धा के रूप में आदर्श भारतीय नारी के त्यागमय स्वरूप का चित्रण कर उदात्त प्रेम की प्रस्तुति की है। उसका हृदय दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास से परिपूर्ण है। प्रेम में विश्वास और त्याग आवश्यक है। यह प्रसाद का चिन्तन है। प्रसाद का प्रेमभाव व्यक्ति से लेकर राष्ट्र और विश्व तथा पूरी मानवता के लिए है। 'कामायनी' में श्रद्धा का प्रेम तथा कार्नेलिया का भारत-प्रेम वस्तुतः प्रसाद के भावबोध के दो अंग हैं। कार्नेलिया द्वारा राष्ट्र प्रेम व्यक्त करती हैं पंक्तियाँ-

''अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भी विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर,
छिटका जीवन-हरियाली पर मंगल-कुमकुम सारा।''

प्रसाद के लिए भारतवर्ष केवल एक भूखण्ड नहीं है। यह उनके लिए एक विराट् दिव्यबोध है, जो ईश्वर के वरदानसदृश है। भारतवासियों को उन्होंने अपनी प्रत्येक रचना में जागृति का सन्देश दिया है। उनका उद्‌बोधन-गीत आज भी 'चरैवेति-चरैवेति' का स्मरण कराता है-

''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो-दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढ़े चलो, बढ़े चला।''

रचनाकार समय और देश की परिस्थितियों से तटस्थ नहीं रह पाता। प्रसाद की दृष्टि सामयिक भी थी और शाश्वत भी। उन्होंने मशीनी युग की सभ्यता पर भी दृष्टिपात् किया और तथाकथित सभ्य मानव को इसके दृष्परिणामों से कविता के माध्यम से सचेत भी किया। नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे है। अणुशक्ति पर अधिक बल दिया जा रहा है। परमाणु-हथियारों की होड़ चल रही है। सर्वत्र विनाश की, युद्ध की बात सोची जा रही है। प्रसाद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से निर्माण की बात की है। संघर्षो से उबरने की बात की है। मानवता के विजयी होने की बात की है। किसी व्यक्ति या जाति या देश को नष्टकर जीतने की बात नहीं की। मानव, चाहे वह कहीं का हो, उसमें मानवता के सभी मूल्यों का समावेश हो और वह मानवता के हित के लिए ही चिन्तन-मनन और कार्य करे। 'कामायनी' में उन्होंने मानवता को सशक्त और समृद्ध बनाने के लिए सन्देश दिया। आज मनुष्य के पास जितने साधन हैं, क्षणिक सुख-प्राप्ति के साधन हैं। प्रसाद ने चिरन्तन आनन्द की बात की है। प्रसाद ने आधुनिक बुद्धजीवी 'मानव' की समस्याओं पर गहनता से विचार किया तथा उसके आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व के निर्माण के लिए एक ओर तो संसार की सत्यता का प्रतिपादन किया, जिससे कि कोरे अध्यात्म का सहारा लेकर वह संसार से विमुख न हो जाये। इसीलिए उन्होंने कर्म का सन्देश दिया। संसार का प्रत्येक पदार्थ कर्मरत है। मानव जब सत्कर्म करता है और सेवा में रत होता है, तो वहीं उसके लिए कर्त्तव्य बन जाता है। उन्होंने कहा-

''सबकी सेवा न परायी
वह अपनी सुख-संसृति है।'' (कामायनी)

उन्होंने ईश्वर तथा मानव में अभेद की स्थिति बतायी, ताकि मानव स्वयं पर गर्व कर सके और अपने व्यक्तित्व द्वारा श्रेयस्कर कार्य कर सके। इस प्रकार वह अभेदवादी विचारों और श्रेष्ठ कर्मो के द्वारा आनन्द को प्राप्त कर सके।

दर्शनदृष्टि और अध्यात्मवादिता मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं, तभी मनुष्य, विषमता की पीड़ा से बच सकता है और जीवन का सहज और वास्तविक मूल्य-आनन्द प्राप्त कर सकता है। प्रसाद ने प्रसिद्ध दार्शनिकसिद्धान्तों, शैवागमों की कतिपय प्रमुख प्रवृत्तियों को आत्मसात् कर अधुनिक मानव के लिए व्यावहारिक और उपयोगी समझकर

कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिससे कि आज का बुद्धिवादी मनुष्य संसार की ओर स्वयं की वास्तविकता समझ ले और क्षणिक सुखों के लिए, स्वार्थ के लिए संसार का और स्वयं का विनाश न कर सके।

जो आनन्द मानव को स्वत:प्राप्त है, उसे विस्मृत कर अन्य सुलभ और क्षणिक पदार्थो की तलाश में भटकना उसके लिए हितकर नहीं है, उसी आनन्द में स्थित होना और सृष्टि के रहस्य को, अपनी वास्तविकता को अपने स्वरूप को समझ लेना, उसके लिए नितान्त आवश्यक है। प्रसाद ने इसीलिए जीव और ब्रह्म, ब्रह्म और जगत् की अभेदता का समर्थन किया है। सम्पूर्ण संसार में 'महाचिति सजग हुई सी व्यक्त' है। वही चेतन में है। वही जड़ में है अत: जड़-चेतन का एक भेद भी उचित नहीं। प्रसाद की दृष्टि कितनी विशाल है कि वे समस्त जड़-चेतन में एक ही सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, मानव-मानव में अन्तर करना तो निर्मूल ही सिद्ध हो जाता है। भारतीय आध्यात्म में यही एकत्व, यही समत्व है और यही समरसता है, जिसकी प्रसाद जी ने प्रस्तुति दी है। 'कामायनी' उनके समस्त चिन्तन की निचोड़ है।

यह अनेक रूपतामक जगत् महाचिति का ही विराट् शरीर है। जीव भी चेतन पुरुष है। यह चेतन पुरुष जब आत्मसाक्षात्कार कर लेता है, तो अपनी शक्तिरूपिणी लहरों से आनन्द-सागर में निरन्तर तरंगायित रहता है। आनन्दप्राप्ति की इतनी सरल अवधारणा संसार के किसी काव्यकार ने प्रस्तुत नहीं की है। प्रसाद के चिन्तन का यह नवीन प्रयोग है।

प्रसाद ने मस्तिष्क अविा तर्कज्ञान का हृदय अथवा श्रद्धाभाव का जो समन्वय चित्रित किया है, वह वर्तमान विश्वमानवता के लिए वरदान है। कोरी बुद्धिवादिता मानव के लिए हानिकारक है और कोरी भावुकता भी उसके लिए हानिकारक है। दोनों का सन्तुलित समन्वय ही मानव-कल्याण में सहायक होगा। चेतना या मन और भौतिक जड़ पदार्थ अर्थात् 'माइण्ड' और 'मैटर' के समन्वय द्वारा उन्होंने वैज्ञानिकों को भी सचेष्ट कर दिया है कि दोनों का समन्वय और सन्तुलन मानवता के लिए अपरिहार्य है। इस प्रकार प्रसाद का चिन्तन उनकी परम्परा से तथ्यों की ग्रहणशीलता, उनका विज्ञानसमस्त व्यावहारिक दृष्टिकोंण प्रशंसनीय है। वस्तुत: उनका काव्य मानवता के लिए एक आचारसंहिता है, जो अत्यन्त सरल, सुलझी हुई और व्यावहारिक है।

प्रसाद के काव्य में सामंजस्य एवं समन्वय की प्रवृत्ति मिलती है, विशेष रूप 'कामायनी' में उनका चिन्तन अत्यन्त पुष्ट एवं परिमार्जित रूप में मिलता है। विपरीत शक्तियों को केन्द्रित कर, उनमें सम्मिलित स्थापित करना प्रसाद का प्रयोजन रहा है। सर्वत्र जड़-चेतन का द्वन्द्व और स्त्री-पुरुष का द्वन्द्वपरिलक्षित होता है। प्रसाद ने द्वन्द्व के मूलाधार को ही समाप्त कर दिया। 'यही जड़ का चेतन आन्नद' कहकर तथा मनु को पहले 'एक पुरुष बताकर अन्त में आनन्दमय दिखाकर उन्होंने इस द्वयता को ही समाप्त कर दिया। मनु को समझाया गया है- कि द्वयता ही तो विस्मृति है, तथा

''तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में,
कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता ही सम्बन्ध बनी
अधिकार और अधिकारी की।'' (कामायनी)

नारी-पुरुष परस्पर सहयोगी और पूरक हैं। 'कामायनी में इसके अतिरिक्त राजा-प्रजा, अधिकार-अधिकारी, व्यक्ति-समाज, शासक-शासित आदि के भी द्वन्द्वों का एकीकरण किया गया है। मन-बुद्धि-भाव की भाँति ही जीवन में दु:ख-सुख, रात्रि-दिन, प्रकाश-अन्धकार की द्वयता बनी ही रहती है। जीवन में दोनों आवश्यक हैं। आनन्द की स्थिति प्राप्त होने पर आनन्द सागर में लीन मानव को ये सभी द्वन्द्वलहरों की भाँति प्रतीत होने लगते हैं और वह इनसे प्रभावित नहीं होता है।

प्रसाद ने दर्शन, धर्म एवं अध्यात्म के तत्व-चिन्तन को आत्मसात् कर अपने काव्य में रूपायित कर सरल और सुगम बना दिया। भारतीय जगजीवन के समीप लाकर उन्होंने दर्शन की जटिलता को बोधगम्य बना दिया। उनकी कल्पना भी संकल्प पर आघृत रही। उन्होंने एक 'विचार' देना चाहा, उसे समग्रता से पूरे रूपक के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया।

प्रसाद के काव्य में वैश्विक एकता, समष्टिगत समरसता विद्यमान है। प्रसाद को सम्पूर्ण सृष्टि अपने ही साथ जुड़ी जान पड़ती है-

''हम अन्य न और कुटुम्बी,

हम केवल एक हर्मी हैं।
तुम सब मेरे अवयव हो,
जिसमें कुछ नहीं कमी है।' (कामायनी)

'कामायनी में विश्व-नीड़ की कल्पना साकार हो उठी है। अत: यह लोक-मंगल का काव्य है।

''सब भेद-भाव भुलवाकर,
दु:ख-सुख को दृश्य बनाता।
मानव, कह रे, यह मैं हूँ,
यह विश्व नीड़ बन जाता है।'' (कामायनी)

प्रसाद की गहन अनुभूति ने वेदना या पीड़ा को भी एक चेतना के रूप में स्वीकार किया है। वेदना की ज्वाला कभी शमित नहीं होती।

''मणिदीप विश्व मन्दिर की
पहने किरणों की माला,
तुम एक अकेली तब भी
जलती हो रही ज्वाला।'' (आँसू)

'आँसू' में भी इसी वेदना और उससे उत्पन्न ज्वाला का चित्रण हुआ है।

''शीतल ज्वाला जलती है,
ईंधन होता दृग-जल का।
यह व्यर्थ श्वाँस चलचल कर,
करती है काम अनिल का।'' (आँसू)

परन्तु अवसान मानों सुख का अपार वैभव लुटा जाता है-

''शशिमुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आये।'' (आँसू)

प्रसाद ने 'कामायनी' में भी स्वीकार किया-

''दु:ख की रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात।'' (कामायनी)

प्रसाद जी की दृष्टि आशावदी एवं आस्थावादी है। प्रेम, आशा, विश्वास, आस्था, करुणा आदि ऐसे जीवन-मूल्य हैं, जिन्हें प्रसाद ने कहीं विस्मृत नहीं किया और मानव के उत्तरोत्तर विकास के लिए इनका अपनी काव्यकृतियों में स्थान-स्थान पर मूर्त्तीकरण किया है।

जैसा उनका उदार व्यक्तित्व था, वैसा ही उनका उदार और व्यापक जीवनबोध था। महादेवी ने उन्हें 'एक ऊँचा सीधा देवदारू' की संज्ञा दी थी। डॉ. पूरन चन्द्र टण्डन ने उन्हें दिव्यदृष्टा समीक्षकतथा माँ सरस्वती का जाड़ला पुत्र कहा है। उनका कथन दृष्टव्य है, ''भाव, विचार तथा दर्शन की चरम परिणति के इस 'ब्रह्म-शब्द-स्रष्टा' ने जीवानुभावों के समस्त सुख-दु:ख के प्रसंगों से प्रेरित होकर भविष्यत् के मानवीय अस्तित्व के लिए अपने अमर सन्देश को चिरन्तन एवं शाश्वत मूल्यवत्ता प्रदान की। भारत के सांस्कृतिक सत्यों, नैश्तक मूल्यों के ठोस निष्कर्षों और पौराणिक-ऐतिहासिक संकल्पों को मनोवैज्ञानिक अन्वेषण द्वारा अनुभूति और चिन्तन का विषय बनाकर अमूल्य, चिरजीवी मानदण्ड तथा अखण्ड प्रतिज्ञाओं के बृहत्तर मूल्यों से भरपूर अक्षय भण्डार देने वाली इस अपराजेय संकल्पशक्ति से भारतीय साहित्य

का इतिहास कभी उऋण नहीं हो सकता।'' प्रसाद एक सच्चे कलापारखी और तत्वचिन्तक थे, इसलिए उनके विविध सृजन-साहित्य में वह चिन्तन पूर्ण परिपाक के साथ विद्यमान है। श्रद्धा, मधूलिका, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि के माध्यमों से उनका चिन्तन सदैव मुखरित हुआ है।

जहाँ तक प्रसाद के काव्य के कलापक्ष की बात है, तो कहा जा सकता है कि उनकी भाषा, उनकी मूल्यपरक रचनाधर्मिता के सर्वथा अनुरूप रही है। वह उनके व्यक्तित्व की ही तरह सुसंस्कारित तथा भारतीयता के भावों से मुखरित और समृद्ध है। चित्रात्मकता उनकी भाषा की विशेषता है। लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक पद्धति उन्हें प्रिय रही है। प्रसाद के शिल्प में अमूर्त तत्व भी मूर्तित हो जाते हैं। कल्पना भी सत्य बन जाती है। व्यक्ति, पदार्थ या दृश्य जीवन्त हो जाते हैं। उनकी उर्वर कल्पना ने उनके काव्य को सौन्दर्य तथा लावण्य प्रदान किया है। प्रसाद के प्रकृतिपरक बिम्ब एवं प्रतीक, मानवीय बिम्ब एवं प्रतीक जीवन-मूल्यों की पीठित निर्मित करते हैं। वे रससिद्ध रचनाकार थे। भारत की सांस्कृतिक विरासत के प्रति प्रसाद को आस्था थी, और उसे वे काव्य के माध्यम से वर्तमान के मनुष्य-समाज तक पहुँचाना चाहते थे और उसके भविष्य को आनन्दमय, मंगलमय बनाना चाहते थे। अत: उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता को एक लक्ष्य की ओर, एक मूल्यधर्म की दिशा की ओर प्रेरित किया तथा छन्द, रस, गुण, अलंकार आदि ने उस लक्ष्य को मूर्तित करने के लिए उनके काव्य-संसार को सुसज्जित कर दिया। इस प्रकार भाव, भाषा, शैली एवं सम्पूर्ण प्रस्तुति की दृष्टि से प्रसार का काव्य मूल्यकेन्द्रित रही है और मानवीयबोध से सम्पृक्त रहा है।

## समस्या का निपटारा

**राजेन्द्र कुमार च्रोंगू**
**जानीपुर, जम्मू**

आतंकवादी
देश के मस्तक का ....
अलगाववाद
देशद्रोह
हत्याएँ
अत्याचार
सब में लिप्त ।
सरकार का दृष्टिकोण -
सहानुभूति
आर्थिक सहायता
दोषियों को बाइज़्ज़त रिहा
प्रोत्साहन देकर
राष्ट्रीय मुख्यधारा में सम्मिलित
करने का असफल प्रयास ।
वाह! आतंकवाद की समस्या का
बस हो गया निपटारा ।

## चींटी और सूरज

**राजेश जोशी**
**साहित्यकार, शिमला**

एक चींटी अपनी मूंड पर
शकर का एक पारदर्शी दाना उठाए
चली जा रही है
शायद धरती के नीचे बसी अपनी बस्ती की
ओर
सूरज अब एक ऐसे कोण पर आ गया है
कि उसकी एक पतली सी किरण
शकर के दाने को भेद कर
आर पार निकल रही है
और धूप का एक छोटा सा टुकड़ा सतरंगा
हो गया है
जो चींटी के साथ साथ चल रहा है ।

****

# मोदी जी की कविताओं में दृष्टि, दिशा और दर्शन

डॉ. मिथिलेश दीक्षित
लखनऊ (उ.प्र.)

भारतवर्ष के प्रधानमंत्री पद पर सुशोभित श्री नरेन्द्र मोदी एक कुशल राजनीतिज्ञ ही नहीं, एक सहृदय-समर्थ-जागरूक लेखक एवं कवि भी हैं। हिन्दी, गुजराती और अंग्रेजी-तीनों भाषाएँ उनके व्यक्तित्व एवं लेखन की माध्यम हैं। एक कवि के रूप में, साहित्यजगत में उनकी प्रसिद्धि और बढ़ी, जब उनकी काव्य-कृति 'आँख आ धन्य छे' सन् 2007 में प्रकाशित हुई। मूल गुजराती से 67 कविताओं के संकलन का हिन्दी अनुवाद प्रसिद्ध लेखिका डॉ. अंजना संधीर द्वारा सम्पन्न होकर सन् 2014 में (विकल्प प्रकाशन दिल्ली से) प्रकाशित हुआ। इन कविताओं के वर्ण्य-विषय के प्रमुख आधार-बिन्दु हैं-मानवीय बोध एवं जागृति का आह्वान आत्मकथा एवं जीवन-दर्शन, मूल्यपरक सकारात्मक भावबोध तथा प्रकृति से तादात्म्य का व्यापक भाव।

ये कविताएँ मानवीय बोध एवं राष्ट्रीय अस्मिता से सम्बन्धित हैं और जागरण का सन्देश होती है। 'कारगिल', 'गौरव', 'नर्मदा', 'उठो लाल! विजय स्वीकारो, 'उठो वीर' 'ललकार', आदि ओजप्रधान कविताएँ हैं, जो जागृति और कर्मण्यता का आह्वान करती है। कवि को स्वयं के मानवत्व पर जितना गर्व है, उतना ही भारतीय होने पर और हिन्दू होने पर गर्व है। उन्हें सदैव अनुभव हुआ कि उनका अस्तित्व एक विशाल सिन्धु की भाँति एक सीमित कलेवर में भी असीम से समन्वित है। उनकी 'हम तो' कविता इसी मानवत्व की आत्माभिव्यक्ति है-

''कोई पन्थ नहीं, नहीं सम्प्रदाय,
मनव तो बस है-मानव;
उजाले में क्या फ़र्क पड़ता है,
दीपक हो या लाटेन .....।''

वर्तमान में, प्रकृति-प्रदूषण का कारण भी मनुष्य की सोच और उसका विसंगत कृत्य है। आज की अफरातफरी और आफतों का एक चिन्तनीय चित्र उनकी 'आफत' कविता खींच देती है। सर्वत्र उच्छृंखलता दिखायी दे रही है। ''नदी भी उच्छृंखल होकर अपना संयम गँवा देती है।'' मानवीय सदाचारिता के लिए शान्ति और संयम आवश्यक हैं। 'आस' कविता 'उजाले की आस लेकर अँधेरा उलीचने' की बात की गयी है। 'मनुष्यता' को चुनौती देती कविता 'ऐसे मनुष्य' में बनावटी चुप्पी और मौन के आडम्बरों को तोड़ने की बात की गयी है-

''..... और जो कहना है, कह डालो,
रहस्यपूर्ण चुप्पी के आडम्बर को
ऊष्मा भरी आँच से जलाओं।''

कवि की कल्पना में साकार हो उठे थे कारगिल में युद्धरत उन वीर जवानों के बुलन्द हौसले, जिनकी गर्म साँसों से पिघलती बर्फ झरना बनकर बह रही थी। झरने की मुखर तीव्रता में समाया हुआ था सुजलाम्-सुफलाम् भारत का गहनीय बोध और उन झरने की कोख से फूट रहा था 'वन्दे मातरम्' का ओजस्वी गान। तब कवि ने देख लिये थे प्रत्येक वीर की आँख में उभरते सौ-सौ करोड़ सपने और महसूस किया था प्रत्येक वीर के अन्ततम का जोश और कर्तव्य का बोध। एक साथ ही वीर तथा करूण रस की प्रतीति कराती कविता 'कारगिल' ऐसी ही रचना है, जो कवि के तीव्र एवं गहन संवेदन को अभिव्यक्त करती है।

मनुष्य अतीतजीवी बनकर, अतीत में खोया रहता है और वह खण्डहरों के खण्डित वैभव को अपनी स्मृति में संजोये रखता है। इसीलिए मोदी जी 'आज' कविता में वर्तमानजीविता की बात करते हैं। अतीत का मिथ्या मोह त्यागकर मनुष्य जब पूर्णत्व की ओर बढ़ने लगता है, तो स्तुत्य हो जाता है। इसीलिए जीवन में प्रेम की ऊष्मा आवश्यक है। कर्त्तव्य और त्याग की ऊष्मा आवश्यक है। प्रेम की ऊष्मा के बिना मानव उत्कृष्टता की ओर बढ़ ही नहीं सकता।

''बिना प्रेम पंगु बन मानव लाचार, पराधीन-सा जीता है।
अभाव की एक छोरी ले, पल को पल से सीता है।''

'पारदर्शक', 'प्रयत्न', 'जिन्दादिल-, 'छत्रछाया', 'तस्वीर के उस पार' आदि अनेक प्रभावपूर्ण कविताएँ हैं, जो मोदी जी की जीवन-दृष्टि को आलोकित करती हैं। 'जिन्दादिल' में कवि का आत्मकथा है, तो 'ललकार' में कवि की पुकार ध्वनित है।

''खण्डहरों में से ढूँढ़ो सपने .....
जीने के लिए अतिशय ज़रूरी
बीते कल को भूलकर
आज हृदय से खुलकर
दिनतिज को विस्तृत बनाकर
डूबे हुओं को तारकर
एक-दूसरे का ले आधार
उजाले का अवतार है,
ललकार है, पुकार है।''

निराशा के अन्धकार में जब निरर्थक प्रकाश की खोज चलती है, तो वह प्रकाश जला देता है सब कुछ, यथार्थ को भी, स्वप्न को भी, तब जैसे सब कुछ भाप बनकर उड़ जाता है। 'अचानक' कविता में अँधेरे के कागज पर सरोवर के रेखांकन के साथ और वैसाख की धूप से जलकर खाक हो जाने वाले कागज़ की ऐसी ही तस्वीर हे। यह कविता परोक्ष रूप से आशा का सन्देश देती है। 'विलाप' में आध्यात्मिक संस्पर्श है, तो 'हम तो' कविता में जीवन से प्रेम परिलक्षित होता है। 'सम्पूर्ण विश्व' सकारात्मक भावबोध की सुन्दर कविता है, जिसमें मोदी जी का चिन्तन प्रतिबिम्बत है। जीवन में अतीत, वर्तमान और भविष्य-तीनों का महत्व है। जब दिल-दिमाग की सभी खिड़कियाँ खुल जाती हैं, तो सब कुछ सुन्दर, आकर्षक लगने लगता है। ऐसा व्यक्ति तब शरीर, मन, हृदय को ईश्वर का प्रसाद मान लेता है। कवि के सोच के व्यापक आयाम को बिम्बित करती हुई, ''पिण्ड की ब्राह्माण्ड है' कथन चरितार्थ करती हुई इस कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं -

''कल के रास्ते अन्त आ गया,
उसकी तीक्ष्ण नोक पर उगा है आज की फूल .....
मैं खोल देता हूँ सब खिड़कियाँ .....
अस्तित्व इतना सुन्दर कभी नहीं लगा,
मैं अपने शरीर को, मन को, हृदय को
प्रभु का प्रसाद ही मानता हूँ
और सम्पूर्ण विश्व मानो मेरी आगोश में
समा जाता है।''

इन कविताओं में मोदी जी की जीवन्तता और तेजस्विता प्रतिबिम्बत है। स्वस्थ आधुनिक और चिन्तन की उदाहरण प्रतिबिम्बत है। उनकी रचनाओं में उनका चिन्तन बोलता है, उनका व्यक्तित्व बोलता है। '' 'ज़िन्दादिल' कविता में उनका आत्म-कथ्य है, ''मै तो चुनौती स्वीकारने वाला मानव हूँ।'' उनकी प्रसिद्ध कविता 'छत्रछाया' में उनके शब्द हैं, ''सम्पूर्ण जीवन जीकर, मैं चाहता हूँ मरना!'' उनके व्यक्तित्व को केवल तस्वीर में ही नहीं देखा जा सकता है। तस्वीर के उस पार कविता में भी उनकी ओजस्विता, स्वाभिमान, श्रम-साधना परिलक्षित है।

''मैं तो पद्मासन की मुद्रा में बैठा हूँ
अपने वाणी और कर्मक्षेत्र में,

तुम मुझे मेरे काम से ही जानो .....

..... मेरी आवाज की गूँज से पहचानो,

मेरी आँख में तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब है।''

कर्मवीर का एकान्त मौन भी मुखर हो उठता है। 'प्रयत्न' कविता में कवि का आत्म-सम्मान व्यक्त हुआ है।

''मेरे एक-एक कर्म के पीछे

ईश्वर का हो आशीर्वाद,

ग़लत जो नहीं करता

वह कभी नहीं डरता .....

भीतर ही भीतर होते सब संवाद।''

कवि भलीभाँति जानता है, जल की तरह पारदर्शक रहना और बहते जाने का उत्सव क्या होता है। 'पारदर्शक' कविता इसी तथ्य पर आधारित है। ''रहस्य'', ''सनातन सौरभ', 'सपनों के बीज', 'सम्पूर्ण विश्व' और 'समन्वय' उनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। इनमें उनका जीवन-दर्शन स्पष्ट रूप से रूपायित हुआ है। उनकी दृष्टि ठहर जाती है जीवन और सुदृढ़ वृक्षों पर, सूर्य के प्रकाश में खड़े हुए वृक्षों पर, फूलों से खिलते और पक्षियों से चहकते वृक्षों पर, भरी दोपहरी का ताप झेलते वृक्षों पर। उन्हें प्रतीत होने लगता है कि ये वृक्ष जैसे उनके अस्तित्व के ही पर्याय हैं। शब्द और उसकी अर्थवत्ता के भी पार के सनातन आनन्द को व्यक्त करती है उनकी कविता 'सनातन सौरभ'। पता नहीं कहाँ से शब्दों का झरना फूट पड़ता है। अन्याय के सामने कभी आवाज़ की आँख होती है और कभी शब्दों की शान्त नदी बहने लगती है और .....

''इतने सारे शब्दों के बीच

मैं बचाता हूँ अपना एकान्त

तथा मौन के गर्भ में

प्रवेश कर लेता हूँ आनन्द

किसी सनातन मौसम का।''

'सपनों के बीज' में स्वप्न एवं यथार्थ को लाक्षणिक शिल्प में सजाया गया है। परिश्रम से रोपित सपनों के बीज जब अंकुरित हो उठते हैं, तब वह सपना भी साकार होने लगता है, जो और अधिक सात्विक कर देता है किसी विराट् दृष्टि को भी -

''..... सपनों के बीज मैं अपनी धरती पर बीजता हूँ

और प्रतिज्ञा करता हूँ पसीना बहाकर

कि वे अंकुरित हों और उनका वह वृक्ष बने,

फिर किसी विराट् पुरूष की बाँहों के समान

उसकी शाखाएँ फैलें,

पक्षी उन पर घोंसले बनायें

और आकाश को छूने लगें,

उनके कण्ठ से नदी की कल-कल ध्वनि समान

ईश्वरीय गीतों के स्वर लहरायें।''

रात और दिन एक ही स्वरूप के दो पक्ष हैं। एक से ही दूसरे की स्थिति है। जीवन के सुखात्मक-दु:खात्मक दोनों पक्षों पर एक साथ समन्वयात्मक दृष्टि रखते हुए कवि ने 'समन्वय' कविता में अपने प्रयोजन को स्पष्ट किया है -

''रात के गर्भ में से निकले दिन का कहता हूँ

आ मेरे पास बैठ,

..... हम दोनों परस्पर एक हैं,

..... स्थिति और गति का समन्वय

वही मेरी साधना है,

चलो, हम दोनों उस साधना के वरदान से

जितना जी सकें, उतना जी भर के जी लें।'

इस प्रकार अनेक कविताओं में मोदी जी की जीवन्त पारदर्शी और सूक्ष्म दृष्टि दर्शिता है। वे मानवीय मूल्यों पर सर्वाधिक बल देते रहे हैं। इसीलिए इन कविताओं में उनका, सभी क्षेत्रों में, सकारात्मक चिन्तन दृष्टिगत होता है। चिरन्तन जीवन-मूल्यों में प्रेम, एक, ऐसा सात्विक भाव है, जो सभी मूल्यों का आधारस्तम्भ है। यह प्रेम अनुशासित, पवित्र और संयमित होने पर सर्वत्र, पावनता, विश्वास, श्रद्धा और आनन्द की सृष्टि करने लगता है। समपूर्ण बाह्य प्रकृति एवं मानवीय प्रकृति प्रेम के ही सूत्र में बँधकर समरस और समन्वयातमक हो जाती है। सूर्य की गति भी नियमित रहती है। 'जाना नहीं' कविता में सूर्य की इस गति का चित्रण है -

''उसकी गति, उसकी गति, उसकी दिशा

केवल प्रेम से चालित है,

जबकि यह सूर्य

अपने सातों घोड़ों की लगाम

अपने हाथ में रखता है।''

'प्रार्थना' कविता में शाश्वत मूल्य 'सत्य' की ओर संकेत है -

''सत्य मेरे लिए सूर्य है

और .... मेरा जीवन

गायत्री मन्त्र बन जाये .....

ऐसी मेरी हरपल प्रार्थना है।''

पल-पल परिवर्तित होने वाली प्रकृति में भी नैरन्तर्य का शाश्वत स्पन्दन है।

''पल-पल का यह सौन्दर्य

इसका सम्बन्ध अपने-आप

शाश्वत से जुड़ जाता है,

बहती हुई इस ज़िन्दगी में

हरपल आता है, जाता है।''

'मन्त्र' कविता बोलने लगती है कि कवि ने अपने सोये हुए सपनों में भी नयी सुबह देख ली है और जिन्दगी में सौन्दर्य का अद्‌भुत मन्त्र प्राप्त कर लिया है -

''सोये हुए सपने में भी नयी सुबह है,

मन्त्र जैसी जिन्दगी में पाया/सौन्दर्य का अद्‌भुत मन्त्र।''

इस पृथ्वी पर सभी कुछ सुन्दर हैं। यह पृथ्वी कितनी सुन्दर है? वह 'आँख' भी कितनी सुन्दर है, जिसको इस सुन्दरता का प्रत्यक्षीकरण होता है। 'धन्य' कविता में पृथ्वी की सुन्दरता और व्योम की भव्यता का चित्रण है-

''हवा के रंगों के आकार खींचते

आकाश में इन्द्रधनुष,

ऊँची लहरों में समुद्र उछलता है,

शून्य भी भरा-पूरा है;
सभी कुछ अनन्य है।''

ऐसी आँख भी धन्य है और अनन्य है, जो वृक्षों की दृढ़ता और परोपकारजीविता को देख लेती है, सूर्य के प्रकाश से प्रकाश लेती है, नदी के नैरन्तर्य पर मुग्ध होती है, मानवीय मूल्यों पर टिक जाती ह, प्रेम को सर्वत्र व्याप्त देखती है, बिन्दु में सिन्धु की कल्पना करती है, पिण्ड में ब्रह्माण्ड की अनुभूति करती है, देश के वीर जवानों की आँखों में समग्र राष्ट्र को देख लेती है, सर्वत्र प्रेम की ऊष्मा का अनुभव करती है, खण्डहर में भी सुन्दर सपनों को तलाश लेती है, तस्वीर के पार भी देख लेती है, सम्पूर्ण विश्व के सनातन मौसम के सौरभ से भावित होती है, प्रतिदिन ही नयी सुबह के आने की प्रतीक्षा करती है, जीवन्तता तथा चिरन्तन सौन्दर्य के आनन्द से परिपूरित रहकर जिन्दगी में सौन्दर्य का अद्‌भुत मन्त्र तलाश लेती है।

गहन अनुभूति और सुन्दर कल्पना-दोनों की सूक्ष्म बनावट से कविता के कलेवर की बनावट निखर आती है। वह कल्पना भी धन्य है, जो धरती से उपजती है और आकाश तक की दूरी नापने में समर्थ होती है। कवि की कल्पना धरती से बँधी होने पर भी आकाश तक उठी है और उस दृष्टि की सार्थकता को सिद्ध कर देती है। इस प्रकार इन सभी कविताओं में एक समन्वयात्मक बिम्ब उभरता है, जो कवि की दृष्टि, दिशा और दर्शन पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

---

## दहेज

एक कवि नदी किनारे खड़ा था...
तभी वहाँ से एक लड़की का शव तैरता हुआ
जा रहा था.... तो कवि ने उस शव से पूछा ...
. कौन हो तुम सुकुमारी
बह रही हो नदी के जल में ।
कोई तो होगा तेरा अपना,
मानव निर्मित इस भू-तल में।
किस घर की तुम बेटी हो,
किस क्यारी की तुम हो कली।
किसने तुमको छला है बोलो,
क्यों दुनियां को छोड़ चली।
किसके नाम मेंहदी हाथो रची है तेरे,
लगती हो तुम राजकुमारी,
या दैव लोक से आई हो।
उपमा रहित ये रूप तुम्हारा,
ये रूप कहां से लाई हो।
कवि की बात सुनकर लड़की की आत्मा
बोलती है.....
कवि राज तुम करो क्षमा मुझे,
गरीब पिता की बेटी हूँ।
इसलिए मृत मीन की भांति,
जल धारा पे लेटी हूँ ।
रूप रंग और सुन्दरता ही,
मेरी पहचान बताते हैं।
कंगन चूड़ी मेंहदी बिंदिया,
सुहागन मुझे बनाते हैं,
पिता के दु:ख को दुखी थी मैं।
जीवन के इस पथ पर

पति के संग चली थी मैं
पति को मैंने दीपक समझा,
और उसकी लौ में जली थी मैं।
माता-पिता का आंगन छोड़कर,
उसके रंग में रंगी थी मैं।
पर वो निकला सौदागर,
लगा दिया मेरा भी मोल,
धन दौलत और दहेज की खातिर,
जल में पिला दिया विष घोल।
दुनियां रूपी इस उपवन में,
छोटी सी कली थी मैं ।
जिसको मैंने समझा माली,
उसी के द्वारा छली थी मैं।
ईश्वर से अब न्याय मांगने,
शव शैय्या पर पड़ी हूँ मैं।
दहेज के लोभी इस संसार में,
दहेज की भैंट चढ़ी हूँ मैं ....
दहेज की भैंट चढ़ी हूँ मैं ..... ।

डॉ. गीता मीना
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
भारतीय कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

# अपने-अपने चेहरे उपन्यास में संवेदनहीनता के कारण : अर्थ एवं स्वार्थ

**पूजा शर्मा**

**शोध अध्येयता,**

**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

संवेदना हमारे अन्तर्मन और चेतना अवस्था की वह स्थिति है जिसमें किसी भाव को महसूस करने के पश्चात् विचार उतपन्न होता है और हम उस विचार से उद्वेलित होकर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। अर्थात् संवेदना ज्ञानेन्द्रियों की अनुभूति है, जो प्रथम सचेतन प्रतिक्रिया के रूप में उपस्थित होती है।

संवेदना द्वारा व्यक्ति, व्यक्ति से और फिर सम्पूर्ण मानवजाति से जुड़ता है परन्तु वर्तमान समय में व्यक्तिगत स्वार्थ और आर्थिक भावना को जीवन में प्रमुख स्थान देने के कारण नैतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है। यही कारण है कि परिवार में बंधे हुए मानवीय सम्बन्ध भी आज संवेदना शून्य हो गए हैं।

प्रभा खेतान कृत 'अपने-अपने चेहरे' उपन्यास में भी स्वार्थ तथा अर्थ लालसा के चलते गोयनका परिवार में संवेदनशीलता की अपेक्षा संवेदनहीनता एवं अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। राजेन्द्र गोयनका अपने दाम्पत्य सन्बन्ध से खुश नहीं, क्योंकि उसकी पत्नी असुन्दर एवं अनपढ़ है तथा उसने यह शादी अपनी स्वेच्छा से नहीं बल्कि बड़े भाई के दबाव में की है। जिस कारण वह पत्नी से आत्मिक रूप से कभी भी जुड़ नहीं पाया। आत्मिक-प्रेमभाव के चलते दाम्पत्य-सम्बन्ध तीन बच्चों के उपरान्त भी अपूर्ण ही रहा। इस विवाह के पश्चात् भी राजेन्द्र के जीवन में जो अधूरापन रहा उसको अन्य स्त्री रमा के प्रेम से पूर्णता मिली। वह इस प्रेम-सम्बन्ध को अपराध न मानकर अपने जीवन की सार्थकता मानता है, ''मेरी नजर में मेरा यह प्यार न भूल है और न अपराध। बस यह सम्बन्ध मेरे जीने की कोशिश है। मैं जीना चाहता हूँ रमा! तुमको पाकर मेरे जीने की चाह बयगई। पहले जीवन खाली था, अब भरा हुआ लगता है . ..।

इस प्रेम सम्बन्ध से जहाँ राजेन्द्र के जीवन में पूर्णता आई वहीं मिसेज गोयनका इस सम्बन्ध का कोई अस्तित्व नहीं मानती। क्योंकि उनके अनुसार समाज ऐसे रिश्तों को मान्यता नहीं देता। इसलिए वह पति, बच्चों तथा समाज की नजरों में महान बनने के लिए प्रत्यक्ष रूप से इस रिश्ते का विरोध नहीं करती। विरोध न करने के पीछे एक कारण रमा का सफल व्यवसायिक नारी होना भी है। क्योंकि रमा द्वारा राजेन्द्र के परिवार को आर्थिक सहायता मिली है। रमा ने राजेन्द्र के छोटे बेटे रमेश की परवरिश कर तथा उसे अपने साथ व्यापार में लगाकर उसके जीवन को सफल बनाया। इस बात को मिसेज गोयनका भी स्वीकारती है लेकिन रमेश के विवाह समारोह के समय जब राजेन्द्र, रमा को माँ की भूमिका अदा न करते देख अपनी पत्नी पर क्रोधित होता है। तब मिसेज गोयनका का स्वयं से कहना है, ''मैं मानती हूँ कि रमा ने रमेश का बहुत किया। उसके अपने बच्चे नहीं, पर माँ की जगह वह कैसे ले सकती है? जाए की कसक तो, अलग ही होती है। रमेश मेरा ही बीज है। कैसे ऐसे पाले-पोसे पेड़ को फल देने के वक्त उसके हाथों सौंप दूँ ?.....'' जबकि रमा ने भेदभाव किए बिना राजेन्द्र के बच्चों को अपना माना तथा उनकी हर जरूरत को पूरा किया।

मिसेज गोयनका पति के समक्ष तो इस रिश्ते को सहन करने की बात करती है लेकिन रमा का इसके पति तथा

बच्चों पर अपना अधिकार जमाना उसे नहीं सहाता। इसलिए वह बच्चों के मन में रमा-राजेन्द्र के प्रति उपेक्षा की भावना पैदा कर देती है।

जब पति-पत्नी का अपना सम्बन्ध ही अविश्वसनीय तथा दुविधाग्रस्त हो तो संतान में तनाव एवं अलगाव बड़ी बात नहीं। यही कारण है कि राजेन्द्र के दोनों बेटे उसके प्रति उदंड व्यवहार करते है। पिता के साथ उनका संबंध मात्र अर्थ तक सीमित है। पिता के साथ उनका संबंध रमा को भी वे इसलिए सहन कर रहे हैं कि वह उनकी आर्थिक आवश्यकता को पूरा कर रही है। लेकिन जब वे अपने जीवन में सफल हो गए तो रमा के लिए पराये बन जाते हैं। जब तक उनका स्वार्थ सिद्ध हो रहा था तब तक वे रमा को अपने हर समारोह में शामिल करते है लेकिन जब उन्हें रमा की आवश्यकता नहीं रही तथा पिता की मृत्यु हो गई तो उन्होंने रमा के साथ कोई संबंध नहीं रखा। यहां तक कि राजेन्द्र के अंतिम क्रियाकर्म के समय भी रमा को अनदेखा किया जाता है।

इसी स्वार्थ के चलते आज रिश्ते-नाते, संवेदना आदि सब -कुछ उलझ चुका है। अत्याचार के नये-नये तरीके अपनाए जा रहे हैं। किसी के साथ अनैतिक सम्बन्ध, जीवन जीने की स्वतंत्रता का सार्थक उपभोग बन गया है। आज मानव देह मात्र कोई चीज, माल, प्रदर्शन, बाजार, सेक्स बनकर रह गई है। 'अपने-अपने चेहरे' उपन्यास में कुणाल अपनी भोग-लिप्सा के कारण अपने जीवन में दूसरी औरत नीना के आगमन से पत्नी रीतू के प्रति संवदेनहीन हो जाता है। इतना ही नहीं, समाज तथा पत्नी की चिन्ता किए बिना वह नीना से प्रेम-संबंध रखने के साथ-साथ उसे अपने घर में आने-जाने की स्वीकृति भी देता है। जब रीतू ने इस प्रेम-संबंध का विरोध किया तो उसने रीतू को घर से चले जाने का आदेश दे दिया, ''निकल जाओ मेरे घर से! हाँ-हाँ मेरे घर से। यह मेरा घर है, मेरा घर। सुना तुमने या और सुनाऊँ। इस मकान की एक भी ईंट तुम्हारे बाप के पैसे से नहीं खरीदी गई है।''

ससुराल छोड़कर आई रीतू को मायके में भी अपनापन नहीं मिला। एक ओर जहाँ माँ उसे वापिस ससुराल जाने को कहती रहती है। वहीं दूसरी तरफ भाभियाँ भी उसके मायके आने से नाखुश होती है। छोटी भाभी स्मिता को रीतू से विशेष परेशानी होती है क्योंकि रीतू को सके बेटे विक्की के कमरे में ठहराया जाता है। रीतू की व्यवस्था कहीं और करवाने के लिए वह बेटे को बाहर हाल में सुला देती है क्योंकि वह जानती है कि जब सास विक्की को गर्मी में सोया देखेगी तो घर में हंगामा अवश्य होगा और फिर रीतू की किसी अन्य स्थान पर व्यवस्था हो जाएगी। इतना ही नहीं, ससुर द्वारा हर बात पर रीतू का पक्ष लेना भी उसे पसंद नही। इसलिए अपने क्रोध को व्यक्त करते हुए उसका अपनी सास से कहना है, ''पापाजी को तो जीजी अच्छी लगती हैं, बाकी लोग चाहे भाड़ में जाएँ।''

अत: अगर ये स्वार्थीपन और अर्थ लालसा इसी प्रकार बढ़ती रही तो वो दिन दूर नहीं जब मानवीय मूल्य पूरी तरह से समाप्त हो जाएंगे तथा मनुष्य संवदेनशून्य बन जाएगा। फिर मनुष्य और पशु में अंतर करना असंभव है। यदि मनुष्य में संवेदना न हो तो वह मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं, क्योंकि दूसरों के सुख-दु:ख को कोमलता से महसूस करने वाला हृदय ही अगर उसमें नहीं, तो फिर मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में अन्तर ही क्या रहेगा। इसलिए आज आवश्यकता है कि हम अर्थ तथा स्वार्थ की अपेक्षा व्यक्ति के सुख-दु:ख को समझने तथा अपनाने की लालसा रख मनुष्य धर्म का निर्वाह करे। जो हमारे लिए अति आवश्यक है।

# सत्ता और स्वाधीनता के लिए स्त्री संघर्ष

**डॉ. गीता मीना**
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
भारती कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

नारी की सुदृढ़ व सम्मानजनक स्थिति एक उन्नतम, समृद्ध तथा मजबूत समाज का प्रतीक है। भारत में प्राचीनकाल से ही नारी को पूजनीय माना जाता है तथा उसे बराबरी का दर्जा दिया गया है। प्राचीन धर्मग्रन्थों में उल्लिखित सूत्र वाक्य ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देता:।'' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवताओं का वास होता है। प्रस्तुत सूक्ति पौराणिक काल में नारी की सुदृढ़ स्थिति को दर्शाती है। स्त्री प्रारम्भ से ही संस्कृति, धर्म, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान का आधार स्तम्भ रही है।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति सदैव एक समान न होकर बड़े उतार-चढ़ाव के दौर से गुजरी है। समय परिवर्तन के साथ-साथ स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुए। आरम्भ से ही उसे गृह लक्ष्मी तथा देवी जैसे संबोधन तो मिले किन्तु व्यवहारिक रूप से वह समाज में दमित, शोषित, दलित, प्रताड़ित तथा तिस्कृत रही है। कोमलता, लज्जा, सहनशीलता, वत्सलता, समर्पण तथा त्याग आदि को उसकी कमजोरी माना गया। पशुओं से भी बदत्तर जीवन व्यतीत करने पर भी वह चुप रही और पुरुष सैदव उस पर हावी रहा।

स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति भिन्न थी। शिक्षा के अभाव में भारतीय समाज अनेक रूढ़ियों और परम्पराओं तथा अंध विश्वास में जकड़ा हुआ था। समाज में नारी की स्थिति बहुत शोचनीय थी। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज में काफी जागरूकता आई। शिक्षा के व्यापक प्रसार ने मानवतावदी दृढ़िकोण का अधिक प्रचार किया। नारी सुधार आन्दोलनों ने जहाँ एक और स्त्री की दशा में सुधार किया है, वही दूसरी ओर अपने अस्तित्व के प्रति सजग स्त्री को रूढ़ी व परम्परा का विरोधी भी बना दिया। पहले नारी को शांति व सौम्य का प्रतीक माना जाता था। उसके विद्रोही स्वरूप की कल्पना ही नहीं की गई थी। किन्तु जीवन की कटु परिस्थितियों, पुरूष वर्ग के अनुचित व्यहार तथा पूंजीवादी शोषण के कारणों ने उसे विद्रोही बना दिया। नारी के इस विद्रोह के परोक्ष में सामाजिक परिस्थितियाँ ही कारण रही हैं।

सत्ता और स्वाधीनता के लिए स्त्री संघर्ष बहुत लम्बे समय से चल रहा है। भारतीय इतिहास में प्राचीन काल से ही अपने अहम् को पाने के लिए नारी संघर्ष करती रही है। कण्व ऋषि की पुत्री शकुन्तला ने अपने पति को पाने के लिए संघर्ष किया। राजा दशरथ की पत्नी ने शत्रुओं के साथ युद्ध के समय रणक्षेत्र में अपने पति के साथ भागीदारी की तो सावित्री ने अपने पति सत्यवान को जीवित पाने के लिए वाद-विवाद किया। मध्यकाल में इल्तुतमिश की पुत्री रजिया सुल्ताना ने पर्दा प्रथा को किनारे कर राज्य संभाला। मुगलकाल में नूरजहाँ ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली।

नारी आंदोलन ने स्वाधीन समाज की नींव डाली। सन् 1854 में डलहौजी की राज्य हड़पने का नीति से नाराज झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई ने 1857 के ग्वालियर युद्ध में अंग्रेजों के साथ युद्ध किया और वीरगति को प्राप्त हुई।

श्रीमती एनीबेसेण्ट ने 1907 में थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना की और 1933 तक इसकी अध्यक्ष रही तथा 1916 में होमरूल का गठन किया गया, 1917 में काँग्रेस की अध्यक्ष बनी। सन् 1920 में असहयोग आंदोलन में भाग लिया। डॉ. सरोजनी नायडू ने महान् कार्यो द्वारा भारत को गौरान्वित किया। वह एक महान् कवयित्री तथा राजनीतिज्ञ थी। सन् 1947 में उत्तर प्रदेश की राज्यपाल बनी। क्रांतिकारियों को शरण देने वाली कुमुदनी तथा लीलावती मिश्रा ने पुर्नविवाह, विधवा-विवाह का घोर समर्थन किया।

आजाद हिन्द में कार्यरत कैप्टन लक्ष्मी सहगल, मानवती आर्या व अरूणा आसफ अली ने भारतीय क्रान्ति में प्राण फूँका। अरूणा आसफ अली को 'लेलिन शान्ति पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया। आजादी के पश्चात् महिला

क्रान्ति ने और जोर पकड़ा तथा महिलायें अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हुई। उन्होंने समाज में हो रही बुराइयों को समाप्त करने के लिए अपने कदम आगे बढ़ाये। इस सम्बन्ध में जूनागढ़ में 1972 में शराब बन्दी के लिए महिलायें धरने पर बैठी और उन्हें सफलता भी मिली।

1917 में जन्मी जवाहरलाल नेहरू की पुत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 1966 में प्रधानमंत्री बनकर भारत में ये इतिहास की रचना की परन्तु ऐतिहासिक संस्कृति में महिला शक्ति सम्पन्न न हो सकी।

1971 में "TOWARDS EQUALITY" के अन्तर्गत पहली बार स्त्री के विषय में सोचा गया। उसका स्तर किस प्रकार का होना चाहिए, इसके लिए एक रिपोर्ट तैयार की गयी जिसको दिसम्बर 1974 में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा को सौंपा गया। जिस पर गंभीरता से विचार करके महिलाआं के विषय पर अलग-अलग शोध कार्य करवाया। इस वर्ष महिलाओं की समस्याओं को देखते हुए विश्वविद्यालय में ''महिला अध्ययन'' नामक एक नये विषय को रखा गया।

1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस घोषित किया गया। महिलाओं की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए मैक्सिकों में इस वर्ष पॉलिसी ऑफ वूमैन्य कॉन्फ्रेंस की गयी। 1980 में महिला विकास व शान्ति पर बल दिया गया।

स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुरूप, नारी के समर्थन वाले अनेक प्रावधानों द्वारा महिला की स्थिति में गुणात्मक सुधार हुआ है। आज महिलाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधा मिलाकर न केवल देश की आर्थिक समृद्धि में योगदान कर रही है, बल्कि कुशल नेतृत्व और उच्च प्रबंधकीय क्षमता का भी प्रदर्शन कर रही हैं। आधुनिक भारत में महिला अधिकारों की पहली लड़ाई राजाराम मोहन राय द्वारा आरंभ की गई। यह उन्हीं के अथक प्रयासों का परिणाम था कि 1829 में ब्रिटिश संसद द्वारा अधिनियम पारित कर सती पथा पर रोक लगाने का प्रयास किया गया। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान भारत में प्रगतिशील विचारों का प्रसार हुआ तथा भेदभाव रहित समाज की स्थापना पर जोर दिया गया। इसी को ध्यान में रखकर महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्रदान करने तथा महिला अधिकार संरक्षण के लिए भारतीय संविधान में पर्याप्त प्रावधान किए गए तथा समय-समय पर नियमों, नीतियों और अधिनियमों को प्रवृत्त कर इस दिशा में अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की गई। महिला अधिकार संरक्षण की दृष्टि से 73वाँ एवं 74 वाँ संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा स्थानीय निकायों पंचायतीराज और नगरपालिकाओं में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं। इस व्यवस्था के उत्साहवर्धक परिणाम अब देखने का मिल रहे हैं।

स्त्री देश की लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती हैं। परन्तु संसद तथा राज्य विधानसभाओं में उन्हें उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। इसी कारण विधायिका में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण की मांग काफी अरसे से उठाई जारी रही है। विभिन्न सरकारों द्वारा महिला आरक्षण विधेयक संसद में प्रस्तुत करने का अनमना प्रयास किया गया। परन्तु राजनैतिक दलों में एक जुटता और प्रतिबद्धता तथा महिलाओं के प्रति नकारात्मक रवैया के कारण उसे पारित न किया जा सका।

अब स्वतंत्र भारत में नारी की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने स्त्री शिक्षा व स्त्री की दशा को सुधारने पर अत्यधिक बल दिया। धीरे-धीरे विचारकों और नेताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा का अन्त कराया। दयानन्द सरस्वती ने महिलाओं को समान अधिकार की आवाज उठायी, गाँधीजी ने महिला-उत्थान का कार्य जीवन पर्यन्त किया। राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति का गठन किया गया। इस समिति ने ग्रामीण क्षेत्र में स्त्री दशा और उसके विकास पर बल दिया।

भारत वर्ष में आज की स्त्री समाज में पुरूषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने को तत्पर हो गई हैं। आज की स्त्री विदेशों में राजदूत, देश की राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल, सांसद, विधायक, मंत्री, आई.ए.एस एवं आई.पी.एस. जैसे प्रतिष्ठित पदों पर आसीन है। स्त्री वर्ग ने सम्पूर्ण सामज पर अपना अधिपत्य जमाया है, चाहे वह खेल का मैदान हो या युद्ध का क्षेत्र हो, या साहित्य लेखन का क्षेत्र हो या, संगीत , नृत्य, चिकित्सा-विज्ञान व छायांकन आदि कोई भी क्षेत्र हो। इन सब के पश्चात् भी उसकी स्थिति शोचनीय है। कही शारीरिक व मानसिक शोषण होता है

तो कही दहेज के लिए हत्या कर दी जाती है। समाज में स्त्री के उत्पीड़न व लिंग भेदभाव की समस्या नित्य रूप में दृष्टव्य है। घर ही नहीं प्रतिष्ठानों एवं कार्यालयों में सेवारत महिलाओं के साथ भी निष्पक्ष व्यवहार नहीं किया जाता है। उनके सहयोगी व उच्च अधिकारी यौनशोषण व आर्थिक शोषण कर रहे हैं। कलकारखानों, निजी प्रतिष्ठानों में उन्हें पुरुष से कम वेतन व मजदूरी प्राप्त होती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के साथ लैगिंक भेदभाव एवं पक्षपात किया जाता है।

आज इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर वैचारिक एवं जीवन मूल्यों के मूलगामी परिवर्तन के इस दौर में हिन्दी कथा लेखकों एवं लेखिकाओं के आगमन से इतिहास से लेकर वर्तमान तक के उपेक्षित, अपमानित तथा तिरस्कृत पात्रों की ओर आम नजरिया बदला है। आज हिन्दी साहित्य में स्त्री लेखन का लक्ष्य अपनी कलम द्वारा समाज की धमनी में दौड़ रहे रक्त में उत्तेजना लाना है, जिसमें अगर यथार्थ के दर्द भरे दंश है तो सर्जना की सुरभि भी सुवासित हो रही हैं। इन सब के कारण ही आज स्त्री में सत्ता, स्वाधीनता और आस्मिता के लिए जागृति आई है। उसकी आवाज तेज हुई है और विरोध और संघर्ष का तेवर आक्रामक हुआ है।

आज का स्त्री संघर्ष एक और स्वतंत्रता की मांग करता है वह है ''निर्णय की स्वतंत्रता''। स्त्री अपने निर्णय स्वयं लेना चाहती है। वह चयन की स्वतंत्रता, विवाह की स्वतंत्रता, गर्भधारण की स्वतंत्रता, यौन स्वतंत्रता चाहती है। आज स्त्री आत्मविश्वास से परिपूर्ण हो रही है, अपने अधिकारों के प्रति उसमें सजगता आ रही है, विशेषत: स्वअस्तित्व के लिए संघर्षरत है। वह अपने फैसले स्वयं लेना चाहती है, परिवार, समाज व देश के निर्णयों में अपनी भागीदारी की अपेक्षा रखती है। नई सदी में नारी को ''स्वतंत्र व्यक्ति'' के रूप में स्वीकारना होगा। आज का स्त्री संघर्ष इसी ओर अग्रसर है।

प्रारम्भ में जब स्त्री संघर्ष शुरू हुआ था तब वह स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को लेकर, समाज में उनकी दयनीय दशा को लेकर था। सामाजिक रूढ़ियों यथा बाल-विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, स्त्री अशिक्षा को लेकर था। अब स्त्री संघर्ष नारी की स्वतंत्रता को लेकर है वह स्वतंत्रता स्त्री को पुरुष व समाज से चाहिए। आज नारी को राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक स्वतंत्रता के साथ-साथ दैहिक, मानसिक, निर्णय की स्वतंत्रता व यौन स्वतंत्रता चाहिए। यद्यपि स्त्री संघर्ष काफी समय से लेखन व चर्चा का विषय रहा है। इसलिए जब आज भी स्त्री संघर्ष की बात होती है तो कुछ लोगों का मानना है कि स्त्रीवाद को ज्यादा हवा दी जा रही है। उनके अनुसार आज की स्त्री शिक्षित है, समर्थ है और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। उनकी बात कुछ हद तक सही है लेकिन प्रश्न यह है कि सम्पूर्ण स्त्री समाज का कितना प्रतिशत आज शिक्षित है? जागरूक है? आँकड़ों से जाहिर है काफी कम और क्या केवल स्त्रियों में जागरूकता से ही सम्पूर्ण समाज में परिवर्तन सम्भव है? नहीं, समाज में परिवर्तन के लिए स्त्रियों के साथ पुरुष मानसिकता में भी बदलाव की आवश्यकता है। भले ही कुछ पुरानी रूढ़ियों से हमने मुक्ति पा ली है, किन्तु आज भी स्त्रियों के समक्ष अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं। आज भी अनेक रूढ़ियों समाज में पैर जमाए खड़ी है यथा दहेज प्रथा, कन्या-भ्रूण, पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता, कामकाजी स्त्रियों का शोषण, बलात्कार, बाल-यौनाचार, स्त्रियों के जिस्म की खरीद-फरोखत आदि।

आज समाज में नारी उत्पीड़न के नये रूप सामने आ रहे हैं। इन रूपों को पहचानना और इनके संभावित निदानों को खोजना सामाजिक और साहित्य दृष्टि से महत्व रखता है। सत्ता और स्वाधीनता के लिए स्त्री संघर्ष भी इसी ओर अग्रसर हो रहा है। इस प्रकार अपने देश में नारी की स्थिति, सत्ता में उसकी भागीदारी और महिला अधिकारों के लिए हम सबको मिला-जुला और सार्थक प्रयास करना होगा, जिससे देश में एक वैचारिक क्रांति आये और महिलाओं की सर्वांगीण उन्नति हो।

# स्त्री प्रश्नों पर एक विहंगम दृष्टि–रह गईं दिशाएँ इसी पार

**रजनी कुमारी**
**पीएच.डी. शोधार्थी,**
**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

बदलते समय के सापेक्ष सामाजिक स्थितियाँ, मूल्य व मान्यताएँ भी बदलती है। समाज से जुड़े विविध प्रश्न प्रत्येक युग में उस समय के समाज के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं। पुरुष की भांति स्त्री की भी अपनी एक निजि जिन्दगी एवं सोच होती हैं, जहां वह अपनी मनोवृतियों और इच्छाओं के साथ समय और सम्बन्ध को धत्ता बताती हुई अपने निर्णय स्वयं लेते हुए अपने रास्ते भी स्वयं ही तलाश रही है। इस प्रयास में वह अधिकांश सफल भी रही है। स्त्री प्रश्नों पर विचार करने का अर्थ यह नहीं कि मात्र पुरुषों को कटघरे में खड़ा करने से ही समस्या का हल संभव है अपितु पुरुष सोच एवं दृष्टि में अपेक्षित परिवर्तन के बिना स्त्री प्रश्नों पर विचार करना निरर्थक हैं आज से कुछ समय पूर्व की बात करें तो स्त्री प्रश्नों के केन्द्र में दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल–विवाह जैसे प्रश्न अधिक ज्वलंत थे परन्तु आज के उपभोक्तावादी समाज में, समय के बदलते तापमान में, बदलते सामाजिक सन्दर्भो में दोहरी भूमिका निभाते हुए स्त्री प्रश्न भी बदले हैं जो पहले की अपेक्षा अधिक जटिल हैं। इसी कारण स्थितियों पर नये सिरे से सोचना समय की मांग बन गया है। स्त्री संघर्ष एवं पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ–साथ स्त्री की भूमिका, उसके द्वारा तलाशे गए रास्तों के कारण नए प्रश्नों में मूल प्रश्न उसे मनुष्य रूप में स्वीकारे जाने का है जोकि दुनिया की आधी आबादी को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है और स्त्री विमर्श का केन्द्र भी।

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री सदा से ही प्रताडित्रत होती रही है परन्तु समकालीन समय में तो स्त्री प्रश्न और भी नये आयामों के साथ खड़े हो रहे हैं। स्त्री प्रश्नों के तमाम आयामों को स्पर्श करती संजीव कृत 'रह गईं दिशाएँ इसी पार' की कथा स्त्रियों की समस्याओं और संघर्ष को वाणी प्रदान करती है। विज्ञान का छात्र होने के नाते संजीव ने जैव–वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध किया कि स्त्री–पुरुष से किसी भी रूप में कम नहीं। उदाहरणस्वरूप यदि प्रजनन प्रक्रिया की बात करें तो पुरुष चाहे भी तो अकेले संतान पैदा नहीं कर सकता जबकि स्त्री कर सकती है, इसका कारण यह है कि 'वीर्य बैंक' से वीर्य तो लिया जा सकता है किन्तु उसे गर्भ में रखने के लिए स्त्री की आवश्यकता पड़ती ही है।

स्त्री अपनी स्वतंत्रता की पहचान कर चाहे कितना ही कार्यभार क्यों न संभाले परन्तु पुरुष उसे केवल देह के रूप में ही देखता है। यही कारण है कि समाज में स्त्री के चरित्र सम्बन्धी अपने ही मापदण्ड हैं। उपन्यास की बेला अपनी मछुआ पट्टी के लिए दिन–रात एक करती है और छोटे मछुआरों को अपने अधिकारों के प्रति लड़ने के लिए प्रेरित भी करती है। उसकी एक पुकार पर बीसियों मछेरे डंडे, बल्लम लेकर निकल पड़ते हैं किन्तु जब से वह अजय के साथ मिलकर कोऑपरेटिव से जुड़ी है तो लोग उसके चरित्र पर उंगली उठाने लगते हैं – ''हमें भी साहब लोगों से कह कर नौकरी दिलवा दो बेला रानी, तुम्हारी तो चलती है। इतना ही नहीं उसी का एक साथी एक दिन उसकी नाव को एकांत में रोककर कहता है –''मैं कैसे देख सकता हूँ कि केंदुली का फल कोई और खाये, और मैं देखता रहूं।..... स्साली रोज–रोज ललचाती है। ट्रॉलर वाले बाबुओं से हम बुरे है क्या ?एह! कोपरेटिव बनवायेगी, लीडर बनेगी।

आलोच्च उपन्यास में संजीव ने सरोगेट सदूर (प्रतिनिधि माँ) सम्बन्धी समस्या के विविध पहलुओं को उठाया है। इस प्रक्रिया के आरम्भ में लाख सावधानियाँ बरतने के उपरान्त भी सरोगेट माँ का बच्चे के प्रति लगाव नकारा नहीं जा सकता। बच्चे के बड़ा होने के बाद भी गर्भधारण करने वाली सरोगेट माँ ममतामयी समृतियों/पीड़ा को भुला नहीं पाती है और जीवनभर कुण्ठा तथा घुटन भरे दिन काटने को विवश हो जाती है। इतना ही नहीं समय आने पर वह बच्चे पर अपने अधिकार की मांग भी करने लगती है। उपन्यास की विधवा कैथरीन अपनी बेटी ऐलिस के बच्चे की सरोगेट माँ है। बेटी की खुशी के लिए कैथरिन इस कार्य के लिए तैयार तो हो जाती है परन्तु जिन के प्रति कैथरिन का लगाव ऐलिस के लिए असहय था।

एक स्त्री जब तक पुरुष के बनाए नियमों का पालन करते हुए बिना किसी उल्लंघन के उनका अनुसरण करती

जाती है तब तक सब कुछ सहज रूप से चलता है परन्तु जैसे ही वह उन नियमों को तोड़ अपनी तरह से जीवन जीने का निर्णय करती है तो यह क्रूर समाज उसे समाज बहिष्कृत कर देता है। इतना ही नहीं कभी-कभी तो इसकी कीमत उसे अपने प्राणों की बलि चढ़ा कर चुकानी पड़ती है। दुनिया को बदल कर रख देने का मादा रखने वाली लारा जब समाज के ही बनाए नियमों को तोड़ने का साहस करती है तो उसे प्राणों से ही हाथ धोने पड़ जाते हैं उसका निर्णय आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन कर सकता है। संजीव के शब्दों में - ''तमाम वर्जनाओं को वर्जित करती हुई, मौलिकताओं को धता बताती हुइ पिता को अपने गर्भ से जन्म देने की जिद। आग और उजाला लेकर चलती थी मानो गर्भ में। अंदर स बाहर तक फैलता आत्मा का प्रकाश। अपने निर्णय स्वयं लेने वाली स्त्रियों में ही उज्जवल भविष्य देखा जा सकता है। तभी तो संजीव कह उठते हैं - ''तुम्हारी अनुपस्थिति बहुत खलेगी लारा.... तुम नहीं हो, फिर भी हो..... तुम्हीं लोगों से बदलती है दुनिया।

औरत को देवी तुल्य समझने वाले भारतीय समाज में बड़े-बड़े उद्योग धंधों मे निचले स्तर का काम करने वाली स्त्रियों की दारुण स्थिति और बड़े ठेकेदारों द्वारा उनके साथ किए जाने वाला अन्याय एक कटु यथार्थ है। स्त्रियों के साथ होने वाले इस इस अन्याय की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है परन्तु संजीव जैसे पारखी दृष्टि रखने वाले लेखक ने 'रह गई दिशाएँ इसी पार' में 'प्रोसेसिंग सेन्टरस' के माध्यम से बड़े पूँजीपतियो की पोल खोल कर रख दी है। इन प्रोसेसिंग सेन्टरों में मछलियो की पीलिंग, ग्रेडिंग और पैकिंग कर बाहर के देशों में निर्यात की जाती हैं। संजीव ने ऐसे सेन्टरों में काम करने वाली लड़कियों की कारुणिक स्थिति का अंकन करते हुए उन्हें मछलियों के समतुल्य बताया है। मछलियों और मजदूर स्त्रियों की स्थिति एक जैसी ही होती है। एक तरफ मछलियों की दलाली होती है तो दूसरी तरफ काम करने वाली लड़कियों की जो कि घर के किसी न किसी सदस्य द्वारा प्रताड़ित हुई होती है। इन लड़कियों को पहले तो ग्रेडिंग के लिए कहकर लाया जाता है। ऐसे सेन्टरों में सुवरवाइजरों के पास तो सारी सुविधाएँ होती जबकि मजदूर स्त्रियों के पास कोई सुविधा नहीं होती। संजीव द्वारा इनकी कारुणिक स्थिति का एक उदाहरण देखिए-'बर्फ-सी ठंडी कठुआयी मछलियाँ, छीलों तो लगता है बर्फ छील रहे हैं। ठंडक काट रही है पावों को, हाथों, उंगलियो को, अकड़े जा रहे हैं अंग-अंग। लेकिन रूकना संभव नहीं। इन प्रोसेसिंग सेन्टरस की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जब भी कोई फॉरेन एक्सोर्ट की पार्टी आती है तो सभी लड़कियों को जूते, साड़ी, एप्रॉन दस्ताने और मुखोस दिए जाते और वह भी फुल्ली स्टरलाइज्ड, जर्म फ्री किन्तु उनके जाते ही उनसे वह सब लेकर जमा कर लिया जाता है। इस पर उपन्यास की जूली का मासूस का प्रश्न-''ये फारेन पार्टी रोज-रोज कोह नहीं आता?'' ऐसे सेन्टरों में लगी स्त्रियों की मनस्थिति को उजागर करके रख देता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मजदूरों की स्थिति में सुधार लाने के लिए सरकार की ओर से कई सकारात्मक कदम उठाए जा रहे हैं, जिनका लाभ उठाया भी जा रहा है। परन्तु इन प्रोसेसिंग सेन्टरों में लगी स्त्रियों की स्थिति को देखकर ऐसे किसी भी सकारात्मक कदम की सार्थकता नज़र नहीं आती। संजीव इसका कारण स्त्रियों का अपने अधिकरों के प्रति सचेत न होना और अनपढ़ता को मानते हैं। तभी तो वह बेला जैसी पढ़ी-लिखी स्त्री से प्रतिवाद भी करवाते हैं जिससे उसका ठेकेदार अन्दर ही अन्दर हिज जरूर जाता है। बेला एवं उसके ठेकेदार का वार्तालाप देखिए-''मेरा पेमेंट मुझे चाहिए।''

''ट्रेडीशन तो यही है कि ....''

''कैसा ट्रेडीशन ?काम हम करें, पेमेंट ले कोई दूसरा।''

''बट दैट इज आवर ट्रेडीशन ?'

''हेल टू योर ट्रेडीशन ?''

''ठीक है, ये रखो पांच सौ।''

''लेकिन बात तो हुई थी अठारह सौ की।''

''आठ सौ तुम्हें जहां लाने में खर्च हुए, पांच सौ मेस चार्ज।''

''तो ये पांच सौ भी रख लो मैं चली पोलिस स्टेशन?''

''रूको, रूको ? सम्भवता ऐसी भंगिमा एवं तिरस्कार ही शोषक की आंखे खोले। परन्तु बिडम्बना यह

है कि बेला जैसी जागरूक लड़कियों को उद्योग-धन्धों में नहीं रखा जाता। बेला की प्रतिक्रिया पर स्त्रियों पर नियंत्रण रखने वाली शुभा का कहना था- ''अगर हम जानते कि तुम एक सड़ी मछली हो तो वहीं छोड़ देते।'' इस पर बेला का प्रत्युत्तर स्त्री श्रम की परतें उधेड़ कर रख देता है - ''बड़ा स्वर्ग में ले आयी न! बोल कर लायी थी फ्री रहने का, फ्री खाने का, फ्री रेल भाड़ा, फ्री मेडिकल और अठारह सौ तनख्वाह और यहाँ आठ-आठ लड़कियों का कबूतरखाना, कैंटीन का सड़ा खाना, बाकी सब हमारे ऊपर और काम.... महीने भर से दूसरी जगह काम करा रही है - न रात को रात, न दिन को दिन.... ।

इसमे कोई सन्देह नहीं कि स्त्री श्रम से जुड़ा महिलाओं को उनकी अनपढ़ता एवं अज्ञानता के चलते श्रम का पूर वेतन नहीं मिल पाता। लेकिन विडम्बना यह है कि यदि महिलाएँ पढ़-लिखकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो भी जाएं, तो भी उनका शोषण होता ही रहेगा। इसका कारण यह है कि ठेकेदार जरूरत के समय तो उनकी मांगों को दरकिनार कर देते हैं। कहने का अर्थ यह है कि इन लड़कियों के साथ इस्तेमाल किया और फेंक दिया (use & throw) वाला व्यवहार किया जाता है। ठेकेदार मांग (demand) के अनुसार लड़कियों को स्पलाई करते हैं और काम पूरा होते ही उन्हें दूध में से मक्खी की तरह निकाल कर बाहर कर देते हैं।

आलोच्च उपन्यास में संजीव ने 'यौन-उद्योग' पर गहराई से विचार कर इस हिंसक अपराध की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया है। दुनिया भर में करोड़ों लड़कियाँ जवान हो रही हैं। लड़कियों की कोई कमी नहीं। इस यौन उद्योग में भी कड़ी प्रतियोगिता है। रोज नई-नई और किस्म-किस्म की लड़कियाँ चाहिए। यौन-उद्योग में इन लड़कियों से एक लाभ और भी लिया जाता है। धंधे में शामिल लड़कियों के गर्भ से निकले मरे शिशुओं का इस्तेमाल मांस के तौर पर किया जाता है। इस अमानवीय कृत का दृश्य संजीव ने इस प्रकार उकेरा है-''गाय, भेड़, बकरे, सुअर के मांस से भी लजीज होता है यह मांस-आदमी का मांस। शराफत के नकाब के चलते सीधे-सीधे खाया नहीं जा सकता आदमी के मांस को, सो गर्भ से निकले मरे शिशुओं का इस्तेमाल किया जाता है और ये गर्भी-पतित शिशु आते हैं कहां से ? यौन उद्योग की उन्हीं लड़कियों से।''

यौन शुचिता का ढोल पीटने वाले हमारे समाज में वर्जिनिटी (कौमार्य) की कीमत पूछने पर संजीव द्वारा दिया गया उत्तर भारतीय समाज के कटु यथार्थ को प्रस्तुत करता है - ''इस देश में जहां तीन साल की बच्चियों तक से बलात्कर होते हैं, वहां क्या तो वर्जिनिटी और क्या तो उसकी कीमत। उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट हो जाता है कि मछलियों की तरह ही जवान लड़कियों का धन्धा होता है। इस यौन उद्योग की प्रतियोगिता में चाहे लड़कियाँ स्वयं अपनी इच्छा से जुड़ी हों या मजदूरी से दोनों ही स्थितियों में वे शोषण की शिकार बनती है।

मूक और शोषित समाज को साहित्य में स्थान देने वाले प्रबुद्ध लेखक संजीव ने 'रह गई दिशाएँ इसी पार' में कन्या भ्रूण हत्या पर गंभीरतर से विचार करते हुए कन्या-भ्रूण के मूक रुदन को वाणी प्रदान की है। संजीव द्वारा चित्रित कन्या भ्रूण हत्या का चित्र किसी भी संवदेनशील व्यक्ति को विचलित कर सकता है-''फिल्म में जीवित मांस पिंड का अक्स उभरता है .... कोई बच्ची है, माँ के गर्भ की सुरक्षित दुनिया में मछली की तरह किल्लोलें करती हुई। सॅक्शन एवांशर्न मशीन के पहुंचते ही माँ से जुड़ी बच्ची चौंक कर दूसरी ओर भागती है। सार्क की तरह काटने वाली मशीन का मृत्युग्रासी जबड़ा उसकी ओर बढ़ता है और भाग-भाग कर छुपती बेहद डरी हुई बच्ची ठिठक जाती है, मुंह खोलकर सिर को पीछे तानती हुई चीखती है-एक खरमोश नंगी चीख। अब उसे कच-कच करके काटा जा रहा है गाजर मूली की तरह। सिर तोड़ा जा रहा है। सक-आउट किया जा रहा है। संजीव इस क्रूर कार्य के लिए माँ, बाप एवं डॉक्टर को उत्तरदायी मानते हैं- ''वह माँ जो हमें जन्म देती है।''

''वह पिता जिसके हम अंश होते हैं।''

''वे रिश्ते जो हमें भावनात्मक सुरक्षा देते हैं।''

वे डॉक्टर्स और वैज्ञानिक जो हमारा संभव बनाते हैं- यही जीवनदायी हाथ यहां मारने पर तुले हैं।

इस बेरहम कृत्य पर उपन्यास के नायक जिम का रोना स्वस्थता का संकेत है, जिसके माध्यम से लेखक ने भ्रूण हत्या जैसे क्रूर कार्य पर रोक लगाने की अपील की है। बालिकाओं पर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध देश के प्रत्येक नागरिक को आगे आने की जरूरत है अन्यथा हम जीवन से ही हाथ धो बैठेगे। संजीव के शब्दों में-''जीवन को अगर

न्यूक्लिस मानें तो उसके चारों और खड़ी है मौत, कई-कई परिधियों के छल्लों पर .... । तो चारों ओर मुंह बाये, अपने नुकीले दांत निकाले, हुंकारती, दहाड़ती, रेंगती शिकारी मौत के खिलाफ जीवन की निरन्तरता की धारा का नाम है औरत, जो न सिर्फ उस मौत से संत्रस्त है बल्कि जीवन से भी, फिर भी मौत को चकमा देती हुई जीवन को अमरत्व की ओर ले जाती है।

अंत कहा जा सकता है कि आज तक जिस आधार पर स्त्री द्वारा किए गए त्यागों को वैयक्तिक विफलता या कमी कह कर उसे सामाजिक व्यवस्था द्वारा नकारा जाता रहा था वही स्त्री समाज द्वारा निर्मित नियमों पर उँगली रखने लगी है। स्त्री के प्रश्न केवल उसके स्त्री होने की स्थिति तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थितियों से भी जुड़ते हैं, इसलिए स्त्री प्रश्न अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय है। इसका उद्देश्य भविष्य में वर्चस्व विहीन समाज की स्थापना और स्त्री के स्बलीकरण के प्रयत्न हैं।

## नारी का कैसा हो वसन्त

**डॉ. मिथिलेश दीक्षित**
**लखनऊ**

दूर्वा जैसी दृढ़ता से जब
आगे बढ़ने का चाव दिखे,
धरती का धैर्य दिखे उसमें,
जननी-सा-वत्सल-भाव दिखे,
पृथ्वी-पुत्री की गरिमा से
सम्पूर्ण सृष्टि परिवर्द्धित हो,
वन्दित हों, ऋतु-ऋतु पर्वोत्सव,
संस्कृति-संस्कृत सवंर्द्धित हो;
उसका कोमल कर लहराये
जब कीर्ति-पालक दिक्-दिगन्त।
नारी का ऐसा हो वसन्त।।

'महिला' महनीया होने से
जनने के कारण 'जननी है,
सदियों के झेले कष्टों से
वह हृदय भले ही छलनी है,
पर नहीं किसी से हारी है,
अरि नहीं किसी की 'नारी' है,
कोई भी गाली दे न सके
वह अबला या बेचारी है;
ऐसा गौरव वह पा जाये
जिसका न कहीं हो कभी अन्त।
नारी का ऐसा हो वसन्त।।

मलयानिल-सा शीतल सौरभ
उसके आँचल से लहक उठे,
उसकी वाणी से अमृत से
रसधार प्रेम की छलक उठे,
नयनों से ममता का सागर
लेकर हिलोर जब झलक उठे,
आशीषों की वर्षा करने
उर मातृभूमि का ललक उठे,
प्रत्येक हृदय में भर जाये
श्रद्धा अनन्त, करुणा अनन्त।
नारी का ऐसा हो वसन्त।।
प्रत्येक वर्ण गौरव पाये,
प्रत्येक सुमन खिल-खिल जाये,
रोमांचित हो हरियाली भी
पूरी वसुधा पर छा जाये,
प्रत्येक वाटिका झूम उठे,
जब प्रात-समय कलरव आये,
रोली-दीपक का थाल लिये
जब सांन्ध्य प्रकृति मंगल गाये,
सम्पूर्ण सृष्टि यह दोहराये-
नारी का ऐसा वसन्त।
नारी का ऐसा वसन्त।।

****

# हकलाना (वाक् विकार) : एक संक्षिप्त परिचय

**शालिनी अग्रवाल**
शोध छात्रा,
भाषा विज्ञान विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वराणसी

**भूमिका :**

जैसा कि हम सभी जानते है कि भाषा हमारे जीवन का अभिन्न और महत्वपूर्ण अंग है। इसके बिना हम एक दूसरे से विचारों का आदान-प्रदान तथा कोई सामाजिक कार्य नहीं कर सकते है। अपने विचारों को रखने का यह ही सर्वोच्च माध्मय है। परन्तु किन्ही कारणों से कुछ लोग वाक् विकार से ग्रसित होते है। जिसे हम 'हकलाना' कहते है।

हकलाना एक ऐसा विकार है जिसमें भाषा का प्रवाह बहुत सारी अनैच्छिक ध्वनियों, वर्णो या शब्दों की पुनरावृत्ति तथा दीर्घीकरण द्वारा बाधित होता है। इसके अतिरिक्त अनैच्छिक रूकावट भी आती है। जिससे वाणी का प्रवाह और लय दोषपूर्ण हो जाता है। ऐसे लोग अक्सर तनाव का शिकार होते हैं और अपने हकलाने के कारण सही रूप में विचार अभिव्यक्त नहीं कर पाते है। परिणामस्वरूप कुछ परिस्थितियों में उनके लिए धारा प्रवाह बोलना अत्यन्त कठिन हो जाता है जिससे अवरुद्ध प्रवाह और विकृत प्रवाह की स्थिति बनती है। दूसरी ओर यदि वे आराम की स्थिति में होते है तो ऐसा नहीं होता। चिन्ता, आत्महीनता का भाव, घबराहट तथा तनाव इसके प्रमुख लक्षण है।

**हकलाहट : एक सामाजिक दृष्टि से :**

हम सभी अपने जीवनकाल में कुछ विशेष परिस्थितियों में हकलाने की समस्या से गुजर सकते है। हकलाहट की स्थिति किसी के भी साथ उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए यदि हम किसी विशेष परिस्थिति में हो, किसी अदालत में किसी आक्रामक वकील से बहस कर रहे हो या एक बहुत तनावपूर्ण पूछताछ के दौरान ऐसा हो सकता है। हकलाना बहुत सामान्य है जब बच्चा भाषार्जन की प्रक्रिया में होता है। हालाँकि ज्यादातर बच्चे इस प्रारम्भिक हकलाहट से बाहर आ जाते है परन्तु कुछ ऐसे होते है जिनमें यह विकार जारी रहता है। उन्हें वाक् चिकित्सा के रूप में पेशेवर मदद की आवश्यकता होती है।

हालाँकि कुछ उपचार और वाक् चिकित्सा तकनीक उपलब्ध है जो भाषा प्रवाह को बढ़ाने में मदद कर सकते हैं परन्तु अनिवार्य रूप से वर्तमान में इस विकार के लिए कोई ''उपचार'' नहीं है। परन्तु इस विकार को सुधारने में माता-पिता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस समय बच्चा मौखिक रूप से संवाद करने की कोशिश कर रहा हो उस वक्त उसे प्रोत्साहित करें ना की उसकी समस्या पर अपनी प्रतिक्रिया दे कर उसका तनाव बढ़ाये।

**लक्षण :**

**1. मूल व्यवहार (Primary Behaviour) :** मूल व्यवहार उन प्रत्यक्ष व्यवहारों का संकेत करता है जिससे प्रवाह टूटता है। वह चाहे ध्वनियों, अक्षरों, शब्दों या वाक्यांशो के दोहराव से हो, उनके दीर्घीकरण से हो या रूकावट से। यह पुनः तीन प्रकार के हो सकते हैं-

**1. आवर्तन (Repetition) :** जब बच्चा प्रारम्भिक हकलाहट की स्थिति में होता है तब उनमें आवर्तन का व्यवहार उत्पन्न होता है। जिसमें वह एक ध्वनि, शब्द या वाक्य को बार-बार दोहराता है।

**जैसे**- मेरा नाम... मेरा नाम... मेरा नाम मोहन है।

2. **दीर्घीकरण (Prolongation) :** इसमें बच्चा अप्राकृतिक तरीके से ध्वनि, वर्ण या शब्द का दीर्घीकरण करता है।

**जैसे**– म्म...मम्...मम्...माँ

3. **रूकावट (Blockage) :** जब ध्वनि और श्वास में अनुचित अंतर होता है तब उससे रूकावट पैदा होती है। जो कि अक्सर जीभ, होठ या स्वर तंत्रिका माँसपेशियों ;अवबंस विसकेद्ध के आन्दोलन की रूकावट से जुड़ा होता है। भाषा में रूकावट होने के बाद माँसपेशियों में तनाव उत्पन्न हो जाता है।

## भाषा में प्रमुख समस्या :

1. **शब्दों की प्रारम्भिक ध्वनियाँ :** ऐसे लोगों को प्राय: एक शब्द या वाक्य की प्रारम्भिक ध्वनियों को शुरूआत करने में समस्या होती है। कई अध्यायनों से पता चलता है कि ऐसे लोग स्वरों की तुलना में व्यञ्जनों पर अधिक हकलाते है। जैसे- म-म-म-माँ क-क-क-कौन है?प्रारम्भिक हकलाने की सम्भावना वाक्य के अन्त में धीरे-धीरे कम हो जाती है।

2. **शब्दों के व्याकरणिक वर्ग :** अध्ययन से यह पता चलता है कि ऐसे लोग सर्वनाम, पूर्वपद, उपनाम तथा समायोजक की तुलना में संज्ञा, विशेषण, क्रिया या क्रिया विशेषण पर अधिक हकलाते है। जैसे- द-द-दीपा ब-ब-बाजार गयी और वहाँ अपनी घ-घ-घड़ी खो दी।

3. **शब्दों की लम्बाई :** ऐसे लोग छोटे शब्दों की तुलना में लम्बे शब्दों पर ज्यादा हकलाते हैं।

**2. सहायक व्यवहार (Secondary Behaviour) :**

1. **भावनाएँ और दृष्टिकोण (Feeling and Attitude) :** हकलाना एक ऐसा विकार है जो कि उस इंसान पर एक महत्वपूर्ण नकारात्मक और प्रभावी असर डाल सकता है। बहुत सारे लोग जो हकलाते है वह अपने आप में शर्म, निराशा, भय, क्रोध और अपराध जैसी कई नकारात्मक भावनाएँ विकसित कर लेते है। और जिसके परिणामस्वरूप उनमें तनाव बढ़ जाता है और व्यक्ति अपनी समस्या को गम्भीर बना लेता है।

2. **परिवर्तनशील (Variability) :** हकलाने की गम्भीरता कभी भी स्थिर नहीं होती है। यह हर ऐसे व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं और वातावरण पर निर्भर करती है।

**हकलाने के कारण और प्रकार :-**

विशेषज्ञ हकलाहट के कारणों के बारे में निश्चित नहीं है। हालाँकि निम्नलिखित कारणों के आधार पर हम हकलाहट को विभिन्न प्रकार में बाँट सकते हैं।

1. **विकासात्मक (Developmental) :** हकलाहट आमतौर पर एक विकासात्मक विकार माना जाता है जो बचपन की शुरूआत से ले कर व्यस्कता तक जारी रहता है। विकासात्मक हकलाहट तब उत्पन्न होता है जब बच्चे की मस्तिष्क संबंधी प्रणाली बच्चे की मौखिक माँगों को पूरा करने में असमर्थ होता है। अधिकांश शोध में हकलाहट की शुरूआत 30 महीने मानी गयी है। हालाँकि अधिकांश युवा बच्चे अपने भाषण के रूकावट से अनजान होते है। परन्तु कुछ माता-पिता की उनके प्रति अतिसतर्कता उनकी दबी हुई हकलाने की प्रवृत्ति को पुन: उभार सकते है। उन्हीं में से कुछ अपनी इस विचार से पूरी तरह अवगत होते हे और अपने आप को 'हकले' के रूप में पहचानना शुरू कर देते हैं। जिससे उनमें गहरी हताशा, शर्मिदगी और भय आ सकता है।

2. **तंत्रिकाजन्य (Neurogenic) :** हकलाहट किसी तरह सिर पर चोट, ट्यूमर या नशीली दवाओं के प्रयोग के रूप में एक तंत्रिकाजनित (neurological) घटना के परिणाम स्वरूप वयस्क अवस्था में प्राप्त किया जा सकता है। तंत्रिकाजन्य हकलाहट में मस्तिष्क और नसों या माँसपेशियों के साथ समन्वय स्थापित करने में असमर्थ होता है।

तांत्रिकाजन्य हकलाहट में दूसरे भाषा विकार उच्चारण वैकल्य (Dysarthia), वाकाघात (Aphasia) आदि के समान ही पुनरावृत्ति, दीर्घीकरण और रूकावट जैसे लक्षण प्राप्त होते है। इसमें विकासात्मक हकलाहट जैसी चिन्ताओं, आँख

फड़फड़ाना, भय आदि का अभाव होता है।

**3. मनोवैज्ञानिक (Psychological) :** मनोवैज्ञानिक हकलाहट का आरम्भ मस्तिष्क के उस क्षेत्र को माना गया है जो सोच और तर्क को नियंत्रित करता है। इस प्रकार की हकलाहट आमतौर पर उन लोगों में पायी जाती है जो कि मानसिक रूप से अस्वस्थ है या जो गंभीर रूप से मानसिक तनाव से गुजर रहे हैं। हालाँकि हकलाहट भावनात्मक समस्याओं का कारण बन सकता है लेकिन यह भावनात्मक समस्याओं का नतीजा नहीं माना जाता। कुल मिलाकर मनोवैज्ञानिक हकलाहट बहुत दुर्लभ है।

**4. आनुवांषिक (Genetic) :** हकलाहट का आनुवांशिक आधार भी है, जिनके माता-पिता में से कोई हकलाता हो तो उसके बच्चे में हकलाहट विकसित होने की तीन गुनी सम्भावना होती है।

2010 में पहली बार NIDCD के शोधकर्ताओं ने तीन जीन GNPTAB, GNPTG, NAGPA अलग किया जो कि हकलाहट के कारण होते हैं। शोधकर्ताओं का यह मानना है कि यह तीनों जीन उन 9% लोगों में मौजूद थे जिनके परिवारों के इतिहास में हकलाने की समस्या थी।

**निष्कर्ष :**

इस पत्र का प्रमुख उद्देश्य उन लोगों के प्रति ध्यान आकर्षित करना है जो हकलाते है या अपनी भाषा को ठीक प्रकार से अभिव्यक्त करने में असमर्थ होते हैं। यह याद रखना हम सभी के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वह व्यक्ति जो हकलाता है, वह बाकी सभी की तरह संवाद स्थापित करने में रूचि रखता है। और इसलिए उसके साथ भी किसी अन्य व्यक्ति की तरह ही व्यवहार किया जाना चाहिए। हमारा केन्द्र वक्ता के विषय पर होना चाहिए, उसकी दी हुई जानकारी पर होना चाहिए ना कि उसके तरीके पर।

एक व्यक्ति की हकलाहट तब अधिक गंभीर हो जाती है जब उसे अपनी समस्या की बहुत अधिक जानकारी न हो। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि श्रोता उसे धैर्य और शान्ति की भावना से सुने। सारांश में हम यह कह सकते हैं कि हकलाहट एक वाक् विकार है, यह कोई बिमारी नहीं है परन्तु इसका प्रभाव एक व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति से हो सकता है। आमतौर पर जो हकलाते है वह सामाजिक परिस्थितियों में हकलाते हुए पकड़े जाने के डर से कम महत्वपूर्ण छवि रखना पसन्द करते है। अक्सर लोग यही जानते है कि वह व्यक्ति नर्वस है या बेवकूफ है और इस प्रकार वे अपनी नकारात्मक भावनाओं के कारण उदासीन भाव से ग्रस्त हो जाते हैं। वे लोग यह नहीं जान पाते कि इन लोगों के हृदय के भीतर भी अपनी क्षमता का उपयोग करने की एक प्रबल इच्छा होती है। परन्तु कुछ कारणों से उन्हें ऐसा करने से रोका जाता है। लेकिन फिर उन्हीं लोगों में कुछ लोग ऐसे होते है जो पूरी तरह से अलग मार्ग चुनते हैं और वह सिद्ध करते हैं कि वह अपनी सबसे बड़ी कमजोरी को अपनी सबसे बड़ी ताकत बनाने में सक्षम हैं।

## इंसान

ऊँचाई अगर देखनी है तो आसमान की देखो।
राजनीति अगर देखनी है तो इस जहान की देखो।।
अगर स्वार्थ का रूप है देखना।
तो कलियुग का इन्सान देखो।।
दंगे-फसादों की जड़ को है देखना।
तो मंदिर-मस्जिद हिन्दु-मुसमान देखी।।
देशभक्ति की झलक को चाहते हो देखना।
तो वार्डर पर तैनात हर जवान को देखो।।
भारत को अगर संगठित है करना।
बाईबल, ग्रंथ, गीता और कुरान देखो।।
धरती पर है अगर स्वर्ग बसाना।
ते हर इन्सान में छिपा भगवान देखो।।

**सुनीता आनंद/पी.एम.ई.प्रभाग**

# आत्म विमोह : एक परिचय

**अनुजा सिंह,**
शोध छात्रा, भाषा विज्ञान विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

**डॉ.राजनाथ भट्ट**
प्रोफेसर, भाषा विज्ञान विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सार्थक अपने कमरे में खेल रहा था। उसकी माँ उसको बुलाने आयी। अनगिनत बार आवाज़ देने पर भी जब उसने अपनी माँ की तरफ नहीं देखा, तो थक कर वह वापिस चली गयीं। सार्थक अपने में मस्त, खिलौनों को एक सीधी कतार में लगाता रहा। आस-पास की हर गतिविधि से अनजान, वह आत्मविमोह की अपनी अलग ही दुनिया में प्रसन्न था।

आत्मविमोह ''औटिज़्म'' आज के समय में बहुत बड़ा संकट बनकर सामने आया है। प्रस्तुत शोधपत्र एक प्रयास है, लोगों को आत्मविमोह के प्रति जागरूक बनाने का। यह शोध पत्र आत्मविमोह तथा उसके संभावित कारणों को परिलक्षित करता है। आत्मविमोह, औटिज़्म नाम से पूरे विश्व में जाना जाता है। ''आत्मविमोह'' इस शब्द से ही इसका अर्थ भी स्पष्ट है। इसका अर्थ है जिसको अपने से कोई मोह ना हो। यह एक आजीवन मानसिक विकार है, जिसका पता हमें बचपन में ही चल जाता है। इस विकार से ग्रसित मनुष्य को सामाजिक संपर्क तथा संचार में क्षीणता का अनुभव होता है। आत्मविमोह स्नायू-तंत्रिका के विकास में बाधा का परिणाम है।

आत्मविमोह से ग्रसित लोगों को हम प्राय: अपनी एक अलग ही दुनिया में खोया हुआ पाते हैं। ये लोग सहजता से किसी से मिल नहीं पाते तथा उनके अपने सीमित तथा आवर्ती व्यवहार होते हैं। यह विकार लड़कों में लड़कियों की अपेक्षा तीन गुना ज्यादा पाया जाता है।

यदि हम इतिहास देखें तो हमें हमेशा से ही आत्मविमोह के मामले दिखते हैं। पर इसको सही अर्थों में हमसे परिचित कराने का पूरा श्रेय लियो कैनर को जाता है। सन् 1943 में अपने शोध पत्र ''औटिस्टिक डिस्टर्बेंसेस ऑफ अफेक्टिव कौन्टैक्ट' में उन्होंने ''औटिस्टिक ऑनलेस'' की बात की। उनके पश्चात् हैन्स ऍस्पर्गर ने भी बच्चों के समूह के साथ अपने अनुभवों के बारे में लिखा। इन बच्चों को उन्होंने ''औटिस्टिक साइकोपैथ्स'' आत्मविमोह मनोरोगी का नाम दिया। कुछ समय उपरान्त उनके द्वारा बताये गए विकार को ऐस्पर्गर सिंड्रोम के नाम से जाना जाने लगा। आत्मविमोह के इतिहास में ब्रूनो बेटेलहाइम, डॉ. रिम्लैंड, डॉ. सुज़ैन फोल्सटाइन का बड़ा योगदान है। हेलेन-टैगेर-फ्लूसबर्ग, टेम्पल ग्रान्डिन इत्यादि ने भी इस क्षेत्र मे काफी कार्य किया है। इनके कार्यो के फलस्वरूप आज हम आत्मविमोह को भलीभांति समझ सकते हैं। 1980 में मानसिक विकार के नैदानिक और सांख्यिकी नियमावली ।।। (डी.एस.एम.।।।) में आत्मविमोह को स्किटज़ोफ्रेनिया (खंडित मस्तिष्क) से अलग एक विकासात्मक विकार के रूप में वर्गीकृत किया गया। सन् 1992 में अमेरिकन साईकैट्रिक ऐसोसिएशन द्वारा डी.एस.एम.IV प्रकाशित हुआ, जिसमें आत्मविमोह विकार के लिए संशोधित मानदंड दिए गए।

आत्मविमोह को किसी लक्षण से नहीं पहचाना जा सकता । इससे ग्रस्त लोगों में एक जैसे लक्षण नहीं दिखते। इस क्षेत्र में एक प्रसिद्ध कथन है कि ''यदि आप आत्मविमोह से ग्रसित एक इंसान से मिले हैं, आप उससे ग्रसित एक ही इंसान से मिले हैं।'' इसका तात्पर्य है कि आटिज़्म स्पेक्ट्रम में हर इंसान अद्वितीय हैं ज्यादातर मामलों में हमें इस

विकार का पता तीन साल की अवस्था के बाद चलता है परन्तु कुछ मामलों में छः माह की अवस्था में ही हमें इस बात का पता चल जाता है।

इस विकार से ग्रस्त लोग ऑखों के सम्पर्क से बचते हैं। वे सामाजिक व्यवहार से परे होते हैं। वे अक्सर इशारों का प्रयोग जैसे किसी वस्तु की तरफ संकेत करना आदि में असमर्थ होते हैं। उनके खेल भी उनकी तरह अलग होते हैं। उन्हे बाकी बच्चों की तरह क्रिकेट, फुटबाल आदि पसंद नहीं आता।

आत्मविमोह से ग्रस्त लगभग आधे लोगों में भाषा का विकास बिल्कुल नहीं होता। हालांकि, बहुत से आत्मविमोह लोगों को भाषा का ज्ञान होता है तथा उनकी भाषा का प्रयोग करने की क्षमता दूसरे व्यक्ति से अलग होती है। कई आत्मविमोह से ग्रस्त लोगों की आश्चर्यजनक रूप से विस्तृत शब्दावली होती है। आत्मविमोही अपने भाषायी उच्चारण में प्रायः अशुद्ध लय, ताल और बलाघात का प्रदर्शन करते हैं जिससे उनकी बातें नीरस प्रतीत होती हैं। शब्दानुकरण भी उनकी आदतों में से एक है। वे किसी शब्द को सुनते ही या उसके कुछ समय पश्चात् उसका अनुकरण करने लगते हैं। ये लोग अक्सर नए शब्दों का भी सृजन कर देते हैं। इन लोगों को सर्वनाम के उपयोग में कठिनाई होती है। इन लोगों को एक समान या बंधा बंधाया कार्य पसंद होता है। दिनचर्या या घर में किसी भी प्रकार का परिवर्तन उनको भीषण रूप से परेशान कर सकता है। इसलिए हमें इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए कि उनकी दिनचार्या में किसी भी प्रकार का परिवर्तन न हो।

इस विकार का सबसे कष्टकर लक्षण यह है कि यह लोग खुद को चोट पहुंचा लेते हैं और इन्हे उसका आभास भी नहीं होता। हाथ काटना, सिर मारना, आँखों को आघात पहुँचाना आदि उनके लक्षण हैं। आत्मविमोह से ग्रस्त लोग अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। उन्हें तीव्र प्रकाश, शोर तथा भीड़ से परेशानी होती है तथा ऐसे स्थानों पर हम उनकी नकारात्मक प्रतिक्रिया देख सकते हैं।

आत्मविमोह के सही कारण का पता हमें आज तक नहीं चल पाया है। बीते वर्षो में अनुसंधानों द्वारा इसके कारण को जानने की कोशिश की गयी है तथा इस सम्बन्ध में हमें कई सुझाव भी मिले हैं। अनुसंधानों के आधार पर हम यह कह सकते है। कि पर्यावरण तथा आनुवंशिकी इसमें प्रमुख भूमिका निभाते हैं। आनुवंशिकी के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि माता-पिता में से किसी के भी परिवार में यदि आत्मविमोह का इतिहास है तो बच्चे में आत्मविमोह से ग्रस्त होने की सम्भावना बन जाती है। कुछ सिद्धान्त टीकाकरण को भी आत्मविमोह का कारण मानते हैं। एक सिद्धांत यह इंगित करता है कि थिमेरेसल जो कि पारे पर आधारित एक परिरक्षक है कि वजह से भी यह विकार हो सकता है। कीटनाशक भी गर्भधारण के पहले आठ सप्ताह के दौरान आत्मविमोह का एक महत्वपूर्ण कारण हो सकते हैं। कुछ वैज्ञानिक खाने से हुई एलर्जी को भी इसका कारण मानते हैं।

आत्मविमोह का पता यदि प्रारंभिक चरण में ही चल जाए तो लाभकारी सिद्ध होता हैं यदि बच्चा बारह महीने का होने पर भी बड़बड़ाना शुरू न करें या इशारा या संकेत न करें, दो साल का होने पर भी दों शब्दों के सहज वाक्यांशों का प्रयोग न करें, या कम आयु में ही एक चरण के बाद भाषा का अभाव हो तो हमें विलम्ब किये बिना बच्चे को तुरन्त विशेषज्ञ के पास परामर्श के लिए ले जाना चाहिए। इसका परीक्षण रोगी के मस्तिष्क सम्बन्धी मेडिकल टेस्ट से होता है। आमतौर पर चिकित्सक बच्चों की भाषा तथा संचार कौशल का मूल्यांकन करने के लिए अलग-अलग स्क्रीनिंग उपकरणों का उपयोग करते हैं। इसको जानने के लिए जिन नैदानिक उपकरणों का प्रयोग होता है उनमें से कुछ उदाहरण आटिज़्म डायग्नोटिक औब्ज़र्वेशन शेड्यूल (ए डी ओ एस), चाइल्डहुड औटिज़्म रेटिंग स्केल (सी ए आर एस), चेकलिस्ट फॉर औटिज़्म इन टाडलर्स (सी एच ए टी) आदि हैं।

डी.एस.एम. IV-टी आर में आत्मविमोह को एक ऐसे विकार के रूप में परिभाषिक किया गया है जो कम से कम छह लक्षणों को दर्शाते है। जिसमें सामाजिक संपर्क में गुणात्मक हानि के दो लक्षण, संचार में गुणात्मक हानि का कम से कम एक लक्षण, तथा प्रतिबंधित तथा आवर्ती व्यवहार के लिए एक लक्षण शामिल हों।

आत्मविमोह में आजीवन उपचार की आवश्यकता होती है। इसका उपचार व्यक्ति की आवश्यकता पर निर्भर करता है। इसका कोई सटीक उपचार नहीं पर, उचित इलाज तथा शिक्षा के साथ आत्मविमोह से ग्रस्त लोग शिक्षा प्राप्त करके आगे बढ़ सकते हैं। इसके उपचार में दवाइयों, विशेष शिक्षा सेवाओं, भाषा चिकित्सा कार्यक्रम, संगीत चिकित्सा, खेल चिकित्सा इत्यादि का प्रयोग होता है।

संचार चिकित्सा का प्रयोग, उन आत्मविमोह से ग्रस्त लोगों के लिए होता है, जो मौखिक रूप से संवाद करने मे असमर्थ हैं। उनके लिए चित्र विनियम संवार प्रणाली का उपयोग किया जाता है जिसके द्वारा वो अपनी बातें दूसरों तक पहुंचा सकते हैं। व्यावसायिक उपचार स्वतंत्र कार्य में सुधार करने मे मदद करता है तथा बुनियादी कौशल सिखाता है। इसकी मदद से ये लोग अपने निजी कार्य खुद से करना सीख जाते हैं। व्यवहार चिकित्सा एक ऐसी योजना है जिसका निर्माण मनौवैज्ञानिक, माता-पिता और शिक्षकों से परामर्श लेने के बाद करते है। इस प्रशिक्षण में एक चिकित्सक तथा एक आत्मविमोह से ग्रस्त बच्चा होता है। इसका तात्पर्य यह है कि एक चिकित्सा के समय एक बार में एक ही बच्चे को प्रशिक्षण देता है। इस प्रशिक्षण की गतिविधियाँ मरीज की आवश्यकताओं पर आधारित होती हैं। भाषण एवं भाषा चिकित्सा, सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली चिकित्सा है। यह चिकित्सा, आत्मविमोह से ग्रसित बच्चों के लिए चल रहे विशेष स्कूलों तथा उनके लिए कार्य कर रही संस्थाओं में पायी जाती है। इसमें प्रशिक्षण भाषा के हर स्तर पर कार्य करता है। वह इन बच्चों के वाक्यात्मक और व्यवहारिक पहलुओं को विकसित करने का प्रयास करता है।

आत्मविमोह एक ऐसा विकार है जिसके परिणामस्वरूप हम उससे ग्रस्त लोगों में असामान्य व्यवहार देख सकते हैं। परिवार तथा शिक्षा-प्रणाली इसके उपचार के मुख्य संसाधन हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उपचार के समय माता-पिता अपना धैर्य न खोयें क्योंकि आत्मविमोह ठीक नहीं किया जा सकता, लेकिन इसके उपचार तथा उन लोगों पर ध्यान देने से वह लोग श्रेष्ठतर जीवन जी सकते हैं। सी डी एस द्वारा मार्च 2012 में दिए गए आंकड़ों के अनुसार 80 में से 1 बच्चा आज के समय में आत्मविमोह से प्रभावित है। शोधकर्ताओं ने आत्मविमोह को एक चुनौतीपूर्ण विकार माना है। हम सभी को अपने नैतिक व सामाजिक उत्तरदायित्व स्वरूप आत्मविमोह से ग्रसित लोगों के उज्जवल भविष्य के लिए अपनी भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।

**माँ**

माँ ममता की है देवी
माँ है ईश्वर की परछाई
माँ ही जग-निर्माता है।
माँ दुनिया की आदि है
माँ ही है इसका अन्त
पर अपने बच्चों के लिए
माँ का स्नेह है अनंत
माँ बच्चो की साथी है
माँ बच्चों की शिक्षक है
माँ बच्चों की ईश्वर है
माँ बच्चों की रक्षक है भी
बच्चो की जिन्दगी के लिए
माँ अपना जीवन कर देती है कुर्बान
बच्चों के हर सुख के लिए
अपने सुखों का कर देती है बलिदान
सपुत हो या कपूत
माँ के लिए दोनों है एक समान
हिसाब लगाने के लिए जीवन भी है कम
माँ के हम पर है इतना अहसान।
माँ का आंचल हर दुख की दवा है
माँ का हर शब्द बच्चों के लिए दुआ है
हमेशा हमारे साथ रखना
सबकुछ छीन लेना हमारा पर
ममता का हाथ न छीनना ।

**सुनीता आनंद, जम्मू**

# संघर्षमय स्त्री की गाथा-कस्तूरी कुण्डल बसै

**निशा वर्मा, शोध अध्येता**
**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

स्त्री का जीवन जन्म लेते ही तरह-तरह के संघर्षों से जुझने लगता है। स्त्री का जन्म लेना ही परिवार में शोक का कारण बन जाता है। फिर पालन-पोषण और शिक्षा का प्रश्न स्त्री के विकास में बाधा बनकर खड़ा होता है। स्त्रियों की शिक्षा पर परिवार जोर नहीं देता। यदि दे भी दे तो सामाजिक प्रतिक्रियाएं स्त्री की शिक्षा में बाधा बन जाती हैं और पढ़ाई के नाम पर स्त्री को केवल अक्षर या घरेलू शिक्षा के विषयों के बारे में ही जानकारी दी जाती है। 'स्त्री की देह' स्वयं स्त्री के लिए बहुत बड़े प्रश्न के रूप में स्त्री के समक्ष संघर्ष का कारण बनती है। छेड़छाड़ के मामले तथा पुरुष के स्त्री की देह को नोचने-दबोचने वाले हाथ स्त्री के विकास को उससे बहुत दूर ले जाते हैं।

विवाह का प्रश्न सभी स्त्रियों के समक्ष उपस्थित रहता है। चाहे पह स्त्री पढ़ी-लिखी शहर की हो या फिर गाँव की अनपढ़। विवाह की अनिवार्यता और दहेज जैसी कुरीति के कारण अनमेल विवाह और फिर विधवा होने की समस्या से स्त्री को आजीवन जूझना पड़ता है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा में कस्तूरी ऐसी ही समस्याओं से संघर्षरत है। कस्तूरी की विद्रोही प्रवृति पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाए नियमों को नहीं मानती बल्कि पग-पग पर उन नियमों को चुनौती देती हुई आगे बढ़ती है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' का आरम्भ कस्तूरी (मैत्रेयी की माँ) के विवाह के लिए मना करने से शुरू होता है। उसके मना करने का कारण पति की मृत्यु के बाद सती होने का डर था क्योंकि ढूंढ़ा गया पति बुढ़ा था। कस्तूरी की माँ, कस्तूरी को समझाने आती है कि वह शादी से इंकार न करें। कस्तूरी अपनी माँ को उत्तर देती हुई कहती है, ''वह बुढ़ा है, बीमार है, कब तक जिएगा? जो वह बुढ़ा है मुझे पता चल गया है और यह तू भी जानती है कि पति की चिता पर बैठकर जिन्दा जल मरने वाली औरत को लोग पूजते हैं। जिन्दा रही तो मार डालेगे।

स्त्री को मात्र एक वस्तु के रूप में समझने वाला हमारा समाज स्त्री को आसानी से खरीद-बेच सकता है। यही घटना कस्तूरी के साथ घटती है। विवाह से इन्कार करने के उपरान्त भी कस्तूरी का मात्र आठ सौ चाँदी के सिक्कों में सौदा कर, विवाह के रूप में बेच दिया जाता है।

कस्तूरी बिकने के बाद भी किसी के सामने गिड़गिड़ाई नहीं। बेटी (मैत्रेयी) के जन्म के बाद भी वह अपने भविष्य को सँवारना चाहती है। भविष्य को सँवारने का कस्तूरी जो साधन अपनाती है वह है-शिक्षा। चाहे जितना पैदल चलना पड़े, लोग चाहे जितनी नाक-भौं सिकोड़े, बातें करे, कस्तूरी रूकती नहीं है। वह स्वयं भी शिक्षित होती है और गाँव-गाँव जाकर स्त्रियों को शिक्षित करने और शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए कहती है। शिक्षित कस्तूरी एक दिन सरकारी नौकरी पा ग्रामसेविका के पद पर आसीन होती है।

स्त्री के लिए शिक्षा प्राप्ति का संघर्ष किसी एक पीढ़ी तक समाप्त होने वाला नहीं है। कस्तूरी अपनी बेटी मैत्रेयी को भी शिक्षित करना चाहती है। कस्तूरी के बाद जब मैत्रेयी दूर के स्कूल में अपने दलित मित्र 'एदल्ला' के साथ जाने लगी तो अन्य साथी लड़के मैत्रेयी और उसके नन्हें दोस्त एदल्ला को परेशान करते हैं। जब माँ ने साइकिल वाले व्यक्ति के साथ उसके जाने की व्यवस्था की तो वह भी उसे अपनी हवस का शिकार बनाने की कोशिश करता है। प्रतिशोध करने पर फ्राक कट जाती है और मैत्रेयी घायल हो जाती है। माँ बेटी की पढ़ाई फिर भी जारी रखती है। मैत्रेयी की

शिक्षा के लिए कस्तूरी ने शहर में जहाँ-जहाँ भी मैत्रेयी को अपने परिचिततयों के घर में रखा वही पर मैत्रेयी पुरुष की गन्दी नज़रों और वासना का शिकार होती है। अपने दर्द को व्यक्त करने के लिए मेत्रेयी अपनी माँ को पत्र में लिखती है, ''माताजी, वह मुझे रात भर सोने नहीं देता। मैं यहाँ नहीं रहूँगी। गाँव भाग जाऊँगी। शहर के लोग कैसे हैं, रात में पेट पर हाथ धरते हैं। छाती नोचतें-बकोटते हैं और कच्छी...।'' केवल बचपन में ही नहीं बल्कि कॉलेज में भी प्रिंसिपल एकस्ट्राक्लॉसेज के बहाने बुलाकर उसके साथ बलात्कार करने की कोशिश करता है। अत: स्त्री शिक्षा प्राप्ति के संघर्ष में बचपन से लेकर युवा होने तक लगातार देहके संघर्ष से जूझती रहती है।

कस्तूरी ने वैवाहिक जीवन का कोई सुख नहीं देखा। केवल दुख-ही-दुख झेले। कस्तूरी नहीं चाहती कि मैत्रेयी विवाह करे। वह चाहती है कि मैत्रेयी पढ़-लिखकर अपने पाँव पर खड़ी हो और आगे बढ़े न कि एक साधारण औरत बन अपना जीवन माँ से कहती है ''माताजी मेरी शादी कर दो।'' यह शब्द सुनते ही कस्तूरी दंग रह जाती है, कयोंकि उसके अनुसार विवाह '' औरत के लिए ऐसे बन्धन पैदा करता है, जो जीवन-भर कसे रहते है। पति के रहने पर भी और न रहने पर भी। पति की पसन्द-नापसन्द दोनों औरत पर ही भारी पड़ता है। तूने किसी विधुर को विधवा की तरह रहते देखा है? किसी छोड़ी हुई औरत की तरह उसके पुरुष का अपमान होता?'' कस्तूरी के लाख समझने पर भी मैत्रेयी नहीं मानती और अन्तत: विवश हो कस्तूरी उसके लिए वर खोजने लगती है।

भारतीय समाज में स्त्री की पहचान बनती है पिता, पति और पुत्र से। सुहाग और कोख दो ऐसी स्थितियाँ हैं जिनके बिना समाज में स्त्री सदा परेशानी में ही रहती है। अपितु इसके बिना उसे अपनी सारी उपलब्धियाँ निरर्थक लगने लगती है। कस्तूरी को भी इस स्थिति से गुजरना पड़ता है। वह मैत्रेयी के लिए लड़का देखने स्वयं जाती है। लेकिन सामाजिक रूप से लड़के वालों की तरफ से उसके साथ जिस तरह का व्यवहार किया जाता है वह कम पीड़ादायक नहीं है। पुरुष वर्चस्व वाला समाज उसे स्त्री भी समझता तो बात और थी किन्तु यहाँ तो उसे मनुष्य भी नहीं समझा जाता। पाठक, भगवानदास से यह सुनकर मैत्रेयी का रिश्ता ठुकरा देता है कि ''तुम्हारे गाँव की राँड़ी भी चार बार चक्कर मार गई है। अब तक कोई रिश्ता जँचा नहीं। तुम्हारे गाँववाला ठीक लग रहा था, पर उस राँड़ी की क्या साख ?'' सामाजिक कार्यो के लिए स्त्री को किसी न किसी पुरुष की जरूर आवश्यकता रहती है। भले ही वह पाँच या दो साल का बालक ही क्यों न हो। अत: मैत्रेयी के लिए एक डॉक्टर वर मिलता है और मैत्रेयी का विवाह सम्पन्न होता है।

कस्तूरी दिन-रात स्त्रियों के उद्धार के लिए कार्यरत रहती है परन्तु सरकार के अचानक ग्रामसेविका के पद समाप्त कर दिये जाने पर कस्तूरी बेरोजगार हो जाती है। कभी न हार मानने वाली कस्तूरी इन्साफ के लिए भूख हड़ताल पर बैठती है। इसी दौरान मैत्रेयी माँ बनती है और एक बेटी को जन्म देती है। पूरा मौहल्ला उसे ताने देता है कि सबके लड़के हुए और यह एक सतमासी लड़की जन्मी है, जो गंजी है। मैत्रेयी विरोध करती है तो औरतें जली-कटी सुनाती हैं कि इतरा तो ऐसे रही है जैसे लड़का पैदा हुआ है।

मैत्रेयी अपनी बेटी के जन्म पर शोक नहीं मनाती क्योंकि उसका मानना है कि वह अपनी प्रजाति से नफरत क्यों करे और किसलिए ? उसके कानों में अपनी माँ के शब्द गूंजने लगते हैं ''लाली, न जमीन, न जल, न हवा, न इज्जत, न आबरू। सब हमारे आस-पास घिरे मर्दो का है। जब चाहे बख्श दें, जब चाहे उतार ले। पर फिर भी हम लडेंगे अपनी जान के लिए, अपनी इन्द्रियों के लिए, अपनी इन्सान होने के लिए।''

अत: मैत्रेयी पुष्प ने स्त्री जीवन के संघर्ष को जिस बोल्ड तरीके से पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है वह सचमुच चुनौतीपूर्ण काम है। स्त्री समय, समाज और संस्कृति के समक्ष किस प्रकार अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष करती है इसका स्पष्ट उदाहरण है-कस्तूरी कुण्डल बसै।

# दलित साहित्य आन्दोलन एवं दलित समाज

**एम.पी.सिंह, संरक्षक,**
**समता बुद्ध विहार, पश्चिम पुरी,नई दिल्ली**

दलित साहित्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह बताना उचित होगा कि दलित कौन है ? दलित हिन्दू समाज का वह अंग है जो सदियों से शोषित, उत्पीड़ित, अपमानित, अन्याय और अत्याचार से ग्रसित है और जिसे उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए कोई अधिकार नहीं दिए गए। शिक्षा प्राप्त करना उनके लिए वर्जित था। इस कारण यह वर्ग (शूद्र) हिन्दू समाज की मुख्यधारा से हमेशा के लिए पिछड़ गया। जो साहित्य दलितों की दशा, दिशा, उनके दुख दर्द, शोषण, अपमान, अन्याय, अत्याचार को दर्शाता है साथ ही साथ देश के नवनिर्माण में उनकी हिस्सेदारी, उनके पूर्वजों का इतिहास एवम् देश की स्वतंत्रता प्राप्ति में उनकी भूमिका को भी प्रकाश में लाता है वही दलित साहित्य है।

प्राय: यह देखा गया है कि ब्राह्मणी मानसिकता एवं पक्षपातपूर्ण दृष्टि के कारण भारतीय इतिहासकार, लेखक एवं साहित्यकार उपरोक्त विषयों में मौन ही रहे हैं। इसके विरोध में दलित साहित्यकारों को आन्दोलन करना पड़ा। 'दलित साहित्य आन्दोलन' मनुवादी वर्ण व्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक अन्याय और अमानवीय अत्याचारों के विरूद्ध दलित साहित्यकारों द्वारा चलाया गया आन्दोलन है। इसमें एक तरफ समानता, बन्धुत्व, न्याय तथा मुक्ति का अभियान है वहीं दूसरी तरफ भगवान बुद्ध, महामना ज्योतिबा फूले तथा डा. अम्बेडकर का गुणगान है। दलित साहित्य आन्दोलन में सदियों से हाशिये पर रहने वाले दलितों का मुख्यधारा में लाने का सुनहरा सपना है। दलित साहित्य आन्दोलन के अग्रणी रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मिकी के अनुसार – ''दलित साहित्य, मुक्ति आन्दोलन का एक हिस्सा है। इस साहित्य में स्वयं दलितों ने अपनी पीड़ा और शोषण के विरूद्ध साहित्यिक अभिव्यक्ति दी है। जो केवल कला के लिए कला नहीं है बल्कि सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक विद्वेष और दर्द, वेदनाओं को वहन करते हुए मनुष्य की निजीविषा और मुक्ति की आकांक्षा बनकर उभरा है।''

दलित साहित्य का उद्‌भव एवं विकास – हिन्दू समाज में स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व एवं नारी समानता के सबसे पहले उद्‌घोष करने वाले तथागत बुद्ध थे। जिन्होंने मानव कल्याण को ही अपने धम्म का मुख्य केन्द्र माना। इसके बाद भक्तिकाल में कबीर, रैदास, नानक आदि ने अपनी वाणी द्वारा जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था का विरोध किया था। उनकी वाणियों में जातिप्रथा के प्रति आक्रोश था। इस प्रकार सबसे पहले इलित चेतना का आभास भक्तिकाल भक्तों की वाणी में मिलता है। आजादी से पूर्व 1914 आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संचालित पत्रिका 'सरस्वती' में दलित कवि हीरो डोम की कविता 'अछूत' की शिकायत प्रकाशित हुई। स्वामी अछूतानंद की कविता में दलितों की दुर्दशा का चित्रण एवम् दलितों के पिछले बहादुरीपूर्ण इतिहास का भी वर्णन किया है।

गुलामी की नींद में सोये हुए दलितों को जगाने के लिए उन्होंने लिखा है-

''सभ्य सबसे हिन्द के प्राचीन है हकदार हम।
था बनाया शूद्र हमको, थे कभी सरदार हम।
अब नहीं है वो जमाना कि जुल्म 'हरिहर मत सहो।
तोड़ दो जंजीर जकड़ी मत गुलामी में रहो ।

स्वामी जी की जोशभरी कविताओं का प्रभाव दलित जनता के साथ-साथ दलित साहित्यकारों पर भी पड़ा। इसके अतिरिक्त दलपत चौहान के गुजराती भाषा में, जाषूवा ने तेलगू में, करूपेनल, (करूपेनल) ने मलयालम का कार्य सुव्यवस्थित रूप से महाराष्ट्र के दलित साहित्यकारों ने प्रारंभ किया। उनमें प्रमुख नामदेव दसाल (ढसाल), दया पवार, गंगाधर पानतावणे, बाबूराव बागुल आदि साहित्यकारों ने हिन्दी भाषा में साहित्य के दलित साहित्यकारों पर प्रभाव डाला। व्यवस्थित रूप से दिल्ली में 1984 में डा. सोहन पाल सुमनासर की अध्यक्षता में भारतीय दलित साहित्य

आन्दोलन की स्थापना की गई। इस आन्दोलन को कमलेश्वर एवं 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव ने भरपूर सहयोग दिया। राजेन्द्र यादव ने दलित विशेषांक निकालकर दलित साहित्य की गरिमा बढ़ा दी और दलित एवं दलित साहित्यकारों के शुभचिंतक बन गए।

दलित साहित्य आन्दोलन में इस मध्य एक विवाद उठ खड़ा हुआ कि दलित साहित्यकार ही दलित साहित्य के साथ न्याय कर सकता है। इस संबंध में उनका तर्क है दलित साहित्यकारों ने पीड़ा, अन्याय अपमान, तिरस्कार सहन किया है। वहीं साहित्यकार अपनी रचना में उचित न्याय कर सकेंगे। इस संबंध में प्रसिद्ध कहावत है 'जाके पांव न फटे विवाई' सो का जाने पीर पराई।

इस विचार का प्रसिद्ध साहित्यकार मनोहर श्याम जोशी ने आंशिक रूप से समर्थन किया उन्होंने कहा कि गैर दलित दलितों के बारे में, दलितों के हित के बारे में लिख ही नहीं सकता इसे मैं नहीं मानता। इस संबंध में प्रसिद्ध साहित्यकार नामवर सिंह ने उपरोक्त विवाद के संबंध में अर्द्ध सम्मति दी है। उन्होंने कहा मैं आरक्षण का तो समर्थक हूँ लेकिन साहित्य में नहीं।

उपरोक्त विरोध के होते हुये भी गैर-दलित साहित्यकारों के सहयोग से दलित साहित्य आन्दोलन ने आशातीत प्रगति की है। हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में जैसे कविता, गीत, उपन्यास, आत्म कथा संस्मरण एवं 'डायरी' द्वारा दलित साहित्य को नई दिशा दी है। सिनेमा जगत में भी दलितों की दशा एवं दिशा और उनकी समस्याओं का जिक्रकिया है। जैसे विमलराय ने फिल्म 'सुजाता' में दलित नायिका की व्यथा-कथा को बड़े ही धार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। जे.पी.दत्ता फिल्म 'गुलामी' में जाति-प्रथा, छुआछात, जमींदारी व्यवस्था की क्रूरता को बड़े ही सहज ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 1951 में राजकपूर द्वारा प्रदर्शित फिल्म 'आवारा'' में जिसका शीर्षक गीत 'शैलेन्द्र' ने लिखा है-आवारा हूँ, घर-वार नहीं, संसार नहीं-इस गीत में शैलेन्द्र ने वंचितों, दलितों, गरीबों और शोषितों के जीवन की वास्तविक सच्चाईयों को उजागर किया है।

दलित साहित्य आन्दोलन के कारण ही जहां हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में दलित साहित्य का सृजन हुआ है वहां सैकड़ों समाचार पत्र, पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही हैं। लेकिन बहुत से लेखक धनाभाव के कारण समय पर प्रकाशित नहीं कर पाते। उचित प्रशिक्षण के अभाव में उनकी गुणवत्ता पर भी प्रभाव पड़ता है।

लगभग 35 वर्ष पूर्व भारतीय दलित साहित्य आन्दोलन का शुभारम्भ दिल्ली से हुआ तब से यह आन्दोलन तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है। दिल्ली से प्रारम्भ होकर यह आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुंच गया है। इस आन्दोलन के कारण हजारों दलित लेखक, साहित्यकार, कहानीकार उपन्यासकार देश एवं दलित समाज की सेवा कर रहे है। इन दलित साहित्यकारों विशेषत: स्वामी अछूतानंद, डा. बी.आर.अम्बेडकर, महामना ज्योतिबा फूले, डी.सी. डिंकर एवं डा. अंगने लाल (भूतपूर्व कुलपति डा. राममनोहर लोहित विश्वविद्यालय, फैजाबाद) द्वारा अपने पूर्वजों का इतिहास, भारत की आजादी में दलितों का योगदान एवं देश के नवनिर्माण में उनकी क्या भूमिका रही, ज्ञात हुआ ।

यह देखा गया है कि कुछ दलित लेखक साहित्यकार परंपरागत एवं पुरानी रूढ़ियों के अनुसार अपने साहित्य का सृजन कर रहे हैं। यह दलित साहित्य आन्दोलन की भावना के विरूद्ध है। दलित साहित्य का अर्थ- विद्रोह यानि प्रस्तावित साहित्य का हित करना है तो उन्हें स्वामी अछूतानन्द, महामना ज्योतिबा फूल, एवं डा. बी.आर.अम्बेडकर के मिशन के अनुसार साहित्य का सृजन करें।

# गीतांजलि श्री की कहानियों में बिखरते पति

रजनी शर्मा,

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह चाहे पुरुष हो या स्त्री उसे एक दूसरे से सहायता लेनी ही पड़ती है। एक दूसरे से सहायता लिए बिना उसका जीवन पूर्ण नहीं बन सकता। अत: मानव जीवन में संबंधों का विशेष महत्व है। संबंध मनुष्य को जीना सिखाते है। गीतांजलि श्री हिन्दी साहित्य की सशक्त लेखिका है। इनकी कहानियों में समकालीन समाज में हो रहे परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य मे विभिन्न संबंधों पर चिंतन मनन किया जाता है।

हमारे जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि सामाजिक संबंधों पर अर्थ तन्त्र हावी हो गया है जिसके कारण संबंध निभाये नहीं, ढोये जा रहे हैं। गीतांजलि श्री कृत कहानियों में पति-पत्नी संबंध उलझे हुए हैं और इनके मध्य चित्रित नारी अधिक आहत हुई है। 'अनुगूँज' कहानी में मुनिया तथा राहुल पति-पत्नी हैं। ऊपरी तौर पर इनके मध्य संबंध अच्छे हैं। मुनिया अपने पति को व्यावहारिक तथा शारीरिक रूप पर मुग्ध है पर मुनिया द्वारा बाहर नौकरी करने की इच्छा को स्वीकार नहीं करता। पति-पत्नी के मध्य जो परस्पर विश्वास तथा एक दूसरे को समझने का भाव होता है वह उनमें कम मिलता है। मुनिया अपनी नैकरी करने की इच्छा को दबा देती है और कोई विरोध प्रकट नहीं करती। पति-पत्नी के आपसी संबंधों में जहाँ मधुरता नही रह जाती वहाँ दूरियों का होना स्वाभाविक है। पति-पत्नी में यदि प्रेम, आत्मीयता, सौहार्द, समन्वय, एक दूसरे का आदर करने की भावना हो तो ऐसे दाम्पत्य के घर-परिवार में सुख-शांति और वैभव होता है। अगर पति-पत्नी में रोजाना झगड़ा, गाली-गलौल और संशय की स्थिति होने से उनमें अलगाव आ जाता है। 'दरार' नामक कहानी में कल्पेश तथा सबा के मध्य वैवाहिक जीवन सुखद नहीं है। कल्पेश पुरुष वर्चस्व को स्थापित करते हुए स्वयं को घर का एकमात्र संरक्षक समझता है। अपने पति के अहंकारी व्यवहार के कारण सबा के ऐसे + उसे दृढ़ सख्त और क्रूर व्यक्ति कहती है। अपने विषय में सबा के ऐसे विचार सुनकर उसके पुरुष वर्चस्व को ठेस पहुँचती है और वह घर छोड़कर चला जाता है जिसकी अभिव्यक्ति लेखिका के इन शब्दों में होती है। ''उसने चुपचाप दस्तखत कर दिया था।..... तब जाकर उसने अपना जोर दिखाना शुरू किया। ठीक है जी, जाएँगे, पर तुम भी क्या याद रखोगे कि हम गए।' अत: दोनों के मध्य दाम्पत्य संबंध टूट जाते हैं और वह अलग-अलग रहने लगते हैं।

विवाह के पश्चात पत्नी के प्रति-पति की शंकालु दृष्टि द्वन्द्वका कारण बनती है। जब वे एक दूसरे पर विश्वास नहीं रख पाते तब उनके मध्य फासले बढ़ जाते हैं। पति द्वारा अपनी पत्नी पर शंका करना पत्नी के लिए सबसे अधिक मर्मघाती लांछन होता है। जिसका चित्रण दूसरी कहानी में भगीरथ तथा नीलम के दाम्पत्य संबंधों के सन्दर्भ में किया गया हैं नीलम आधुनिक विचारों की नौकरी पेशा औरत है। उसे केवल खुलापन स्वीकार है। नीलम का व्यवहार भगीरथ के मन में शंका उत्पन्न करता है। उनकी सालगिरह की पार्टी में आए उसके मित्र रोशन के साथ हंस-हंस कर बातें करते देख तथा दोनों को अपने कमरे के भीतर से एक साथ निकलते देख भगीरथ दोनों पर शक करता है। वह नीलम पर रोशन के साथ अवैध संबंधों का आरोप लगाता है। जिसके कारण दोनों के मध्य झगड़ा आरम्भ हो जाता है और नीलम कह उठती है ''तुम्हें मुझसे हर समय शिकायत है, मेरी किसी बात पर खुश नहीं। मैं तो सोचने लगती हूँ कि आखिर तुम मेरे संग हो ही क्यों ?'' भगीरथ अपनी सीमित सोच को उजागर करते हुए कहता है ''साफ क्यों नहीं कह देती, हट जाओ ? यह भी बता दो, फिर किसके पास जाने का इरादा है।'' भगीरथ को नीलम की आधुनिकता आक्रांत करती है जिसके कारण उसे भगीरथ की संकुचित सोच से तंग आकर वह कहती है, ''माफ करना भगीरथ, संभलना तुम्हें होगा। यह बकवास नहीं चलेगी कि कुरेदकर हर दोस्त के बारे में पूछते। लीव पीपल अलोन।'' आपसी अविश्वास तथा विचार भिन्नता के कारण इनके मध्य वैवाहिक संबंध उलझे रहते हैं। समाज में पति-पत्नी संबंधों का उद्देश्य यही है कि दो हृदय एक दूसरे की सहमति से मिलकर जीवन को सार्थक बनाएँ न कि सामाजिक आडम्बरों को लपेट कर जीवन भर सिसकने के लिए उन्हें निभाया जाए। 'बेलपत्र' काहनी में ओम तथा फालिमा प्रेम विवाह करते हैं लेकिन विवाह के पश्चात दोनों के मध्य प्रेम संबंध टूटने लगते हैं। ओम फातिमा पर धार्मिक पाबंदियां लगता है। वह उससे प्रेम करता है पर उसके व्यक्तित्व तथा स्वतंत्रता को प्राथमिकता नहीं देता। फातिमा अपने अधिकारों की मांग करते हुए कहती है: ''ओम मैं इन्सान हूँ, फरिश्ता नहीं।.... मुझे जिन्दगी चाहिए जिसमें रिश्ते हैं दूर के, करीब के।..... ओम, तुम बेवकूफ हो ..... जिन्दगी एक जरा से 'इटीमेट' घेरे में नहीं जी जाती ... .. ओम मेरा दम घुटता है। फातिमा अपने अब्बु के घर जाकर नौहे पढ़ती है तो ओम का उसके नौहे पढ़ने का विरोध करते हुए कहना है। ''दो दिन उस माहौल में लौटी और दिमाग फिर गया।'' ओम की धार्मिक संकीर्णता के कारण उसके दाम्पत्य संबंधों में बिखराव आने लगता है।

आधुनिक युग में संबंधों में आए बदलावों को जिए तरह इनकी कहानियों में उकेरा गया है वह अपने आप में सराहनीय है। ऊपरी तौर पर पति-पत्नी संबंध सरल दिखाई पढते है परन्तु भीतर से यह संबंध उलझे हुए हैं।

# नक्सलवाद : एक समस्या के रूप में

**सोनिया गुप्ता,**

**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

भारत की एकता तथा अखण्डता के लिए विद्यमान समस्याओं में नक्सलवाद एक प्रमुख समस्या बन गया है। नक्सलवाद भारत के विरुद्ध अघोषित युद्ध है जिसमें भारत के विरुद्ध भारतीयों का ही सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है, अर्थात् दोनों ओर से मारे जाने वाले अपने ही लोग हैं। बंदूक के बल पर जनतंत्र को उखाड़ फैंकना नक्सलियों का अघोषित एजेंडा है। इस युद्ध में निहत्थे बेबस लोगों की बलि दी जाती है। उन्हें बंधक बनाकर अमानवीय यातनाएँ दी जाती हैं।

नक्सलवाद देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए बहुत बड़ा खतरा माना जा रहा है। नि:संदेह यह शांति, विकास और कानून व्यवस्था के लिए बाधा बनते जा रहा है। वास्तव में नक्सलवाद घोर एवं घातक हिंसक कार्यवाहियों का पर्याय बन चुका है। अब तक 20 राज्यों के लगभग 223 जिलों तक नक्सलियों ने अपना प्रभाव डाला है। इसके साथ ही नक्सलीया माओवादी हिंसा निरन्तर बढ़ती ही जा रही है।

नक्सलवाद का प्रभाव उन्हीं क्षेत्रों में अधिक दृष्टिगोचर होता हैं जहाँ पर विकास और प्रगति कम हुई या हुई ही नहीं है। नक्सल प्रभावित क्षेत्र में रहने वाले अधिकांश लोग अब तक देश की मुख्यधारा से जुड़ नहीं पाए हैं। नक्सलवाद मूल रूप से मार्कसवाद के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अन्तर्गत शोषित, उपेक्षित एवं दलित वर्ग अपनी संघर्ष शक्ति को निशाना बनाते हैं और शासक वर्ग की राजसत्ता को समाप्त कर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। इनका वास्तविक उद्देश्य समाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समानता स्थापित करना है। किन्तु अकारण हिंसा, क्रूरता, अपहरण एवं उग्रवाद अपनाने के कारण यह हमारे समाज के लिए एक चुनौती एवं सुरक्षा की दृष्टि से एक घातक सामयिक समस्या के रूप में उभरा है।

नक्सलवादियों का दर्शन न सिर्फ राष्ट्रीय है, बल्कि कई गुट तो समूची दुनिया को बदलने का सपना संजोए हैं। नक्सलवादी वर्ग संघर्ष के द्वारा समूची दुनिया को अपनी विचारधारा के अनुरूप परिवर्तित करने का इरादा रखते हैं।

हिन्दी महिला लेखिकाओं में मधु कोकरिया का महत्वपूर्ण स्थान है। मधु कोकरिया ने अपने साहित्य में नक्सलवाद की समस्या को चित्रित किया है। खुले गगन के लाल सितारे, उपन्यास, महाबली का पतन, लेकिन कॉमरेड और अन्त में ईशु कहानियाँ नक्सलियों पर पुलिस द्वारा हुए अत्याचारों एवं उनके क्रूरतापूर्वक व्यवहार को दर्शाता है। ''भूमि उसकी हल जिसका जोते जो'' की तर्ज पर यह आन्दोलन शुरू हुआ था। सर्वप्रथम इस आन्दोलन के बीज सन् 1967 में परिश्म बंगाल के जलपाइगुडी जिले के नक्सलवाड़ी ग्राम में फूटे थे और आज यह आन्दोलन विभिन्न राज्यों में फैल चुका है। यह आन्दोलन शोषित किसानों द्वारा शोषक जमींदारों के विरुद्ध था। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य वर्ग शत्रुओं का नाश करना और गाँवों को वर्गशत्रुओं से मुक्त करवा कर जनसाधारण का शासन स्थापित करना था।

'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास में गोविन्द दा का कथन है - ''जिस प्रकार घर को सजागर रखने के लिए दीमक, जोंक, मक्खी-मच्छरों के मार डालना पड़ता है। वैसे ही हमारे सफाई अभियान का वह एक अनिवार्य अध्ययन था ... एक एंटेसेंप्टिक समाज के निर्माण की प्रक्रिया का ....। उस समय नक्सलियों द्वारा विशेष रूप से प्रयोग किए जाने वाले नारे थें - ''क्रान्ति जिन्दाबाद, ध्रुपद मजूमदार जिन्दाबाद, नक्सलबाड़ी लाल सलाम, क्रान्ति बन्दूक की नली से आती है।''

नक्सलबांड़ी ग्राम से उपजे इस आन्दोलन के मूल में गरीबी, बेरोजगारी, व्यवस्था के प्रति आक्रोश, कर्जा, हत आदि तत्व थे। इस आन्दोलन में महिलाओं की भी सक्रिय भूमिका रही। पुलिस को स्त्रियों पर सन्देह नहीं होता। पुलिस की इस कमज़ोरी का लाभ उठाते हुए स्त्रियाँ आन्दोलनकारियों की सहायता करती थीं। 'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास की पात्र बऊदी और 'महाबली का पतन' कहानी की जया 'लेकिन कॉमरेड कहानी की पारुल बाल नक्सलवादियों के रहने-खाने-पीने तथा उपचार आदि की व्यवस्था करती थी। इतना ही नहीं वह चोरी-छिपे हथियारों को भी ले जाती थीं। इस सन्दर्भ में बऊदी का कथन है - ''मैं अपनी ग्यारह महीने की बच्ची को कॉमरेड की गोद में दे देती और स्वयं अटैची में बच्चे के कपड़े और अटर-पटर के बीच पैम्पलेट को छिपा देती ... एक बार पिस्तौल तक इसी प्रकार छिपाकर ले गई थी।

नक्सलवादियो का उन्मूलन करना ही एकमात्र सरकारी नीति थी। जेल में भी जेल से भागने के आरोप में तो कभी नक्सलवादियों द्वारा जेल वार्डन पर आक्रमण के बहाने उन्हें अन्धा-धुन्ध मारा जाता था। 'लेकिए कॉमरेड' कहानी में गोपाली दा के सहायक कॉमरेड को जेल अधिकारी लेनिन के चित्र पर थूकने के लिए कहते हैं। वह थूकने से मना कर देता है और चित्र पर थूकने के बजाय जेल अधिकारी के मुख्य पर थूक देता है। उसके इस कार्य के लिए उसे दर्दनाक मौत दी गई। इस सन्दर्भ में गोपाली दा का कथन है - ''उसकी इस बहादुरी के चलते उसकी छाती पर पुलिस वालों ने अपने भारी बूटों को पटक-पटक कर उसे रौंद डाला था। बाद में उसके शव को विरुपित कर लिया गया ताकि कोई उसे पहचान न सके।

जेल में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उसकी हैसियत के अनुसार यातनाएँ दी जाती थी। जो जितना बड़ा नेता होता उसकी यातना उतनी ही बड़ी होती। नक्सलवादियों को पुलिस द्वारा विभिन्न सजाएँ दी जाती थीं :- ''थर्ड डिग्री टार्चर, सेवेन्थ डिग्री टार्चर डंडा बेरी, सिकनी, चरखी, हैदराबादी गोली आदि।'' 'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास में एक व्यक्ति जिसके दोनों बच्चों को नक्सलवादी होने के आरोप में उसके ही सामने गोली से मार दिया जाता है। इस घटना का उस पर गहरा प्रभाव पड़ता है और अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठता है। इन शब्दों में वह अपनी व्यथा व्यक्त करता है - ''साला आज तक बलात्कारियों हत्यारों, खूनियों और डेकैतों को इस प्रकार पशुओं की तरह लोहे की छड़ों से और नुकीले बूटों से रौंद-रौंद कर नहीं मारा गया। जिस प्रकार आज़ाद देश में इस पीढ़ी को रौंदा गया है।''

इस प्रकार मधु कांकरिया के साहित्य में ऐसी अनेकों घटनाओं को चित्रित किया गया है जिसमें पुलिस द्वारा निहत्थे लोगों को क्रूरतापूर्वक ढंग से मौत के घाट उतारा गया।

# लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और पंचायतीराज

**डॉ. रामेश्वर लाल मीणा**
**हिन्दी प्राध्यापक,**
**हिन्दी शिक्षण योजना,**
**राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, जम्मू**

स्थानीय स्वशासन, शासन की वह व्यवस्था है जिसमें निचले स्तर पर प्रशासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर उनकी समस्याओं को समझने तथा उनका हल करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार, स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था एक ओर तो लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण सुनिश्चित करती है तो दूसरी ओर आम जनता को स्वयं अपनी समस्याओं के हल करने का मार्ग प्रशस्त करती है।

महात्मा गांधी ग्राम स्वराज के पक्षधर थे भारत गांवों का देश है, अत: गाँवों के विकास के बिना भारत की प्रगति संभव नहीं है। गाँधी जी गाँवों को राजनीतिक व्यवस्था का केन्द्र बनाना चाहते थे ताकि निचले स्तर के लोगों को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शामिल किया जा सके। इसी कारण उन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी व मजबूत बनाने की वकालत की थी।

भारत में प्राचीन काल से ही पंचायतों का अस्तित्व रहा है जो सामाजिक-आर्थिक रूप से अत्यन्त शक्तिशाली भी रही है। पंचायतें स्थानीय मुद्दो और समस्याओं के निराकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती थीं। आधुनिक काल में 1882 में लार्ड रिपन ने पंचायतों को मान्यता प्रदान करने की दशा में प्रयास किया। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1919 के बाद अनेक प्रांतों में ग्राम पंचायतों का गठन किया गया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान गाँधी जी द्वारा आर्थिक-राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण की मांग उठायी जाती रही थी। उनका मानना था कि ग्राम पंचायतें सत्ता के विकेन्द्रीकरण का कारगर साधन हो सकती हैं। इस तरह पंचायतों को सहभागी लोकतंत्र स्थापित करने के साधन के रूप में देखा गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान में स्थानीय स्वशासन का विषय राज्यों को सौंप दिया गया। संविधान में पंचायतों को यथोचित महत्व नहीं मिला। देश के विभाजन के कारण संविधान का सुझाव मजबूत केंद्र की ओर रहा था।

पं. नेहरू खुद स्थानीय स्वशासन को राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए खतरा मानते थे। डॉ. भीमराव अम्बेडकर पंचायतों को जाति-पाति को बढ़ावा देने वाला तथा गुटबाजी का अड्डा मानते थे। अंतत: एक मध्यम मार्ग के तहत संविधान में नीति निर्देशक तत्वों के अधीन अनुच्छेद 40 में राज्यों का यह दायित्व निर्धारित किया गया कि वे पंचायतों का गठन करेंगे तथा उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेंगे। इसी क्रम में 2 अक्टुबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम को प्रारम्भ किया गया। लेकिन यह कार्यक्रम अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर सका। 1957 में गठित बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर सर्वप्रथम राजस्थान राज्य ने पंचायतीराज अधिनियम पारित किया। तत्कालीन प्रधानमत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान राज्य के नागौर जिले में 2 अक्टुबर 1957 को पंचायतीराज का शुभारम्भ किया। इसके बाद कई अन्य राज्यों में भी पंचायतीराज अधिनियम पारित किया गया। परंतु पंचायतों को यथोचित शक्तियां और अधिकार प्रदान नहीं की गई तथा समय के साथ पंचायतीराज संस्थाएं मृत प्राय हो गई।

**संविधान संशोधन:**

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के अंतर्गत स्थानीय स्तर पर सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित् करने तथा अपना विकास और न्याय स्वयं करने के उद्देश्य से 1992 में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक आधार प्रदान किया गया। भारतीय संविधान में भाग 9 तथा 9 क जोड़कर पंचायतीराज से संबंधित विभिन्न प्रावधान किए गए। संविधान में 11वीं तथा 12वीं अनुसूची जोड़कर क्रमश: पंचायतों और नगरपालिकाओं से संबंधित विषयों का उल्लेख किया गया। इसके अंतर्गत त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था की स्थापना की गई जिसमें ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषदों के गठन का प्रावधान किया गया। लेकिन 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों में पंचायत समिति का गठन न करने का विशेषाधिकार दिया गया। नागालैंड, मिजोरम तथा मेघालय राज्यों तथा दार्जिलिंग जिले के पर्वतीय क्षेत्रों को इससे बाहर रखा गया क्योंकि वहां

पहले से ही परम्परागत प्रणाली लागू थी।

**पंचायत**

संविधान के 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों के संबंध में प्रावधान किया गया।

**ग्राम सभा:**– प्रत्येक पंचायत में एक ग्राम सभा होगी जिसमें एक या एक से अधिक गांव शामिल हो सकते हैं। पंचायत के सभी स्टॉफ व्यस्क मतदाता ग्राम सभा के सदस्य होंगे। ग्राम सभा के कार्य और शक्तियों के निर्धारण का अधिकार राज्य विधानमंडल को दिया गया है।

**पंचायत :** संपूर्ण भारत में त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था-ग्राम स्तर, मध्यवर्ती स्तर जिला स्तर पर क्रमशः ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद का गठन किया जाएगा। पर 20 लाख से कम आबादी वाले राज्यों को मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत का गठन न करने की छूट होगी। इस प्रकार त्रिस्तरीय या स्तरीय पंचायती व्यवस्था का प्रावधान किया गया।

**चुनाव:**– सभी स्तर पर पंचायत के सदस्यों का निर्वाचन ग्राम सभा के सदस्यों द्वारा प्रत्यक्ष मतदान से किया जाएगा। ग्राम स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष के निर्वाचन की पद्धति राज्य सरकार नियत करेगी, जबकि मध्यवर्ती और जिला स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का निर्वाचन, अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से किया जाएगा। प्रत्येक नागरिक जो 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है, कतिपय शर्तो के अधीन पंचायत सदस्य चुने जाने की योग्यता रखता है। पंचायतों के निर्वाचन की नामावली तैयार करने तथा पंचायतों के निर्वाचन का निर्देशन और नियंत्रण करने के लिए राज्य निर्वाचन आयोग का गठन किया जाएगा।

**आरक्षण:**– प्रत्येक स्तर पर अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित होंगे। पंचायतों में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। आरक्षित सीटों का चयन चक्रीय (Rotation) पद्धति के अनुसार किया जाएगा।

**कार्यकाल:**– पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष का होगा, पर इन्हें समय से पूर्व भी विघटित किया जा सकता है। विघटन की स्थिति में पुनर्निर्वाचन 6 माह के अंदर करा लिया जाएगा।

**शक्तियां और अधिकार:**– राज्य विधान मंडल को यह अधिकार दिया गया है कि वे विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकेंगे, जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हो। ग्राम पंचायतों का ग्राम स्तर पर आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय से संबंधित अधिकार और शक्तियां सौंपी गई है। जैसे-कृषि विस्तार, मृदा संरक्षण, भूमि सुधार, पशुपालन, कुटीर उद्योग, मत्स्य पालन, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, परिवार कल्याण आदि। संविधान के 11वीं अनुसूची से संबंधित 29 विषयों का उल्लेख किया गया है।

**नगरपालिकाएं:**– भारत में नगरीय स्वायत्त शासन की स्थापना ब्रिटिश काल में ही की गई थी। सर्वप्रथम मद्रास शहर में नगर निगम की स्थापना के लिए कानून बनाए गए थे। 74वें संविधान संशोधन द्वारा भाग 9 क में नगरपालिकाओं से संबंधित प्रावधान किया गया है।

**नगरपालिकाओं का गठन:**– प्रत्येक राज्य में ग्रामीण से नगर में संक्रमणशील क्षेत्र के लिए नगर पंचायत, लघुत्तर नगर क्षेत्र के लिए नगर पालिका परिषद् तथा वृहत्तर नगरीय क्षेत्र के नगर निगम के गठन का प्रावधान किया गया है। प्रत्येक नगरपालिकाओं को वार्ड में विभाजित किया जाएगा तथा नगरपालिका के प्रतिनिधियों का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा प्रत्येक वार्ड से किया जाएगा। तीन लाख या अधिक जनसंख्या वाले नगरपालिकाओं में वार्ड समितियों का गठन किया जाएगा। जो एक या अधिक वार्डो से मिलकर बनेंगी। नगरपालिकाओं के संबंध में निर्वाचन, आरक्षण और कार्यकाल ठीक वैसे ही है जो पंचायतों के संबंध में निर्धारित किए गए हैं।

**शक्तियां और अधिकार:**– राज्य सभा मंडल, विधि द्वारा नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा, जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हो। संविधान की 12वीं अनुसूची में नगरपालिकाओं से संबधित 18 विषयों का उल्लेख किया गया है। जैसे नगर विकास तथा योजना, आर्थिक और सामाजिक विकास योजना, लोक स्वास्थ्य, निर्धनता उन्मूलन, सार्वजनिक

सुविधाएं, अग्निशमन सेवाएं, पेयजल इत्यादि ।

ग्राम पंचायतों और नगरपालिकाओं को स्वायत्तशासी इकाइयां बनाने के लिए निधियों की व्यवस्था किया जाना आवश्यक है। इसके लिए राज्य विधानमंडल विधि द्वारा, उन्हें कर लगाने तथा धन वसूलने के लिए प्राधिकृत कर सकती है। साथ ही प्रत्येक 5 वर्ष की समाप्ति पर वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है जो स्थानीय संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए वित्तीय सिफारिश करेगा।

**जिला योजना और महानगर योजना के लिए समिति:-**

74 वें संविधान संशोधन में प्रत्येक राज्य के लिए दो समितियों का गठन निर्धारित किया गया है।

(1) जिला स्तर पर जिला आयोजन समिति (अनुच्छेद 243 य, घ)

(2) महानगर स्तर पर महानगर आयोजन समिति (अनुच्छेद 243 य, ड़)

ये समितियां पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं का मूल्यांकन तथा विकास के लिए योजना प्रारूप तैयार करेंगी तथा उन योजनाओं को राज्य सरकार को प्रस्तावित करेंगी।

**स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं और चुनौतियां :-**

स्थानीय स्वशासन लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा प्रशासन में स्थानीय लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर सुदूर गाँवों तक विकास की प्रक्रिया का लाभ पहुंचाया जा सकता है। स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना का विकास करने के अलावा स्थानीय समस्याओं का बेहत्तर हल खोज पाना ही इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य रहा है। स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं इस प्रकार हैं :-

1. स्थानीय समस्यओं का निदान स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा बेहतर हित में किया जाना ।
2. लेगों की समस्याओं को समझने और उनके हल के लिए योजना बनाना ।
3. सुदूर गांवों तक में राजनीति समझ को परिपक्त करना तथा राजनीतिक चेतना का विकास करना।
4. अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं को राजनीतिक रूप से सक्रिय बनाना तथा उनका सर्वांगीण विकास सुनिश्चित् करना।
5. सत्ता में विकेन्द्रीकरण द्वारा अधिकाधिक लोगों की प्रशासन व विकास में भागीदारी सुनिश्चित् करना।

पर स्थानीय स्वशासन का यह प्रावधान चुनौतियो से भी भरा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरंभिक वर्षो में प्रारम्भ किए गए सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायतीराज व्यवस्था की असफलता स्थानीय स्वशासन की सफलता पर प्रश्न लगाते हैं। वर्तमान में इस व्यवस्था के समक्ष निम्नलिखित चुनौतियां खड़ी है:-

1. स्थानीय स्वशासन इकाइयों के पास वित्तीय संसाधनों की कमी है तथा उन्हें राज्यों के सहायता अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है।
2. निर्वाचित सदस्यों में सामंती मनोवृत्ति विकसित होने लगती है।
3. प्रशासन में धन तथा शक्ति के दुरूपयोग के भी साक्ष्य मिलते है।
4. स्थानीय स्वशासी संस्थाएं विकास का साधन न होकर राजनीतिक दलों के शक्ति परीक्षण का केन्द्र बन जाते हैं।
5. हालांकि इस व्यवस्था में महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है, पर महिलाएं आज भी शोषण से मुक्त नहीं हैं।

पंचायतीराज व्यवस्था की सफलता के लिए जनता का जागरूक होना आवश्यक है। साथ ही, निर्वाचित प्रतिनिधियों को भी अपना दायित्व समझना होगा तथा उन्हें धर्म, जाति और सम्प्रदाय से ऊपर उठकर विकास और समस्याओं के हल पर ध्वज देना होगा। स्पष्टत: पंचायती राज व्यवस्था संविधान के समाजवादी और कल्याणकारी राज्य की मूलभूत अवधारणाओं को साकार कर सकती है। आवश्यकता है उन्हें अधिक अधिकार दिए जाने तथा आम नागरिकों को जागरूक बनाए जाने की। पंचायतीराज व्यवस्थाएं आम नागरिक का जीवन स्तर सुधारने में कहां तक सफल होंगी। यह तो भविष्य ही बताएगा पर वर्तमान में उनसे अनेक अपेक्षाएं हैं।

# द्वादशी महाव्रत

**श्री कृष्ण निर्मल**
**उप शिक्षा निदेशक,**
**करमपुरा, नई दिल्ली**

द्वादशी हर व्यक्ति के लिए अनिवार्य दैनिक व्रत है। परन्तु कुछ व्यक्ति ही इस व्रत को करने में सफल हो पाते है। इस व्रत को करने से मानव, महामानव बनता है तथा अन्य लोगों के लिए आदर्श बनता है। निरन्तर प्रयास करने पर व्यक्ति आदर्श बन सकता है, पर विडम्बना यह है कि मनुष्य जानते हुए भी अज्ञानी बने रहते हैं। मानवेतर यौनियों में जो भी जीव-जन्तु निषर्गत: ज्ञानी होते हैं वे उस व्रत का नियमित पालन करते है। मानव के पास निर्णायक बुद्धि होती है, पर निर्णय लेने का प्रयास ही नहीं करता। परिणामत: उसे नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते है।

मानव निर्णायक बुद्धि के बल पर ही अन्य जीव जन्तुओं का उपयोग व प्रयोग अपनी इच्छानुसार करता है और जिन व्यक्तियों में निर्णायक बुद्धि का अभाव होता है वे बुद्धिमानों के द्वारा अपनी सेवाओं में लाये जाते हैं। पर ध्यान रहे कि अक्षय लोगों के साथ किसी भी व्यक्ति को छाल-प्रपंच द्वारा शोषण करने का अधिकार नहीं है। क्योंकि जगत का नियन्ता हर समय सब कुछ देख रहा होता है। इसलिए हमें दैनिक द्वादशी व्रत रखना चाहिए जिसका विधान निम्नवत है।

मानव शरीर पंच महाभूतों का संघात है। यथा पृथ्वी, जल, तेज आकाश तथा वायु । इन सब में पृथ्वी तत्व साकार होने के कारण इसकी स्थिति हमको सर्वप्रथम दिखाई देती है पर सब तत्वों की उपस्थिति जीवन के लिए अनिवार्य है। पंच महाभूतों के पंचायत में पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाणी, हाथ पैर गुदा लिंग) और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा) एक मन जो कि इन सबका संालन होता है तथा मन पर भी नियन्त्रण रखने वाली बुद्धि होती है। इस प्रकार इन सबका योग द्वादश होता है। इन सबको वश में रखने वाले व्रत को द्वादशीव्रत कहा जाता है। प्रत्येक इन्द्रियव्रत का विधान इस प्रकार है:-

1. वाणी के व्रत का विधान:- प्रतिदिन के शूभारम्भ से पूर्व हम चिन्तन करें कि आज हमें किसी भी प्राणी या व्यक्ति शाब्दिक हिंसा नहीं करेंगे। इस प्रतिज्ञा से हमारा वाणी व्यवहार सबके प्रति मधुर व सरल होगा। वाणी व्यवहार सांसारिक व्यवहार के लिए अत्यन्त विशेष है। वाणी व्यवहार की कला जिनके पास होती है वे सर्वप्रिय बन जाते हैं। परिवार व समाज में कुछ परम्परागत सम्बन्ध व रिश्ते होते हैं, उनका हमें अक्षरश: पालन करना चाहिए। इसके साथ ही इनके पालन में समय व अवस्था का भी ध्यान रखना चाहिए। वर्ग या जाति कोई भी मात्र ध्यान यह रखें कि अमुक स्त्री-पुरुष से परम्परागत हमारे सम्बन्ध या रिश्ते क्या हैं ? ध्यान रखें कि भाई का बहन के प्रति, बहन का भाई के प्रति, पुत्र-पुत्री का माता-पिता के प्रति, माता-पिता का पुत्र और पुत्री के प्रति चाचा का भतीजे के प्रति, भतीजे का चाचा के प्रति, नाती का दादा-दादी के प्रति और दादा-दादी का नाती इत्यादि के प्रति हमारे क्या सम्बन्ध हैं ? यही सम्बन्ध कालान्तर में धर्म बन जाते हैं ? ध्यान रहे धर्म कोई वस्तु विशेष नहीं है। धर्म संस्कारों का संगठन हैं। इस वाणीव्रत का परिचालन यह यदि प्रत्येक मानव करे तो सीमा की कृत्रिम रेखाएँ भी लुप्त हो जायेंगी।
2. **हाथ:**- मानव शरीर में हाथों का विशेष स्थान होता है। हाथों में रेखाएँ और पर्वत होते हैं, जो मानव के वर्तमान, भूत तथा भविष्य के इतिहास-भूगोल का परिचय देते हैं। अत: हमारे हाथ सर्वदा किसी असत्य व्यक्ति को अवलम्बन देने के लिए भी उठे। हमारे हाथों से किसी पुरुष की हानि न हो, इसके लिए हम सर्वदा सचेत रहें। इस व्रत का पालन करने के लिए प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में ही रूपरेखा तैयार करनी पड़ेगी। यदि हम ऐसा करने में सक्षम रहते हैं तो हमारे हाथों का व्रत सार्थक होगा।

3. **चरण :**– परमात्मा द्वारा प्रदत्त शरीर में चरणों का विशेष महत्व है। इनके विना मानव शरीर स्वतन्त्ररूप से गतिमान नहीं हो सकता। अत: हमें दैनिक व्रत लेकर सजग रहना चाहिए कि हमारे चरण कहीं कुपन्थ पर अग्रसर न हो जायें। यदि हमारे चरण शुभपन्थ की ओर अग्रसर होते हैं तो हम अपना तथा समाज का कल्याण कर सकेंगे। अत: जिन पुरुषों के चरण सदा सत्संग, देवालयों व तीर्थस्थानों के लिए ही गतिमान हुए हैं उन्होंने ही समाज व संसार में नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं तथा लोगों को नयी दिशा दी है। अत: इस तृतीयव्रत का हमें सदा निर्बाध रूप से पालन करना चाहिए।

4. **गुदा व लिंग:**– गुदा व लिंग मानवशरीर में अत्यन्त गोपनीय कर्मन्द्रियाँ हैं। पूर्ण वर्जित तीनों इन्द्रियों के व्रत पालन पर ही इन दोनों इन्द्रियों के व्रत का पालन अवस्थित है। ऐसा न करने पर समाज में शुभ या अशुभ परिणाम सामने आ रहे हैं और आते रहेंगे। अत: व्रत के परिपालन हेतु सदा सावधान रहें।

अब हम ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा) के विषय में विहंगम दृष्टिपात करते हैं। यथा–

5. **आँख:**– ज्ञानेन्द्रियों में आँख का विशेष स्थान है। विद्वान व सदाचारी पुरुष को चाहिए कि वह दैनिकव्रत में आँख का उपयोग यह मानकर करें कि शुभदर्शन ही मनुष्य को महान बनाता है। अशुभ दर्शन से मनुष्य पतित होकर मल, विक्षेप तथा आवरण से ग्रसित हो जाता है। परिणामस्वरूप पुरुष का मानवीय रूप दानवता में परिवर्तित हो जाता है जिसके कारण ही हमें दैनिक सामाजिक जीवन में दुष्परिणाम देखने को मिलते रहते हैं। अत: प्रतिदिन के शुभारम्भ से पूर्व हर व्यक्ति को सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वह दिन भर शुभ दृश्यों का ही दर्शन करेगा। मित्रों ! यह शुभ दर्शन ही मनुष्य को महान बनाता है।

6. **कान:**– ज्ञानेन्द्रियों में श्रवणेन्द्रिय का अनमोल स्थान है। व्यक्ति गीत-संगीत का आनन्द इस इन्द्रिय के अभाव में नहीं ले सकता। प्रत्येक प्राणी को प्यार भरे मधुर वचन सुनने की लालसा होती है। क्योंकि उसे मधुर शब्द सुनकर असीम आनन्द की अनुभूति होती है। आनन्द व सुख चाहने वाले मनुष्य को संक्षिप्त परिधि में उत्पन्न प्रत्येक ध्वनि तरंग सुनाई देती है। पर विद्वान निषिद्ध ध्वनि तरंगों पर ध्यान नहीं देते। परिणामत: उनको निरन्तर अभ्यास से अशुभ ध्वनियाँ कभी भी प्रभावित नहीं कर सकती। मित्रों ! उच्च आदर्शमय जीवन जीने के लिए इस महाव्रत का पारण नितान्त आवश्यक है।

7. **नाँक:**– दर्शन की भाषा में नाँक को ध्राणेन्द्री कहा जाता है। इसके द्वारा मनुष्य दुर्गन्ध-सुगन्ध का निर्णय करने में समर्थ हो पाता है। अत: दैनिक जीवन में इस इन्द्रियव्रत का विशेष महत्व है, परन्तु कदाचार के वशीभूत व्यक्ति जानता हुआ भी दुर्गन्ध युक्त पदार्थों का परित्याग नहीं कर पाता। कुछ ऐसे अपेय पदार्थ हैं जो मनुष्य नियम से ही रहा है पर उसे ध्यान नही है कि ये पदार्थ उसको ही पी रहे हैं। हे मनुष्य ! तुम मनुष्य हो; अत: इन्द्री के व्रत का दैनिक पारण करो।

8. **जीभ:**– ज्ञानेन्द्रियों में जीभ या जिह्वा का अन्य इन्द्रियों के समान ही विशेष महत्व है। जिह्वा दो कार्य करती है-शब्द व्यवहार का तथा भोजन को उदर में पहुँचाने का। इन दोनों ही कार्य करने में व्यक्ति को पूर्ण सावधान रहना चाहिए। शब्द व्यवहार में तनिक भी अनुशासन का पालन न किया गया तो सारी व्यवस्थाएं व्यवस्थित होने में तनिक भी देर नहीं लगती। कोयल और कौए में वाह्य समानता लगभग होने पर भी शब्द व्यवहार की पृथकता के कारण सम्मान और अपमान के पात्र बने हुए हैं और बने रहेंगे। जिह्वा दाँतों के संरक्षण में रहते हुए परोपकार तथा त्याग का कार्य करती है। जैसे भोजन के ग्रासों को दाँतों के नीचे चबाने के लिए धकेलना तथा लसलसा दृव्य बन जाने पर उदर में पहुँचा देना। यह जिह्वा की सबसे बड़ी त्यागमयी क्रिया है। अत: सुखमय जीवन व्यतीत करने की कामना पूर्ति के लिए जिह्वा का दैनिकव्रत अत्यन्त आवश्यक है।

9. **त्वचा:**– त्वचा को चर्म भी कहते हैं। यह शरीर का सुरक्षा कवच तथा स्पर्शज्ञान का महत्वपूर्ण साधन है। हमें त्वचा को सर्वदा स्नानादि से पवित्र रखना चाहिए। इसके अभाव में त्वचा का स्फुरण व संवेदनशीलता का गुण निष्क्रिय हो जाता है। स्वच्छ तथा स्वस्थ त्वचा आकर्षण का केन्द्र होती है। त्वचा ही मनुष्य या प्रत्येक प्राणी

के परिचय की परिचायक होती है। अत: यह इन्द्री भी पूर्व इन्द्रियों की भाँति पारण करने योग्य है।

10. **मन:**– मन शरीर में एक अन्तस्थ ज्ञानेन्द्री है जिसे सभी ज्ञानेन्द्रियों के विषयों के द्वारा सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। वस्तुस्थिति के अनुसार मन कर्मेन्द्रियों को कार्य करने व उनके समाधान हेतु आदेश देता है। मन की स्थिति अत्यन्त चंचल होती है जिससे स्थिति के तनिक सा अनुकूल-प्रतिकूल होने पर आन्दोलन हो जाता है। परिणामस्वरूप कर्मेन्द्रियों को अनैतिक व अधार्मिक कार्य करने हेतु विवश कर देता है; जिससे कोई भी स्थिति अव्यवस्थित व भयावह हो जाती है। अत: आदर्श व्यक्ति को मन की चंचलता पर प्रतिक्षण सजग रहना चाहिए। इस कार्य में तनिक सा प्रमाद जीवन के अस्तित्व को समाप्त कर देता है।

11. **बद्धि:**– ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य को सभी प्राणियों में बुद्धि तत्व के कारण ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसके बल पर ही वह सभी प्राणियों पर शासन करता है। इस तत्व को सूक्ष्मभेद से प्रज्ञा या मेधा भी कहा जाता है। मनुष्य का बुद्धितत्व जितना प्रबल होगा उसमें उतनी ही निर्णायक क्षमता अधिक होगी। प्रबुद्धपुरुष ही चंचल मन के आन्दोलन को अनुशासित रखने में सक्षम हो पाता है। पूर्ण अनुशासित मन ज्ञानेन्द्रियों की यथावत् सूचनाओं पर तुरन्त प्रतिक्रिया नहीं करता अपितु मननशील होकर मानव समाज में नया आदर्श प्रस्तुत करता है तथा समाज को नयी दिशा व गति प्रदान करता है। अधिसंख्या लोग उसके अनुयायी बन जाते हैं। बुद्धितत्व के अभाव में मनुष्य स्वच्छन्द व दिशाहीन हो जाता है और कर्मेन्द्रियों से ऐसे अकार्य कराता है कि समाज में व्यक्ति की मानवीय संज्ञा कलंकित हो जाती है। अत: बुद्धि को पवित्र रखने के लिए मनुष्य को सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए।

मित्रों! जीव, चौरासी लाख योंनियों में भोग भोगता हुआ मानव योनि प्राप्त करता है, ऐसा शास्त्रीयमत है और दूसरा मत यह भी है कि जीवन मानव योनि पाकर शुभ कर्म करता हुआ पुन: मानव योनि प्राप्त कर सकता है। अत: उक्त मन्तव्य पर चिन्तन करते हुए मनुष्य को पुन: मानवयोनि प्राप्त करने के लिए प्रतिक्षण एकादश इन्द्रियों पर बौद्धिक नियन्त्रण रखना चाहिए। बस! यही द्वादशीव्रत है। इस महाव्रत की साधना कठिन तो अवश्य है पर असाध्य नहीं है। ऐसा व्रती संसार का अनुपम अलंकार होगा।

# जिन्दगी

जिन्दगी कभी धूप है और कभी है छाया
जैसे किसी बच्चे के लिए हो ममता भरा साया
तूफान में है तिनके का सहारा ये जिन्दगी
डुबने के मातम से डराती है ये जिन्दगी।
जिन्दगी के सिर पर है एक आग का गोला
किसी को चाँद और किसी को सूरज
नजर है आया!
मूरझाते-खिलते फूलों सी है ये जिन्दगी
बहारों ने इसे कितना है लुभाया ।

हर पल रूकती ठहरती है ये जिन्दगी
आँख खुली तो एक सपना याद आया
हर एक मोड़ पर है बदलती ये जिन्दगी
हाय रे जिन्दगी तुने हम सबको कितना है रूलाया।
जिदगी एक अनमोल रत्न है।
मूर्ख है वह जिसने है इसे बेच खाया
पहेली सी उलझती-सुलझती है जिन्दगी
जिन्दगी क्या है आज तक कोई न समझ पाया।

**सुनीता आनंद**
**पी.एम.ई.प्रभाग**
**आई.आई.आई.एम, जम्मू**

# भारतीय समाज एवं स्त्री जीवन की गाथा

**भगवती देवी**

**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

वैदिक काल सभ्यता एवं संस्कृति के धरातल पर स्त्रियों के लिए चरमोन्नति का काल था। स्त्री जीवन गौरवमयी, उन्नत एवं परिष्कृत था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र दिशा, धर्म, साहित्य, कला, संस्कृति, नृत्य, गायन इत्यादि में हिस्सा लेने के लिए स्त्रियों को पुरुषों के समान सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वैवाहिक सम्बन्ध केवल शारीरिक मात्र ही नहीं, अपितु आध्यात्मिक भी थे। जीवन साथी चुनने के लिए स्त्री पूर्ण रूप से स्वतंत्र थीं। मैत्रेयी, धोषा, विश्ववारा इत्यादि विदूषियाँ मंत्र दृष्टा थीं। इन्होंने ऋचाओं की रचना भी की। स्त्रियाँ सैनिक क्षेत्र में परंगत थी। विश्वपाला ने युद्ध में भाग लिया था। अनार्यों की स्त्रियों की एक सेना का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इन उद्धरणों से स्पष्ट झलकता है कि इस काल में स्त्रियों के लिए परदे का कोई बन्धन न था। वह अपनी इच्छा से निर्णय ले सकती थीं।

वैदिक काल के उपरान्त स्त्रियों की स्थिति में निरन्तर गिरावट आती गई। रामायण तथा महाभारत काल में स्त्री सम्मान की पात्र थी। पतिसेवा एवं आज्ञापालन ही स्त्री का धर्म समझा जाता था। स्त्री की स्थिति का अनुमान रामायण काल में तो यहीं से लगाया जा सकता है जब राम द्वारा सामान्य व्यक्ति की आलोचना मात्र से धर्मपत्नी सीता को बनवास दे दिया जाता है। पिता द्वारा निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाला व्यक्ति ही कन्या का पिता हो सकता था, उदाहरणतया सीता का विवाह पिता की अनुमति द्वारा ही किया जाता है। स्त्री को एक तरफ घर की लक्ष्मी समझा जाता, वहीं दूसरी तरफ वस्तु भी माना जाता। महाभारत काल में युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को दांवों पर लगाना, स्त्री को वस्तु समझे जाने का परिचायक है। स्पष्ट होता है इस काल में पुरुष प्रधान समाज द्वारा स्त्री के अस्तित्व को कोई महत्व नहीं दिया गया। द्रौपदी के जीवन की त्रासदीपूर्ण घटना तत्कालीन समाज की सम्पूर्ण स्त्रियों की स्थिति की द्योतक है। इस काल में सहमरण की प्रथा का प्रचलन था, किन्तु वह अभी समाज में व्यापक रूप से नहीं मिलता था। सामान्य स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की ही थी।

स्मृतिकाल में स्त्री को दोयम दर्जे का माना गया। मनुस्मृति में मन ने 'यंत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर स्त्री को पूजनीय माना और साथ ही स्त्रियों के लिए संरक्षण का ऐसा मूलमन्त्र फैंका कि जिससे स्त्री आज तक नहीं उभर पायी और न ही पुरुष प्रधान समाज इसका अनुसरण करना छोड़ पाया। उदाहरण स्वरूप जब तक कन्या रहे तब तक पिता के संरक्षण में रहे। जब विवाह हो जाए तो वह पति के संरक्षण में रहे। जब वृद्धावस्था को प्राप्त हो तक उस पर पुत्र का संरक्षण रहे। स्त्री स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं है। इस काल में विधवाओं के लिए कड़े नियमों का निर्माण किया गया था। ''पति के मर जाने पर (जीवित रहने पर) पवित्र (सातिवक गुणयुक्त) पुष्प, कंद और फल (के आधार) से शरीर को क्षीण करे, व्यभिचार की भावना से दूसरे पुरुष का नाम भी न ले।'' पुरुष के लिए ऐसी स्थिति में कोई कड़ा नियम न था वह ''पहले मरी हुई स्त्री का दाहकर्म आदि अंत्येष्टि संस्कार करके गृहस्थाश्रम को चाहने वाला (सुपुत्र या अपुत्र) द्विजाति फिर विवाह करे अथवा श्रोतग्नि का आधान करें। ''... आयु के द्वितीय भाग को शास्त्रानुसार विवाह कर गृहस्थाश्रम में निवास करें।

जैन मतावलम्बियों ने स्त्री को मोक्ष प्राप्त करने में बाधक माना है स्त्री को काम वासना का साधन बताते हुए त्याजय मानते है। आचार्य शुभचन्द ने कहा कि ''स्त्री पुरुषों को वज्राग्नि की ज्वाला के समान संताप देने वाली है। क्रोध से फुंकार भरती सर्पिणी का आलिंगन करना श्रेष्ठ है; किन्तु स्त्री के कौतुल मात्र से भी आलिंगन करना उचित नहीं।'' पितृसत्तातमक दबाव तले दबी स्त्री ने बौद्ध काल में आकर थोड़ी राहत महसूस की। महात्मा बुद्ध ने संघ का निर्माण कर धर्म का द्वार विधवा, पतिता, वेश्या इत्यादि प्रताड़ित स्त्रियों के लिए खोल दिया। संघ में दिक्षित भिक्षुणियों ने जो गाथाएं लिखी वह थोरी-गाथा के नाम से प्रचलित है। इन गाथाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज की स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण को वाणी दी। महात्मा बुद्ध ने स्त्री उत्थान के लिए जो प्रयास किए वह भविष्य मं पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाए। स्पष्ट होता है कि स्त्री का शोषण पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता गया। पुरुष प्रधान समाज ने स्त्री पर पूर्ण रूप से अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया और स्त्री की स्थिति ऐसी बन गयी कि वह चारदिवारी में रहते हुए अपने अस्तित्व को भूलती गयी। वैदिक काल की स्वावलम्बी स्त्री यहाँ तक आते-आते कमज़ोर पड़ती गयी।

मध्यकाल की स्त्री के लिए पत्नोन्मुख का काल रहा। मुगलों के आक्रमण के कारण कन्याओं का अपहरण तथा क्रय-विक्रय होने लगा था। पर्दा प्रथा के चलते स्त्रियों के लिए शिक्षा ग्रहण करने के दरवाजे बन्द हो गए। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ घर क अन्दर थोड़ी बहुत शिक्षा ग्रहण कर लेती, किन्तु निम्न वर्ग की स्त्रियाँ शिक्षा शब्द से अनभिज्ञ थीं। शिक्षा के अभाव में लोगों का ध्यान अंधविश्वास की ओर बढ़ता गया। विधवा विवाह वर्जित होने के कारण विधवाओं को आर्थिक एवं शारीरिक स्तर पर अत्याचारों का सामना करना पड़ता। स्त्रियों को मात्र भोग की वस्तु समझा जाता । विलासता के कारण दरबारों में मनोरंजन के लिए संगीत व नृत्य की प्रधानता थी, इसी कारण यहाँ वेश्याओं की संख्या में वृद्धि होने लगी। ''मुगल बादशाहों की विलासिता की प्रवृत्ति के कारण वेश्यावृत्ति को भी बढ़ावा मिला। अकबर द्वारा बसाई गई शैतानपुरी इसका ज्वलन्त प्रमाण है। ''सामन्ती काल में देवदासी कुप्रथा का प्रचलन भी मिलता है। महन्तों की आड़ में देवदासियों का शारीरिक शोषण होता रहा। इन्हें वेश्याओं की पंक्ति में खड़े होने के लिए मजबूर होना पड़ता । मध्यकाल में स्त्री की आत्मोन्नति, आत्मनिर्णय के अधिकारों पर पूर्ण रूप पुरुष प्रधान समाज ने वर्चस्व स्थापित कर लिया। स्त्रियों के लिए तमाम मूल्यों का गठन कर उसे बेड़ियों में जकड़ दिया। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि स्त्री का अस्तित्व सामंती व्यवस्था का गुलाम बन चुका था। किन्तु मीराबाई जैसे स्त्री पात्रों ने सामन्ती व्यवस्था का प्रतिरोध कर आदर्श का रूप जरूर स्थापित किया।

19वीं शताब्दी से पूर्व स्त्री जीवन की दुर्बलता अपनी चरम सीमा पर थी। सती प्रथा, विधवा विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, अशिक्षा इत्यादि कुरीतियों का उग्र रूप मिलता था, इन कुरीतियों का कोई सकारात्मक समाधान निकालना असम्भव लगता था। स्त्री को पत्नोन्मुखी स्थिति से उभारने में राजा राममोहन राय, ईश्वर-चन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती इत्यादि ने सफल प्रयास किए । शिक्षा के स्तर पर स्त्रियों को शिक्षित किए जाने पर जोर दिया जाने लगा। सामाजिक क्षेत्र के अतिरिक्त स्त्रियों में राजनीतिक जागृति लाने के अनेक प्रयास किए । सावित्री डागा लिखती है कि श्रीमती ऐनी बेसेंट भी 1914 से नारियों में राजनीतिक जागृति फूँकने लगी थी। सन् 1917 ई. में श्रीमती बेसेंट के कांग्रेस के अध्यक्ष बनने से भारतीय शिक्षित नारियों में एक नई चेतना जागृत हुई। सरोजिनी नायडू तथा अम्मन बीबी भी इस काल में राष्ट्रीय आन्दोलन की अगली पंक्ति में आ डटी थीं। स्त्रियाँ राजनीतिक क्षेत्र ही नहीं अपितु साहित्यिक क्षेत्र में भी अपनी छाप छोड़ने लगीं थी। महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, सुमित्रा कुमारी सिन्हा का नाम आदर से लिया जा सकता है। चिकित्सालय, न्यायालय, विश्वविद्यालय इत्यादि कार्यक्षेत्रों में स्त्री ने अपनी सफलता का परचम लहराया। प्रतिभाओं की धनी स्त्रियों ने अपनी योग्यता से साबित कर दिखाया कि वह भी समाज में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। स्त्री उत्थान के लिए सरकार ने तलाक, दहेज बलात्कार, विवाह, सम्पत्ति उत्तराधिकार, समान वेतन इत्यादि अधिनियमों को पारित किया। सरकार द्वारा स्त्री उत्थान के लिए कई कानूनों का निर्माण तो किया है, किन्तु स्त्री की स्थिति में पूर्णत: सुधार नहीं हो पाया है। अभी भी हमारे समाज का बहुत बड़ा वर्ग स्त्री कानूनन अधिकारों से अनभिज्ञ है। स्त्रियों में पूर्णता जागरूकता नहीं आ पाई कि वह अपने प्रति हो रहे अत्याचारों के खिलाफ कानूनन कदम उठाए और यदि स्त्रियों का कुछ वर्ग अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाता है तो उन्हें भी बहरे और अंधे कानून से उचित न्याय प्राप्त नहीं हो पाता है।

वर्तमान समय में स्थिति ऐसी है कि स्त्री चाहे नौकरी करने वाली हो या घर की चारदिवारी में कैद हो, उन्हें असुरक्षा का भय निरन्तर घेरे रहता है। हमारा पितृसत्तात्मक समाज आज भी खुले दिल से स्त्री के सशक्त अस्तित्व को मान सम्मान नहीं दे पा रहा। इसमें कोई दो राय नहीं है कि कानून दृष्टि से स्त्री को पूर्ण समानता मिलती है, परन्तु सिद्धान्त एवं व्यवहारिक रूप में अभी भी ज़मीन और आसमान का अंतर है। आज स्त्रियाँ विमर्श के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए तो लड़ रही है, वरन् अपने अस्तित्व एवं मनुष्य को भी स्थापित कर रही है। स्त्री ने अपनी सफलता का परचम में कड़ा संघर्ष किया और अभी भी स्त्री का संघर्ष जारी है।

समाज में स्त्री की स्थिति में एक अद्‌भूत परिवर्तन भी आया है। सैद्धान्तिक रूप में स्त्री का स्थान किसी भी प्रकार कम नहीं है। आर्थिक दृष्टि से स्त्री स्वतन्त्र होने लगी है। वह पुरुष से अलग अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की कामना करने लगी है। आज के इस नये परिवेश में स्त्री की तमाम सुख आकांक्षाएँ जाग रही हैं विशेषत: मध्यवर्ग की नारी आज अपनी योग्यता एवं अधिकारों के उपयोग के लिए आतुर है स्त्री वितृसत्तात्मक मानसिकता के विपरीत अपनी एक अलग मानसिकता को स्थापित कर रही है।

अन्तत: अतीत से लेकर वर्तमान तक स्त्री को प्रत्येक क्षेत्र में कमतर होने का ही अहसास कराया गया। उसे शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर कमज़ोर माना। परन्तु स्त्री ने अपने जीवन की संघर्षमयी यात्रा में हार नहीं मानी। स्त्री ने वितृसत्तातमक मानसिकता को कड़ा जबाब दिया है। अतीत में स्त्री की जो दबी-कुचली स्थिति थी, वह वर्तमान में परिवर्तित होकर परिष्कृत हुई है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्त्री अपनी इस लम्बी लड़ाई में सकारात्मक पहलू उभारकर जायेगी।

# ''भूमंडलीकरण''-पूँजीवादी विकृतियों की उत्पादक

**संजीत सिंह,**
**एम.फिल, स्नातकोत्तर, हिन्दी विभाग,**
**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

यूँ तो भूमंडलीकरण। वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है, जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। किंतु 'भूमण्डलीकरण' का उद्भव वीसवीं सदी के अन्तिम दशक 1991 ई. में उस समय हुआ जब 'सोवियत संघ' का विघटन हो गया और दुनिया एक ध्रुवीय हो गई थी। तभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अमेरिका के नेतृत्व में दुनिया के खासतौर पर 'तीसरी दुनिया' के बाज़ार पर कब्जा जमाना शुरू किया तो इसे न्यायसंगत ठहराने के लिए भूमंडलीयकरण/वैश्वीकरण/उदारीकरण, जैसा आकर्षक नाम दिया गया। इन शब्दों से यह भ्रम पैदा होता है कि यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें अपने छोटे स्वार्थों से ऊपर उठ कर लोग सारे संसार के मंगलमय के लिए जुड़ जाएंगे। लेकिन भूमंडलीकरण का निहितार्थ इसके ठीक उल्टा है। इससे निकलने वाली ''सब जन हिताय, सब जन सुखाय' की ध्वनि के विपरीत यह व्यवस्था सारे संसार को कुछ सशक्त पूँजीवादी प्रतिष्ठानों-यानी बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके संकेद्रण के सबसे सबंल केन्द्र अमेरिका के हितों की रक्षा का माध्यम बनी हुई है। संसार को एक करने की इसकी दृष्टि पूरी तरह एक आयामी है। यह सिर्फ व्यापार के लिए दुनिया को एक करना चाहती है, बाकी सारी बातें आनुषंगिक है-यहाँ पर गांधी जी का वह कथन तर्कसंगत लगता है कि - ''संसार में सभी लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए तो काफी वस्तुएँ है लेकिन एक आदमी की लिप्सा के लिए वह सब भी यथेष्ठ नहीं इस बात की सच्चाई वैश्वीकरण के इस युग में साफ-साफ दिखायी देती है। औद्योगिक जगत में जो बात हर रोज़ सुर्खियों में रहती है वह है बहुराष्ट्रीय कंपनियों की हैसियत जो अरबों-खरबों डालर की है अनेक देशों की राष्ट्रीय आय से भी ज्यादा। फिर भी वे सन्तुष्ट नहीं है अन्य कंपनियों को निगल लेने पर भी और अधिक फैलने का इनका लोभ खत्म नहीं होता।

वैश्वीकरण की यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है। वैश्वीकरण का उपयोग अक्सर आर्थिक वैश्वीकरण के संदर्भ में किया जाता है अर्थात् व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफ.डी.आई.) , पूँजी-प्रवाह, प्रवास और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में एकीकरण। अत: भूँमण्डलीकरण से अभिप्राय है-उन्मुक्त बाज़ार एवं प्रतिस्पर्धा, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ समायोजन, राष्ट्रीय बाज़ारों का अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में परिवर्तन करना। एक देश की सीमा से बाहर अन्य देशों में वस्तुओं एवं सेवाओं का लेन-देन करने वाली अंतरराष्ट्रीय निगमों तथा बहुराष्ट्रीय नियमों के साथ देश के उद्योग की संबद्धता भूमंडलीकरण है। भारत के संदर्भ में भूमंडलीकरण का अर्थ है-'गुलामी का एक नया मंत्र' एक ऐसे मंत्र का पाठ जो आर्थिक तर्क के नाम पर नवउदारवादी अंधविश्वास का बीज बो रहा है। नवउदारवाद में तीन तरह की नीतियाँ सक्रिय रहती हैं - निजीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण की नीतिया। इस त्रिधारा को ही नवउदारवाद का आधार माना जाता है। यह त्रिधारा पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा करती है और आम आदमी के श्रम को चूसकर अपना हित साध रही है।

वर्तमान में भूमंडलीकरण का जो रूप हमारे समक्ष है उसे हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं :-

**1. पारंपरिक और छोटे व्यापारिक संस्थाओं का अस्तित्वहीन होना :-**

भूमंडलीकरण के इस दौर में जहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों का उत्तरोत्तर विकास हो जा रहा है, वहीं पारंपरिक और छोटे व्यापारिक संस्थान अस्तित्वहीन हो रहे हैं। आज जब स्वतंत्र व्यापार की बात होती है तो उसका एकमात्र अर्थ होता है सबसे सशक्त व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिए उन सारे क्षेत्रों को खोल देना जो अब तक इनकी पहुँच के बाहर रहे हैं। भूमंडलीकरण के नाम पर अब साम्राज्यवादी व्यवस्था और इसकी उपभोक्तावादी संस्कृति को संसार के उन हिस्सों पर लादने का प्रयास हो रहा है जहाँ अभी तक पारंपरिक या गैर-पूँजीवादी व्यवस्थाएं थी। भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें विश्व बाज़ारों के मध्य पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न होती है और व्यापार देश की सीमाओं में प्रतिबन्धित न रहकर विश्व व्यापार में निहित तुलनात्मक लागत-लाभ दशाओं का विदोहन की दिशा में अग्रसर होता है। व्यापार के अंतरराष्ट्रीय पैमाने के साथ-साथ विनिमय की गति को तेज़ करना जरूरी होता है। इससे नये संचार माध्यमों का बड़े पैमाने पर विकास होता है। तत्काल इंटरनेट से ई-कॉमर्स की और संक्रमण इसी प्रक्रिया का परिणाम है। हालाँकि इससे यह भ्रम पैदा होता है कि संसार के लोग जुड़ रहे हैं और संसार एक 'वैश्विक गाँव' (Global Village) बन गया है, जबकि वास्तव में इससे सिर्फ संसार का एक संपन्न वर्ग ही अपने व्यापारिक या व्यावसायिक हितों के लिए एक दूसरे से जुड़ता है।

**2. विभाजन तत्व के रूप में :-**

पूँजीवादी वर्ग जहाँ भी जाता है, वहाँ अनियोजित विकास ही करता है। इससे क्षेत्रीय विषमताएँ उभरती हैं और जहाँ भी इसका पैर पड़ता है, वहाँ सम्पन्न और विपन्नता के समूहों का विभाजन होता है। आज स्थिति यह है कि एक भूमंडली कार्पोरेट उद्यम ने सारी दुनिया को दो हिस्सों में बाँट दिया है। एक तरफ दुनिया का वह हिस्सा है जो भूमंडलीकरण हो चुका है और दूसरी तरफ वह जो इस प्रक्रिया से बाहर रह गया है। भूमंडलीकृत हिस्सा उतरोत्तर प्रौद्योगिक समाधानों वित्तीय सट्टेबाज़ियों, उसके भीतर अंतरराष्ट्रीय व्यापार, बैंकिंग, स्थानीय स्तर के भ्रष्टाचार और अपराधीकरण के बीच फूल-फल रहा है। दूसरी ओर बहुसंख्यक आम जनता, जिसके पास क्रय शक्ति का अभाव है और इसी के चलते जो बाज़ार का हिस्सा नहीं बन पा रही है, कूड़े के ढेर की तरह निरर्थक ही नहीं, वातावरण को गंदा करने वाली होने के नाते असह्य होती जा रही है। कार्पोरेट जगत, अवसर मिलने पर इन्हें समुद्र में फेंकने से भी नहीं हिचकेगा। प्रत्येक क्षेत्र और देश में नये संचार माध्यमों से संसार से जुड़े समूह अपने ही आस-पास के बहुसंख्यक वंचित से पूरी तरह कट जाते हैं। संसार का एक नया विभाजन सूचना-समृद्ध और सूचना से वंचितों के बीच का है। पूँजीपति वर्ग चाहता है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों व उपक्रमों को व्यवसायों से बाहर कर दिया जाए। गरीबों की दी गयी सरकारी छूटें और रियातें समाप्त की जाएं। कल्याणकारी राज्य एक ढकोसला है। देश पर सब्सीडीज़ का बोझ कम करना, रुपये का अवमूल्यन, बैंक की ब्याज-दर को घटाना, से सारा बड़े व्यवसाइयों के हित में हो रहा है और इनकी कीमत विपन्न वर्ग चुका रहा है।

**3. सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का विनाशक:-**

भूमंडलीकरण जैसे-जैसे अपने जाल को फैला रहा है वैसे ही यह हमारे सांस्कृतिक उवं नैतिक मूल्यों का भी विनाश कर रहा है। आज मनुष्य-मनुष्य न रहकर मात्र शरीर बन चुका है। उसकी संवेदना शून्य होती जा रही है। मनुष्य अपनी नैतिकता भूलकर व्यक्तिगत स्वार्थ में उलझा हुआ है। वह कोई भी काम तब तक नहीं करता जब तक उसमें उसे अपने लिए कुछ फायदा न दिखाई दे। इस वैश्विक योजना के कर्त्ता-धर्ता इसे संस्कृति का भूमंडलीकरण भी कहते हैं, अर्थात् यह भ्रम बनाया जा रहा है कि दुनिया की विभिन्न संस्कृतियों के बीच परस्पर संवाद बनाना इस योजना का लक्ष्य है निश्चित ही यह बड़ी सकारात्मक योजना होती अगर इसके मूल में सचमुच यही नीयत होती, पर नीयत यह है कि

एक बड़ा-प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक समुदाय दुनिया की छोटी-छोटी संस्कृतियों को आत्मसात कर लेगा। भूमंडलीकरण की संस्कृति का यही निहितार्थ हैं। इस समय बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कारोबार पूँजी की विकरालता के कारण राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़कर दुनिया में फैल रहा है और वह फैल कर अपना-खेल-खेलने के लिए सारी परंपरागत सीमाओं, बँधनों, मूल्यों, नियमों, कानूनों, मर्यादाओं को तोड़ रहा है।

वैश्वीकरण के बहाने हमारी उदात्त सांस्कृतिक विविधता की विरासत को खत्म करने की साजिश अमेरिकी साम्राज्यवाद कर रहा है। हमारी भाषाओं, हमारी जीवन-पद्धति और खानपान पर भी इसका सीधा और बुरा प्रभाव पड़ना शुरू हो चुका है। अपराधों में वृद्धि, मनोरंजन के व्यापार में शो-बिज़नेस के साथ-साथ मुक्त यौनाचार, उद्दाम-संगीत और अश्लील-साहित्य का हमारे यहाँ भी उद्योग बन चुका है। दूर-दराज़ के उन क्षेत्रों में जहाँ लोगों को साफ पेय-जल या सड़कें व अन्य मौलिक सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हैं, दूरदर्शन (टीवी) की पहुँच के कारण लोग काल्पनिक दुनिया व यथार्थ में अंतर करना भूल चुके हैं।

आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सिद्धान्तकार और विचारक हमें समझ रहे हैं कि राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता पुरानी चीज़ हो चुकी है। क्षेत्रीय स्वायतता और भाषा के आधार पर संस्कृति की पहचान करना पिछड़ापन है। अपनी राष्ट्रीयता, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति के बारे में सोचना विकास की सहज गति को अवरूद्ध करना है।

**4. लोकतंत्र या जनतंत्र का विरोधी:-**

भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा रहा ह जिसके आगे राष्ट्रीय जनतांत्रिक सरकारें जनहित के लिए कोई कदम उठाने में असमर्थ हो जाती हैं। वे अंतरराष्ट्रीय बाजार के नियमों और शर्तों में इस कदर बंध जाती हैं कि अपनी मर्जी से कोई भी कार्य न किया जाए। भूमंडलीकरण के पैरोकारों की मान्यता है कि उदारतावादी लोकतंत्र ही एकमात्र शासकीय रूप है, जिसके तहत सर्वव्यापी हो चुके आधुनिक राज्य का कामकाज ठीक से चलाया जा सकता है। उनका दावा है कि लोकतंत्र का केवल यही रूप (साम्राज्य) आज दुनिया के विभिन्न समाजों में तेजी से घटित हो रहे आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की ताकतों का व्यवस्थित माध्यम बन सकता है।

**5. मीडिया-पूँजीपतियों की कठपुतली:-**

भूमंडलीकरण की इस परिघटना को आकार देने में संचार क्रांति की प्रमुख भूमिका है। मीडिया का नैतिक धर्म जहाँ स्वतंत्र और निष्पक्ष कार्य करने का है, यही आज मीडिया के सारे साधन एक विशिष्ट पूँजीपति वर्ग और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में हैं और उन्हीं के लिए हैं। इसीलिए मीडिया भूमंडलीकरण को महिमामंडित करने में लगी हुई है, जिससे उसके स्तर में निरंतर गिरावट आती जा रही है। आज मीडिया-चाहे वह प्रिन्ट मीडिया है या इलैक्ट्रॉनिक मीडिया-पूँजीपतियों के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई है।

अन्ततः हम कह सकते है। कि वर्तमान समय में भूमंडलीकरण के प्रभाव के कारण पश्चिमी संस्कृति का ऐसा वर्चस्व छाया है, मानो सभी को उसी से तालमेल बिठाना है। भूमंडलीकरण के इस युग में बड़ी तेजी से जो सबसे महत्वपूर्ण चीज़े पीछे रही है वे हैं - संवेदनशील मनुष्यता, नैतिकता और सामाजिकता। भूमंडलीकरण के माध्यम से अमेरीकी समाज में पाई जाने वाले चरम पूँजीवादी विकृतियाँ एक जीवन-मूल्य बनकर भारत में आ रहीं हैं, जिनमें-पूँजी की लूट-खसोट भोग एवं निर्द्वन्द्व व्यक्तिगत के सिवा और कुछ भी नहीं है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि भूमंडलीकरण की सर्वग्रासी दैत्याकार परिघटना के विरोध में उस जनगण को जाग्रत करना जो संपत्ति के इस अकल्पनीय केन्द्रीकरण से निर्धन होकर न्यूनतम मानवीय जीवन से भी वंचित हो रहा है।

# स्टिकर : संवदेना और सरोकार

**नरेश कुमार**
**शोध-छात्र,**
**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

मनीषा कुलश्रेष्ठ हिन्दी कथा साहित्य में आज एक चर्चित नाम हैं। जहाँ इन्होंने आधा दर्जन के करीब कहानी संग्रह - 'कठपुतलियाँ', 'कुछ भी तो रूमानी नहीं', 'केयर ऑफ स्वागत घाटी', 'गन्धर्व गाथा', 'बोनी होती परछाई', 'अनामा' आदि लिखकर हिन्दी कहानी को समृद्ध किया है वहीं 'शिगाफ', 'शालभंजिका', और 'पंचकन्या' आदि 'उपन्यास भी लिखे हैं। इनकी लेखनी समसामयिक परिप्रेक्ष्य को अपने में समाये हुए हैं। 'कुछ भी तो रूमानी नहीं' में हमें उनकी 'स्टिकर' कहानी भी पढ़ने को मिलती है, जिसका कथानक आज की उपभोक्तावादी बाजारवादी संस्कृति का भंड़ाफोड़ करता है। मानव की संवेदनाएँ, उसकी सहजता, उसकी स्वभाविकता किस प्रकार इस संस्कृति की बली चढ़ रही हैं, कहानीकार ने इसका यथार्थ अंकन किया है। आज बाजार हम पर इतना हावी हो गया है कि उसने हमें एक मानव से प्रोडक्ट में कंवर्ट कर दिया है। आदमी आज एक चलता-फिरता इश्तिहार है और गंजे को कंगी बेचने वाली बाज़ारवादी शिक्षा प्रणाली मानव को उसकी जनतांत्रित मूल्यों से दूर ले जा रही है। जिसके चलते आज व्यक्ति का नैतिक पतन तो हो ही रहा है। बाज़ारवादी-उपभोक्तावादी संस्कृति के 'ऐंगर मैनेजमैंट' और 'इमोशनल कोशैन्ट' जैसे नुस्खों को ढोते-ढोते एक वेटर कैसे एक 'स्टिकर' में तबदील हो गया। इसका वास्तविक चित्रण हमें मनीषा की 'स्टिकर' कहानी में मिलता है। 'मुस्कान के साथ पिज़ा के साथ मुस्कान 'सर्ब' करते हैं। यह केवल किसी रेस्तरां का स्लोगन मात्र नहीं है, यह आज की इस पूँजीवदी मुनाफाखोर बाज़ारी संस्कृति का मूल मंत्र भी है और इस कहानी का बीज सूत्र भी।

कहानी का नायक एक वेटर है। अपने काम में उतरने से पहले वह उपरोक्त स्लोगन को अवचेतन में दोहराकर एक नपी तुली मुस्कान अपने चेहरे पर धर लेता है। कहानी की यह पंक्तियां देखें ''मुस्कान के साथ पिज़ा नहीं, पिज़ा के साथ मुस्कान सर्व करते हैं।' इस स्लोगन को अवचेतन में दोहराते हुए उसने अपना चेहरा काउंटर के पास लगे वाशबेसिन के आईने में देखा और चेहरे पर जमती एक नपी-तुली खुशगवार सी मुस्कान चुन ली।'' और इस ओढ़ी हुई मुस्कान में उसको इतने सारे काम करने हैं।

''कितना सारा काम होता है एक ही टेबल का। कस्टमर का स्वागत। बुकिंग लेना। कस्टमर को बैठाना। साँस लाना। खाने और ड्रिंक के आर्डर लेना। आर्डर सर्व करना। पैसे संभालना। सीफिल करना, टेबल दुबारा जमाना। कटलरी साफ करना और गंद और उलटियाँ साफ करना भी मेरे काम हिस्सा है।''

इतने सारे काम के साथ अगर कभी किसी बद्तमीज़ टोली से पाला पड़ जाए जैसाकि कहानी नायक का पड़ जाता है। यह ऐसे अवारा लड़कों की टोली है जो बिना गाली के बात नहीं करते, नागवार तरीके से उससे टेबल साफ करवाते, आठ-आठ बार अपना आर्डर बदलते हैं और हम सब बद्तमीजी माहौल को झेलते हुए अगर उस वेटर को दूसरा टेबल भी संभालना पड़ जाए तो चेहरे की मुसकान जो उसने यूनिफार्म पे चिपकी नाम पटिका की तरह अपने चेहरे पर चेपी हुई है उसका गायब होना स्वभाविक ही है। भले ही ऐसी स्थिति को संभालने के लिए उसको कई गुर सिखाए गए हो, ऐंगर मैनेजमेंट, इमोशनल कोशेन्ट। ऐसी परिस्थिति में गलती होना भी स्वभाविक ही है। इस तनाव के चलते इस वेटर से भी गलती हो जाती है।'' वह मुस्कुराता हुआ एक साथ पिज़ा की दो प्लेट लेकर टेबल पर झुका ..... मगर उसके सधे हाथों को आज यह क्या हुआ ? आगे वाली प्लेट खिसक कर पुरूष की गोद में जा गिरी.....''

अब वह दोनों से पेंट साफ करे, चाहे चार-चार बार सॉरी बोले, इस गलती का खमियाज़ा तो उसको भुगतना ही पड़ेगा। यह खमियाज़ा कस्टमर का गुस्सा और गलतियों तक ही सीमित नहीं है रेस्तरां मालिक भी उसकी इस गलती का उससे हरज़ाना भरेगा। उसकी गलती एक सहज गलती मानकर माफ नहीं की जाएगी क्योंकि कस्टमर की जिन्दगी में उसकी एक सर्वर से ज्यादा अहमीयत नहीं है और रेस्तरां व्यवस्था के लिए वह मात्र एक नौकर। यह पीड़ा इसी एक वेटर की नहीं है यह पीड़ा हर एक वेटर की है चाहे वो किसी भी रेस्तरां में काम करने वाला क्यूँ न हो। उसे एक सर्वर और नौकर ही माना जाता है। यहीं से कहानी एक व्यापक सरोकार ले लेती है। इस उपभोक्तावादी सभ्यता में उपभोक्ता को हर हाल में खुश रखने के लिए एक वेटर या सर्वर को जिस पीड़ा और छटपटाहट से गुज़रना पड़ता है,

मनीषा जी ने उसको बड़ी मार्मिक और यथार्थपरक अभिव्यक्ति प्रदान की है। एक वेटर या सर्वर की पीड़ा यह है कि अगर कोई कस्टमर उसके साथ बद्तमीजी करता है तो उसके लिए कोई जिम्मेदार नहीं है। रेस्तरां व्यवस्था के पास भी इसके लिए कोई प्रावधान नहीं है किन्तु वेटर की वजह से अगर कहीं गलती से भी कोई असुविधा अगर कस्टमर को हो जाती है तो उसके लिए लाल निशान का प्रावधान जरूर है। वह दोनों तरफ शोषण का शिकार हो रहा है। एक तरफ बदतमीजी झेलनी पड़ रही है, दूसरी तरफ लाल निशान । इन दोनों के चलते ऊपर से हर हाल में खुशग़वार दिखने का निर्देश, हाथ में गर्म प्लेट पकड़े हुए भी मुस्कुराओं। रेस्तरां के असिस्टेन्ट मैनेजर के यह संवाद देखें- ''देखो उन्होंने फीड़बैक फार्म में क्या भरा है। ..... तुम मुस्कुरा नहीं रहे थे ? ..... हर हाल में खुशग़वार दिखना ही तुम्हारी नौकरी का हिस्सा है। ऐसी खुशग़वारी जिसका अंदाजा लगाना मुश्किल हो कि यह सच की है या ओढ़ी हुई।''

कहानी के एक अन्य पात्र हनीफ भाई से आप बीती घटना इस संवेदन को और अधिक बल प्रदान करती है। जिसमें वह रेस्तरां में आए एक प्रेमी जोड़ी की बातें सुनकर मुस्कुरा दिया था और बदले में प्रेमी युवक ने उसे गले से पकड़ लिया था कि तुम मेरी प्रेमिका को देखकर मुस्कुरा रहे हो और इस दौरान वेटर की नौकरी की त्रासदी को बयां करते हनीफ भाई के शब्द देखें- ''भाई जान मुस्कुरा कर बात करना, मेरी नौकरी का हिस्सा है ..... फिर भी आप कहते हैं तो मैं इनमें माफी मांग लेता हूँ क्योंकि बिना गलती के माफी माँगना भी हमारी नौकरी की मज़बूरी है।''

न चाहते हुए भी मुस्कुराना और बिना गलती के माफी मांगना जब नौकरी की अहम शर्त बन गया हो तो फिर जिन्दगी नहीं विडम्बना बन कर रह जाती है। एक पाठक भी कहानी पढ़ने के उपरान्त उन सवालों से टकराए बिना नहीं रह पाता जिन सवालों से कहानी नायक टकरा रहा है। यह सवाल हैं- क्या हर बार 'ऑन टाईम' या 'एक्यूरेट' होना संभव है ? क्या हमें गलती करने का अधिकार नहीं है ?

कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से देखें तो नौ पृष्ठों की इस कहानी का तथ्य एक दम गुंथा हुआ है। परिस्थिति एवं पात्र अनुकूल भाषा कहानी को और मजबूत बनाती है और पाठक को एकदम अपने में बांध लेती है। कहानी के आरम्भ में ही रेस्तरां के भीतर शाम की उठापटक का बिम्ब पाठक की आँखों में छा जाता है। मनीषा जी द्वारा कहानी नायक को कोई नाम न देकर 'उस', 'वह' आदि सर्वनामों से काम लेकर पूरे वेटर वर्ग का प्रतिनिधित्व किया गया है, जिसकी वज़ह से कहानी किसी व्यक्ति विशेष की घटना मात्र न रहकर व्यापक सरोकार ग्रहण करती है। दूसरी बात यह भी महत्वपूर्ण है कि अवारा लड़कों की गालियों के स्थान रिक्त छोड़कर बाद में जो भरपाई की गई है वह पाठक को उस गाली की व्यंजना तक पहुँचा देती है। एक प्रयोग देखें - ''वेटर'' कहाँ मर गया ..... अपनी.....'' शोर के बीच उभरे इस अधूरे वाक्य के रिक्त स्थान के जाले में अश्लील गाली मकड़ी की तरह बैठी थी ....''

अगर कहानी के शीर्षक आर अंत पर बात करें तो कह सकते है। कि आरम्भ से अंत तक नायक को ओढ़ी मुस्कान एक स्टीकर का रूपक ग्रहण कर लेती है और पाठक को संवेदनात्मक धरातल पर भी बराबर झकझोरती है। एक बिम्ब की तरह पाठक के जहन में बनी रहती है, जो कि कहानी के शीर्षक 'स्टिकर' को एकदम सटीक और सार्थक बनाती है। कहानी का अंत भले की मनीष जी ने एक 'पोज़ीटिव वे' में यह दिखा कर किया हो कि, ''इंसान हारने के लिए बना ही नहीं। कैसे हार जाए, जब वह करोड़ों शुक्राणुओं की रेस में जीत कर पैदा हो चुका है तो बाद में क्यों कर हारे। पहली लड़ाई सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट की लड़ाई तो वही थी।'' लेकिन कहानी नायक अपनी सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट की लड़ाई हार चुका है। इसका प्रमाण हमें इस वाक्य में देखने को मिलता है।'' उस दिन वह वृंदा को रेस्तरां लाएगा और टेबल के उस पार नहीं इस पार बैठेगा। मुस्कुराएगा भी जरूर ..... असली मुस्कुराहट ..... न कि स्टिकर।'' यह जो टेबल के उस पार नहीं टेबल के इस पार'' का भाव ही उसकी हार का प्रतीक है। इस भाव से यह सिद्ध होता है कि उसको अपना कार्य हीन लगता है। वह इंफोरियरटी कॉम्पलैक्स का शिकार है। उसमें टेवल के इस पार को लेकर होता बोध गहरा गया और अपने कार्य को लेकर होता बोध का शिकार होना और अभिमान्य वर्ग के संस्कार को ओढ़ने की प्रवृत्ति का पैदा होना अपने आप में हार का ही प्रतीक है।

अंतत: यह कह सकते हैं कि कहानी को पढ़ते हुए पाठक के हृदय में वेटर वर्ग के लिए- जो संवदेना जागृत होती है, कहानी के अंत में कहानी नायक उसके विपरीत खड़ा नज़र आता है। आरम्भ से कहानी जो वर्ग चेतना पाठक के मनमस्तिष्क में पैदा करती है अंत में वह कहानी नायक के व्यक्तिगत सुख में तबदील हो जाती है और इससे संवेदना और सरोकार भी सिमट जाते हैं।

# स्वयं प्रकाश के 'पार्टीशन' कहानी संग्रह में साम्प्रदायिका के दुष्परिणाम

**सुनील मंगोत्रा**
**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

एक धर्म से सम्बन्धित समुदाय द्वारा दूसरे धर्म से सम्बन्धित समुदाय के अहित की कामना करना और धार्मिक विश्वासों या अन्य कारणों से उनके प्रति धृणा या हिंसा की भावना का प्रदर्शन ही 'साम्प्रदायिकता' है। साम्प्रदायिकता में दूसरे धर्मो तथा जीवन दर्शनों की मान्यताओं के प्रति असहिष्णुता की भावना प्रमुख होती है। साम्प्रदायिकता का विष इतना तीव्र एवं प्रभावशाली होता है कि आम आदमी मानव धर्म को भूल स्वार्थी तत्वों के चंगुल में सहजता से फँस जाता है। प्रत्येक सम्प्रदायक यही विश्वास करने लगता है कि धर्म का सत्य स्वरूप उसी के पास हैं और शेष सभी संप्रदाय उससे वंचित हैं।

साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम स्वरूप समाज में प्राण हानि, तलाव, स्त्री-शोषण, लूट-मार, संवेदनहीनता आदि घटनाएं देखने को मिलती है। जिसका उल्लेख लेखक स्वयं प्रकाश ने अपनी 'नयी यात्रा', 'आलेख', 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा', कहानियों के माध्यम से किया है।

कोई भी साम्प्रदायिक दंगा ऐसा नहीं होता, जिसमें प्राण हानि न हो। धर्म की आड़ में होने वाले साम्प्रदायिक ढंगों की चपेट में अधिकार गरीब लोग तथा बच्चे ही आते हैं। इस तथ्य का चित्रण 'नयी यात्रा' कहानी की मुख्य पात्र अमला सेन के शब्दों में इस प्रकार हुआ है : ''यहाँ दंगे हुए थे। जरा सी बात पर हिन्दू-मुसलमानों में चाकू-छुरे चल गये। भीड़ का भी कोई विवेक होता है कहीं ? ऐसी ही एक रात थी जबकि मेरे मुसलमान माली पर उन्होंने लाठियाँ बरसायी।'' केवल इतना ही नहीं हिन्दू-मुस्लिम दंगों में अमला सेन की गोद भी सूनी हो गई ।

साम्प्रदायिक दंगों में दोनों (हिन्दू-मुस्लिक) धर्मो के व्यक्तियों को पीड़ा और तनाव झेलना पड़ता है। कहानी में अमला सेन द्वारा कहे गए वाक्य इस तथ्य का साक्ष्य प्रस्तुत करते है, ''जिन हिन्दुओं ने गफूर को मारा वे कह रहे थे, ये मुसलमान लाश है और जिन मुसलमानों ने मेरे बच्चों को मारा वे कह रहे थे ये हिन्दू लाशे हैं।''

साम्प्रदायिक दंगों में स्त्रियों को काफी त्रासदी झेलनी पड़ती है। दंगों के दौरान स्त्री को मात्र भोग की वस्तु समझा जाता है। जिसका उदाहरण 'आलेख' कहानी के माध्यम से मिलता है। ''दूसरे दिन पता चला कि केदसूरगंज के गुंडे रात को सलमा को पकड़ के ले गए। वे आपे से बाहर हो गए थे। ..... चक्कर के बगीचे का बन्द कुआँ, जिसमें दसियों राष्ट्र प्रेमियो ने सलमा को भोगकर फैंक दिया था।''

कोई भी साम्प्रदायिक दंगा ऐसा नहीं होता है जिसमें लूट-मार न हो। अधिकतर दंगे लूटमार के उद्देश्य से ही करवाए जाते हैं। इस कहानी में जनेश्वरबाबू का कहना है कि देश-विभाजन के बाद मुसलमान घर-गाँव-सम्पत्ति छोड़कर चले गये तो, ''हिन्दुओं के घर लूट का माल जमा होने लगा था।''

साम्प्रदायिक भावना के चलते लोगों में संवेदनहीनता का अभाव हो गया है इस साम्प्रदायिक भावना के कारण मनुष्य दूसरे के प्रति अमानवीय व्यवहार करने से पहले एक बार भी नहीं सोचता है। 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा ?' कहानी में हिन्दुओं द्वारा एक सरदार के साथ किए गए इसी अमानवीय व्यवहार का उल्लेख किया गया है । ''भीड़ में से तरह-तरह की आवाजें उठ रही थी 'नंगा कर दे साले को, मारो साले को, छोड़ना मत गद्दार को... '' की चीख पुकार मची हुई थी और इतने लोगों के सामने पड़ा वह अकेला निहत्था, बूढ़ा और बीमार आदमी फटी आवाज़ में 'आ आ ऽ' चिल्ला रहा था।'' अपने धर्म के प्रति कट्टरता रखने वाली भीड़ यह नहीं सोच रही कि जिसे वे अपनी घृणा का शिकार बना रहे है। वास्तव में उसका कोई दोष नहीं है। वह भी उनकी भांति एक मनुष्य है। अत: कहा जाए तो साम्प्रदायिक घृणा के चलते व्यक्ति मानव धर्म का पालन न कर संवेदनहीन होकर केवल अपने धार्मिक सम्प्रदाय की कट्टरता को बढ़ा रहे हैं, इसलिए आज आवश्यकता है कि हम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा न देकर साम्प्रदायिक सद्भाव को अपनाए क्योंकि कोई भी देश सही मायने में प्रगति नहीं कर सकता अगर उसके नागरिकों में साम्प्रदायिक वैमनस्य पनपता रहेगा। देश की प्रगति के लिए आवश्यक है कि सभी सम्प्रदायों में शांति की भावना बनी रहे।

# लोक कलाओं का विलुप्तिकरण 'स्वांग' कहानी के संदर्भ में

**वन्दना शर्मा**
**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

आज का युवा पीढ़ी की रचनाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ हिन्दी के महत्वपूर्ण कहानिकारों में विशेष स्थान रखती है। इन्होंने छः कहानी-संग्रह लिखें हैं। इनकी प्रत्येक कहानी मर्मस्पर्शी एवं हृदयग्राही है। लेखिका ने प्रत्येक कहानी में सर्वथा नये विषयों को छूने और उनकी तह तक जाने की कोशिश की है। इनकी कहानियों की विशिष्टता यह भी है कि इन कहानियों की विषय वस्तु कोरी कल्पना पर आधारित न होकर सामाजिक परिवेश के यथार्थ पर आधारित है। इसी कारण इन कहानियों को पढ़ते हुए पाठक को लगता है कि ये सब उसके आप-पास ही घटित हो रहा है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'स्वांग' कहानी 'कठपुतलियां' कहानी-संग्रह में संकलित है। इस कहानी में न केवल कलाकार की अपितु आधुनिक सन्दर्भो में लोक कला की दुर्दशा का चित्रण किया गया है। लेखिका ने कहानी में गफ्फार खाँ नामक कलाकार के माध्यम से बहुरूपिया कला के विलुप्तिकरण की चिंता को पाठकों के समक्ष लाया है।

लोक की परिकल्पना है लोक कलाएँ। ये कलाएँ जीवन को सौन्दर्य प्रदान करती हैं। कला विहीन मनुष्य को पूंछ और सींग-विहीन जानवर कहा गया है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक कला अवश्य होती है, जिसके सहारे वह जीवन को सरस बनाता है। आज के भौतिकवादी युग में लोग इतने व्यस्त हैं कि इन कलाओं के प्रति उनका ध्यान नही नहीं जाता। आज सामाजिक मान्यताओं, मानवीय संवदेनाओं तथा मूल्यों का विघटन तेज़ी से हो रहा है। वर्तमान समय में मनुष्य अपनी उन्नति के लिए दौड़ रहा है। इस अन्धी दौड़ में समाजिक मूल्य खत्म होते जा रहे हैं। उसी का परिणाम है, लोककलाओं का विलुप्तिकरण। ये कलाएँ उत्तर भारत के अधिकांश राज्यों में कभी समाज का महत्वपूर्ण अंश हुआ करती थी। जो लोगों के मनोरंजन और कला के जरिए जीविकोपर्जन करने वालों के लिए आय का साधन थी। परन्तु बदलते समय के साथ इनके जीविकोपर्जन बन्द होता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक सहायता हेतु सरकारी कार्यालयों की खाक छाननी पड़ रही है। वहाँ पर भी निराशा ही उनके हाथ लगती है।

लेखिका ने विवेच्य कहानी में उपरोक्त स्थिति का वर्णन गफ्फार खाँ के माध्यम से किया है। गफ्फार के भीतर भी एक कला है, बहुरूपिया कला जिसके माध्यम से वह लोगों के मनोरंजन के साथ-साथ एकता का संदेश भी पहुँचाता है। अपनी कला के प्रति वह इतने समर्पित है कि कैंसर जैसे रोग से ग्रस्त होने के उपरान्त भी लोगों को रंजित करते हैं। स्वयं वह आर्थिक विपन्नता को झेल रहे हैं, जिसके चलते इलाज़ का खर्च उठाना उनके लिए असंभव है। राष्ट्रपति सम्मान से सम्मानित गफ्फार खाँ अपनी पत्नी के साथ अकेले प्रतिदिन जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संघर्षशील है। विवेच्य कहानी में कलेक्टर गफ्फार खाँ से कहता है- ''आपकी तीन महीने की रूकी पेंशन तो मिल जाएगी, मगर इलाज़ का पैसा या आर्थिक सहायता जैसा कोई प्रावधान हमारे ज़िले में अब तक नहीं आया है, न ही बट में इतनी गुंजाइश है।''

सरकार इन कलाकारों को राष्ट्रपति सम्मान तो दे सकती है, परन्तु इलाज़ के लिए पैसे नहीं। सरकार द्वारा पेंशन के नाम पर इन कलाकारों को केवल तीन सौ रूपये मिलते है, जिससे घर का खर्च निकालना कठिन होता है। ऐसे में बीमारी का उपचार असम्भव हो जाता है।

कभी-कभी सरकार द्वारा आयोजित मेलों द्वारा इन्हें आर्थिक सहायता मिल जाती है। इन मेलों में आने का निमंत्रण कभी इन्हें मिल जाता है और कभी नहीं भी मिलता। इन मेलों में अपनी कला को प्रदर्शित कर आर्थिक सहायता पाने की उम्मीद कलाकारों को रहती है। विवेच्य कहानी में गफ्फार खाँ अपनी बहुरूपिया कला के माध्यम से सब को अचंभित कर हंसाता है। जिसके लिए उसे बख्शीश मिलती है। बख्शीश पाकर वह कहता है कि - ''आप लोगों की दया सुंई म्हारी कला जीवित है, दस साल पैले 'राष्ट्रपति सम्मान' देवा रे बाद, कोइ चिड़ि रो पूत पूछवा कोनी आये के ग़फूरिया थूं जीवतो है कि मरी गयो। आज के मैंगाई के जमाना में तीन सौ रूपिया महिना री पिंशन सूं कांई व्है ?''

इन कलाकारों के लिए सरकारी नीतियाँ भी लाभप्रद, नहीं है, साथ ही समाज में भी इनकी स्थिति दयनीय है। आज का हमारा तथा कथित शिक्षित युवा वर्ग लोककलाओं को बड़ी हेय दृष्टि से देखता है। विवेच्य कहानी में गफ्फार खाँ अपने इलाज़ के खर्चे के लिए आर्थिक सहायता हेतु कलेक्टर के पास जाता है। परन्तु वहाँ निराशा ही उनके हाथ

लगती है। सरकारी कर्मचारी गफूरिया से कहता है – ''.... ये जो कलक्टर साहब हैं, वो लोकला–वला की बात नहीं समझते। जवान हैं, तरक्कीपसन्द है। सरकार से भत्ता पाते आये पुराने कलाकार, सरकार के लिए सफेद हाथी हैं। पुराने, बासी कलाकारों के नाम पर खर्चा उन्हें पैसे की बरबादी लगता है।''

लोककलाकार जीवनपर्यन्त अपनी कला के माध्यम से लोगों का मनोरंजन करते आये हैं, परन्तु वृद्धावस्था में उन्हें कोई नहीं पूछता। अत: इस प्रकार ये कलाकार अन्धेरी गलियों में अपना जीवन जीने को विवश हैं। आधुनिकता तथा भूमण्डलीकरण के इस युग में युवा वर्ग उसी भूमंडलीकृत समाज का अंग बनने की होड़ में लगा हुआ है। परिणामस्वरूप आज की पीढ़ी पुरानी कलाओं से अपना मुँह फेर कर विदेशों की ओर गमन कर रही है। ये कलाएँ युवा वर्ग के लिए बोरियत का एक माध्यम बन कर रह गई है। इन लोक कलाओं को आगे विरसत के रूप में ले जाने वाला कमत्तर ही है। इस चिन्ता को लेखिका ने बड़ी मार्मिकता एवं तार्किकता से इस कहानी में अभिव्यक्त किया है। आलोच्य कहानी में वर्णित कलेक्टर कहता है कि – ''आज के तरक्कीपसन्द युग में कला के क्या मायने, वह भी राजा–महाराजाओं के ज़माने की कलाएँ। आप ही कहें आपके बच्चों में से कौन आपकी विरासत को आगे बढ़ा रहा है? न सही बच्चा है, आपकी कला का कोई नामलेवा.....कोई चेत्ता ?''

वास्तव में यह एक चिन्ता का विषय है कि इन कलाओं को कौन आगे लेकर जाएगा ? एक सच्चा कलाकार अपनी दुर्दशा को लेकर चिन्तित तो है ही साथ इस पीड़ा से भी व्यथित है कि उनके साथ ही उनकी यह कला भी मिट्टी में दफ़न हो जाएगी।

समाज में कलाकारों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक कि इन कलाकारों के बच्चे भी इनसे दूर होते जा रहे है। विवेच्य कहानी में गफ्फार खाँ के साथ भी ऐसा ही होता है। गफ्फार खाँ अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुए कहता है – ''दोनों बेटे उनकी 'बहुरूपिया परछाई से जवान होते ही किनारा कर गये। बेटी का निकाह, बेग़म की जिद के चलते उनके मायके की रिश्तेदारी में हुआ, तो वह भी सिर झुकाकर अपने पिता के बहुरूपियेपन के भद्दे मज़ाक सुनती हुई, नैहर से एकदम कट गयी।''

एक तरफ यहाँ गफ्फार खाँ समाज में अपनी कला द्वारा सभी का मनोरंजन कर उन्हें सौन्दर्य की अनुभूति करवाता है, वहीं दूसरी ओर समाज उसके बहुरूपिये कला पर फब्तियाँ कसते हैं। इन्हीं कारणों से उनके बच्चे उनसे दूर हो जाते है।

लेखिका की इस कहानी से यह भी व्यंजित होता है कि कलाकार के लिए न तो कोई धर्म होता है और न जाति। उनका लक्ष्य लोक सौन्दर्य की अनुभूति करवाना है, साथ मानवीयता का संदेश जन–जन तक पहुँचाना है। वह जाति–धर्म से ऊपर उठकर सबको एक साथ हंसाता है, उनको साथ लाने का प्रयास करता है। लोगों को सुख की अनुभूति करवाना ही इनका एक मात्र धर्म है। स्वयं वे चाहे कैसी भी स्थिति में रहें, परन्तु लोगों के जीवन को कला द्वारा सरस बनाते है। लेखिका ने इस बात की पुष्टि गफ्फार खाँ के माध्यम से इस प्रकार करती है – ''कितनी बार तो वे आधे कृष्ण, आधे दरवेश का रूप धारते हैं। कभी गाँधी बनते हैं, कभी नेहरू तो कभी मौलाना आज़ाद।''

ये कलाकार विभिन्न रूप धारण कर जन सामान्य में एकता का संदेश पहुँचाते है। वहीं दूसरी और आज का तथाकथित आधुनिक समाज इन कलाकारों का तिरस्कार करता है। समाज में यहाँ हर तरफ साम्प्रदायिकता फैली हुई है, वहीं दूसरी तरफ गफ्फार खाँ जैसे व्यक्ति भी है जो धर्म से ऊपर उठकर इंसानियत को निभा रहे हैं। इस कहानी में लेखिका कला के माध्यम से धार्मिक संकीर्णताओं के विपक्ष में खड़ी होती है। विवेच्य कहानी में गफ्फार खाँ ''.... चुपचाप हर शाम, अपनी नमाज़ के बाद मन्दिर की देहरी पर उगे पीपल के नीचे चिराग़ जला जाते हैं।''

बहुत से लोग उन्हें इसके लिए धमकाते व डराते है, परन्तु वह रूकते नहीं। बड़ी ही तत्परता से अपने इंसान होने का फर्ज़ अदा करते हैं, जो उनमें कला के माध्यम से आया है। अपने उस्ताद के हिन्दू होने के उपरान्त भी वह पूर्णत: उनके प्रति समर्पित थे और उनके द्वारा दी गई बहुरूपिया कला को जी तोड़ मेहनत कर आगे ले जाते गये। परन्तु वर्तमान काल में ऐसे शिष्यों की कमी है जो कला को समझे और फिर उसे आगे बढ़ाये।

निष्कर्षत: इस कहानी में लेखिका ने लोककला के विलुप्ति के दर्द को अभिव्यक्त करने के साथ ही उनको बचाए रखने की चिन्ता भी व्यक्त की है। न केवल बहुरूपिया कला अपितु ओर भी कलाएँ विलुप्तिकरण की कगार पर खड़ी है। इन कलाओं को बचाए रखने का प्रयास अपनी संस्कृति को बचाए रखने का प्रयास होगा। इसके लिए सरकार को ठोस कदम उठाने होंगे। यह कलाएँ हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। यदि राष्ट्र को बचाना है तो संस्कृति को बचाना ही होगा।

# दो पाटों के बीच बंटी

**ज्योति शर्मा**
**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

वर्तमान समय में भारत में आधुनिकता के फैलने से जहाँ एक ओर सुखी जीवन जीने की सुविधाएँ बढ़ी हैं, वहीं वैयक्तिगत स्वतन्त्रता तथा व्यक्तिगत सुख पाने की आकांक्षा के कोण भी अधिक नुकीले हुए हैं जिसके कारण पारिवारिक जीवन एक जटिल स्थिति में आ गया है। परिवार के लिए आवश्यक समन्वय वृत्ति एवं सहनशीलता, दूसरे की कमियों के बावजूद उसको सहने का कर्तव्यबोध धीरे-धीरे खत्म होता जा रहा है। यही स्थिति दाम्पत्य सम्बन्धों की भी हैं। दाम्पत्य सम्बन्धों में समन्वयवृत्ति, प्रेमभाव, आपसी तालमेल आदि न होने के कारण सम्बन्ध टूट रहे हैं और इस स्थिति का सबसे बुरा प्रभाव उनके बच्चें पर पड़ रहा है, जो दाम्पत्य सम्बन्धों के टूटने के लिए कहीं से भी जिम्मेदार नहीं है। 'आपकी बंटी' मन्नु भण्डारी द्वारा लिखा गया एक ऐसा उपन्यास हैं, जिसमें उन्होंने दाम्पत्य सम्बन्धों के टूटने के कारण उनके बच्चे के बाल मन पर पड़ने वाले प्रभाव का वास्तविक चित्रक प्रस्तुत किया है।

'आपकी बंटी' उपन्यास ऐसे बच्चों का यथार्थ है जिनके माता-पिता अपने बच्चों को प्राथमिकता न देकर अपनी-अपने अहं और स्वार्थ को प्राथमिकता देते हैं और अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार अलग-अलग रहकर अपी-अपनी जिन्दगी जीते हैं, जिनके कारण बच्चों की रोज़मर्रा की जिन्दगी तो प्रभावित होती ही है इसके साथ-साथ माता-पिता का स्नेह और साथ न मिलने के कारण ऐसे बच्चे अपनी जड़ों से कट जाते हैं और कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि वह अपना मानसिकता सन्तुलन खो बैठते हैं। मन्नु भण्डारी ने अपने इस उपन्यास में बंटी के माध्यम से ऐसे ही बच्चे का चित्र पाठक के सामने प्रस्तुत किया है। मन्नु भण्डारी के इस उपन्यास की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने इस उपन्यास में किसी भी पात्र को कसूरबार न ठहराते हुए बंटी के दृष्टिकोण से सारी बातें कही हैं।

उपन्यास में बंटी की मम्मी, शकुन ने अपने अहं में अजय (बंटी के पापा) को नीचा दिखाने के लिए उस बच्चे को इस्तेमाल करने के लिए सोचा, जिस बच्चे ने शकुन को खुश रखने के लिए कितनी मासूम कोशिशे की थी:- ''मम्मी का रोना बंटी को एकाएक बड़ा बना गया! बड़ा और समझदार ..... और ममी के एकमात्र सहारे बंटी के ऊपर हजार-हजार जिम्मेदारियाँ आ गई हैं मम्मी को प्रसन्न रखने की।'' (आपका बंटी-पृ. 53) ''दिन में दो-चार बार पापा की बात करने वाले बच्चे ने कैसे इस शब्द को काटकर फेंक दिया था ..... शब्द ही नहीं अजय के भेजे खिलौने, उसकी तस्वीर तक की अलमारी में बंद कर दिया था।'' (पृ. 78) लेकिन फिर भी बंटी शकुन के अपने से अलग होने से नहीं रोक सका। शकुन आत्मपरीक्षण के दौरान यह स्वीकार करती है कि ''बंटी केवल उसका बेटा ही नहीं है, वह हथियार भी है, जिससे वह अजय को टारचर कर सकती है, करेगी।'' (पृ. 39) बेशक शकुन चाहते हुए भी बंटी को अजय के खिलाफ इस्तेमाल नहीं कर सकी हो, लेकिन जब उसे लगता है कि कहीं बंटी उसके और डॉ. जोशी के बीच दरार न बन जाए तो उसे अपने से काटकर अलग कर देती है:- ''बंटी उसके और अजय के बीच सेतु नहीं बन सका तो वह उसे अपने और डॉक्टर के बीच बाधा भी नहीं बनने देगी... बंटी को दरार बनना है तो अजय और मीरा के बीच बने।'' (पृ.120-121) शकुन का अपने अहं और स्वार्थ के कारण बन्टी को इस तरह अपने से स्वार्थ के कारण बन्टी को इस तरह अपने से अलग कर देना हमारे सामने इस भयानक चिन्ता को रख देता है कि अगर माता-पिता ही अपने बच्चे को अपने अहं को सन्तुष्ट करने के लिए इस्तेमाल करने लगें तो स्थिति सचमुच ही बहुत शोचनीय है।

लेखिका ने बंटी के माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की है कि जिन बच्चों के माता-पिता के सम्बन्ध तनावपूर्ण होते हैं वह बच्चे कितनी मानसिक पीड़ा से गुजरते हैं। फफी (घर का काम करने वाली) द्वारा शकुन को दूसरी शादी करने पर कहे कहे गए इन शब्दो से कि '' साहब ने जो किया तो आपकी मट्टी-पलीद हुई और अब आप जो कर रहीं हैं, इस बच्चे की मट्टी पलीद होगी, चेहरा देखा बच्चे का ? कैसा निकल आया है जैसे दिन-रात धुलता रहता हो भीतर ही भीतर।' से पता चलता है कि बंटी अपनी ममी से भी ज्यादा दयनीय स्थिति में पहुँचने वाला है। शकुन जो बंटी से कहीं ज्यादा प्रौढ़, नौकरी करने वाली, पढ़ी-लिखी समझदार महिला होने के बावजूद भी अजय (शकुन का पहला पति) की दूसरी शादी करने पर कितना टूट जाती है, तो बन्टी तो शकुन पर पूरी तरह से निर्भर रहने वाला आठ साल का

छोटा सा बच्चा है बिल्कुल असहाय, तो सोचो वो, मम्मी, जो उसका एकमात्र सहारा है, के बिना कैसे रहेगा और बंटी ही नहीं, बंटी जैसे अनेक बच्चे अपने माता-पिता के साथ बिना एक सहज जिन्दगी कैसे जीते होंगे? लेखिका ने इस गहरी चिन्ता पर सोचने के लिए पाठकों को विवश किया है। लेखिका ने बंटी के माध्यम से समाज में मौजूद समस्त तलाकशुदा माता-पिता के बच्चों की स्थिति उजागर की है। बंटी बचपन से ही अपने पापा से अलग रहता है। शकुन की दूसरी शादी करने और नये परिवार में व्यस्त हो जाने के कारण वह भी उससे दूर हो जाती है और केवल शकुन ही नहीं, बंटी का अपना घर, घर में अपने हाथों से लगाया हुआ बंटी का बगीचा, बंटी की सबसे करीबी साथी उसकी फूफी, माली दादा आदि सब कुछ बंटी से दूर हो जाता है। बंटी का अपनी सब चीजें छूट जाने के कारण वह अकेलेपन का शिकार हो जाता है और असुरक्षित भावना से बुरी तरह से ग्रस्त हो जाता है। वह सबके साथ होकर भी बहुत डरता है। एक रात वह अमि और जोत (शकुन के दूसरे पति के बच्चे) के साथ सोया होता है कि आधी रात के सन्नाटे में बंटी की भिंची हुई सी आवाज़ सारे घर में गूंज उठती है:- ''ममी, दरवाजा खोलो.... दरवाजा खोलो मी।... सारी ताकत से बंटी चीख रहा है... सर्दी से अकड़ा हुआ बंटी थर-थर काँप रहा है। बंटी का सारा मुंह आँसू, लार और नाक से सन गया। हिचकियों के मारे साँस नहीं ली जा रही' (पृ. 98-99) लेखिका ने बंटी की इस स्थिति के माध्यम से माता-पिता के टूटने सम्बन्धों के कारण बच्चों में बनती असुरक्षित भावना की समस्या को उजागर किया है। ''अपने घर से उखड़कर बंटी जैसे सभी जगह से उखड़ गया, क्लास में बैठा रहता है तो मन में घर तैरता रहता है... ममी, अमि, ममी का कमरा, कमरे का जादू... और भी जाने क्या-क्या। सबके बीच होकर भी जैसे सबसे कटा-छटाँ, अलग-अलग सबको देखता रहता है और जब घर में होता है तो आँखों के आगे भी स्कूल तैरता रहता है तो कभी पुराना घर, अपना बगीचा, बगीचे का एक-एक पौधा और एक-एक पत्ती, फूफी, माली दादा, ममी-वहाँवाली ममी।'' (पृ.109) और इस तरह बंटी मनोवैज्ञानिक केस बन जाता है वह Absentmindedness का शिकार हो जाता है।

न जाने इस देश में ऐसे कितने बच्चे हैं जो माता-पिता के टूटे सम्बन्धों के कारण मानसिक रोगी हो जाते हैं। बच्चों की दिन व दिन बढ़ती यह स्थिति गम्भीरता से सोचने की माँग करती है। बच्चों की इस स्थिति के जिम्मेदार बहुत हद तक माता-पिता द्वारा बच्चों के बारे में लिए गए गलत निर्णय भी है। बंटी को अजय द्वारा हास्टल भेज देना एक ऐसा ही निर्णय है जिससे बंटी पूरी तरह से टूट जाता है। जब अजय बंटी को हॉटल छोड़ने जाता है तो- ''पता नहीं बंटी को क्या हुआ कि पापा जाएँ उसके पहले वही पापा को छोड़कर दौड़ पड़ा है। वह दौड़ता जा रहा है, बिना पीछे मुड़े-बस आगे ही आगे। नदी-नाले, पहाड़-मैदान सब पार करता जा रहा है और फिर पता नहीं कहाँ गिर जाता है। ... ... तुम कौन हो बेटा ? कहाँ से आए हो ? बंटी याद करने की कोशिश कर रहा है, पर जैसे उसे कुछ भी याद नहीं आ रहा .... वह कहाँ से आया है, वहाँ से ..... और उसके मन में एक अजीब सी दहशत भरने लगी है।'' (पृ. 152) पर बहुत याद करने पर भी उसे कुछ भी याद नहीं आता ।

इस स्थिति में बंटी को हॉस्टल भेज देना क्या इस समस्या का हल था? जिस उम्र में बच्चों को अपने माता-पिता के स्नेह की सबसे ज्यादा ज़रूरत होती है उस उम्र में अपनी सुविधा के लिए हॉस्टल भेज देना इस समस्या का हल कतई नहीं हो सकता। बच्चा प्राकृतिक न्याय की माँग करता है। केवल दो लोगों की सुविधा के लिए कोई भी रिश्ता तोड़ने का हक न समाज को है और न कानून को। दाम्पत्य सम्बन्धों को तोड़ते समय और नए सम्बन्ध बनाते समय बच्चे के परिप्रेक्ष्य से हमें सोचना ही होगा। बच्चों को माता-पिता दोनों के प्रेम की ज़रूरत होती है और यह उसका हक भी वो भी बिना किसी किन्तु परन्तु के।

यह उपन्यास हमें यह सोचने पर विवश करता कि भारतीयों पर भी आधुनिकता और व्यक्तिगत सुख इतने हावी हो गए है। कि उसके आगे अपने ही बच्चे का भविष्य भी हमें दिखाई नहीं देता। बच्चों के लिए माता-पिता का प्रेम और बच्चों के लिए अपने सुखों का समर्पण भारतीयता की प्रमुख विशेषता थी परन्तु आधुनिकीकरण के कारण यह भाव हमारे समाज से लुप्त होता जा रहा है। जोकि भारतीय समाज की बहुत बड़ी विडम्बना है।

मन्नु भण्डारी जी ने समाज के लिए अपना दायित्व समझते हुए तलाक के कारण पनपी बच्चों की इस समस्या को उस समय ही समाज के समक्ष रख दिखा था जिस समय भारत में तलाक की समस्या अभी बहुत कम थी। सन् 1979 में लिखा गया उनका यह उपन्यास वर्तमान भारत के संदर्भो को समेटे हुए है। समाज को आने वाली समस्या से आग्रह करवाना एक अच्छे साहित्यकार का दायित्व होता है और यही प्रयास मन्नु भण्डारी जी ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से किया है।

# उर्मिला शिरीष की कहानियों में बदलते पिता-पुत्र सम्बन्ध

**शाम सिंह**

**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

परिवार मानव समाज की आधारभूत इकाई है। यह एक प्रेमी सामाजिक संस्था है जहां से व्यक्ति अपने सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की शुरूआत करता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी परिवार का सदस्य होता है और प्रत्येक व्यक्ति पर जन्म लेने के बाद सबसे पहला प्रभाव पारिवारिक परिवेश का ही पड़ता है। परिवार में हमारे सम्बन्ध अनौपचारिक, अकृत्रिम एवं सरल होते हैं तथा उनमें भाईचारे की भावना का समावेश रहता है। यह एक ऐसा स्थान है जो हर प्रकार से सुरक्षा प्रदान करता है।

पुत्र को पिता की आत्मा का अंश ही नहीं प्रतिबिम्ब माना जाता है। इसलिए पिता-पुत्र का सम्बन्ध परिवार में घनिष्ट होता है। पुत्र के जन्म पर पिता की खुशी की कोई सीमा नहीं रहती। वह खुशी में मिठाई बाँटता है। पुत्रों को अधिक महत्व देने का कारण यह माना जाता है कि पुत्र ही परिवार की धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करता जाता है, वही पीतरों को तर्पण देता है और पिण्डदान करता है। भारतीय धर्म ग्रन्थों के अनुसार मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण प्रमुख माने गये हैं। पितृ ऋण, देव ऋण तथा ऋषि ऋण। ऐसा माना जाता है कि पुत्र का जन्म पुत्र का जन्म होने से माता-पिता, पितृ ऋण से उऋण हो जाते हैं। प्राचीन काल से पिता को परिवार का मुखिया माना जाता है। लेकिन आज उसकी इस भूमिका मे काफी अंतर आ गया है। आज वह परिवार के सदस्या का मुखिया, नियामक, संचालन न रहकर मूल दृष्टा बनकर रह गया है। पिता के प्रति पुत्र में न समीप्ता है, न श्रद्धा है। कहीं-कहीं पिता में भी पुत्र के प्रति स्नेह की कमी है। यथार्थ स्थिति यह भी है कि पिता, जो अपने बेटे को उँगली पकड़कर चलना सिखता है अनेक कष्टों, संघर्ष का सामना करते हुए, अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए अपने बेटे को एक योग्य व्यक्ति बनाता है वही बेटे पिता के बूढ़े होने पर उसे फालतू बोझ समझकर उसकी उपेक्षा करते हैं।

उर्मिला शिरीष ने 'निर्वासन', हैसियत, प्रतीक्षा और पुनरागमन शीर्षक कहानियो में पिता-पुत्र के बदलते सम्बन्धों का चित्रण किया है। 'निर्वासन' कहानी का पिता अनन्तप्रसाद पूरी उम्र बेटों की परवरिश करने में लगा देता है। वह किसी व्यापार में बहुत सारा पैसा लगा देता है। लेकिन व्यापार में घाटा पड़ जाने के कारण कर्ज़ से दब जाता है। कर्ज से मुक्त होने के लिए वह बेटों से मदद माँगता है लेकिन बेटे पिता का साथ नहीं देते। जिससे वह घर से निकलने तथा स्टेशन पर भीख माँगने के लिए विवश हो जाता है। कहानी के आरम्भ में ही उसकी मर्मान्तक पीड़ा को देखा जा सकता है। ''ऐ भाई, चार पैसे दे दो। बूढ़ा भूखा है, खाना खाएगा। ऐ बाई साहब, पैसे दे दो। बूढ़ा खाना खाएगा, भूखा है। ऐ बहन जी पैसा दे दो।'' (निर्वासन)

''हैसियत'' कहानी में पिता अपने परिवार के बीच रहना चाहता है किन्तु बेटे बहुएँ उससे उपेक्षा का व्यवहार करते हैं। वे उसे बासी खाना देते हैं। पिता द्वारा घर के सभी सदस्यों के लिए बार-बार चिन्ता प्रकट करने पर बेटा खीझ जाता है। ''आपको क्या करना है इन बातों से ? आपके मतलब की जो चीज़ नहीं है उसके बारे में क्यों जानना चाहते हैं?'' (हैसियत) बहू बेटों के दुर्व्यवहार से तंग आकर वह घर से निकलने के लिए विवश हो जाता है।

आधुनिकता के जिस दौर में हम गुजर रहे है उसके बहुत से पारिवारिक सबन्धों की शैली परम्परागत नहीं है। आज की पूंजीवादी तथा स्वार्थी संस्कृति में लोगों के पास इतना समय नहीं है कि वे अपने परिवार के सदस्यों के लिए थोड़ा सा समय निकल सके।

'प्रतीक्षा' कहानी में पिता बेटों के स्वार्थ से दुखी है उसे लगता है कि जिनके आराम तथा भविष्य के लिए इतनी मेहनत की आज वही बेटे जब सफलता की सीढ़ियां चढ़ गए हैं तो माता-पिता को भूल गये है। पत्नी से कहे गए इन शब्दों से पिता की पीड़ा की झलक मिलती है ''आज के लिए ही बड़ा किया था। मतलबी निकले दोनों अपनी-अपनी गृहस्थी में ऐसे डूबे कि होश ही नहीं रहा कि मां-बाप भी है।''

पुनरागमन कहानी में पिता बच्चों की पढ़ाई के लिए अपनी जन्म तथा कर्मभूमि का त्याग कर देता है किन्तु जब बेटे सफलता की सीढ़ियां चढ़ जाते हैं, तो पिता को अपने घर में नहीं रखते। इस बुढ़े पिता को जीवन के अन्तिम दिनों में पुनः अपने गांव में लौटना पड़ता है। अर्थ प्राप्ति की अन्धी दौड़ में व्यक्ति इतना व्यस्त और आत्मकेन्द्रित हो गया है कि उसके लिए पारिवारिक रिश्ते कोई मूल्य नहीं रखते। वर्तमान समय में पुत्र पिता के साथ सम्बन्ध केवल सम्पत्ति

देखकर ही बनता है।

इसी कहानी में पिता जब गाँव में टयूबवैल लगाने और खेती करने के लिए बेटों से आर्थिक सहायता माँगता है तो बेटे पिता की सहायता नही करते। लेकिन जब पिता को बुलाने पर बेटे गाँव में आते है तो खेतों में लगी फसल को देखकर उनका मन ललचा जाता है। वे पिता को सुझाव देते हैं कि आप अकेले क्यों नहीं ये सारी खेती करते, इन गाँव वालों को क्यों अपने साथ जोड़ा है। वहां से लौटते समय उनके व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। कुछ समय बाद पिता को पत्र लिखते हैं कि ''फसल बेचने से पहले हमसे पूछ लेना। जब अच्छे रेट मिले तब बेचना। हम लोग आ जाएँगे।'' (पुनरागमन)

फसल निकलने पर जब पोता पैसे लेने आता है तो दादा पोते को गाँव वालों को देकर बचे पैसों में से केवल पाँच हजार रूपये देता है। पोता इतने कम पैसे लेने से इन्कार कर देता है तो दादा का उससे कहना है। ''तो हम क्या करें। तुम सक्षम हो। किसी मुसीबत में होते, तो हम सोचते। सिर्फ फायदा देखना...।

उर्मिला शिरीष ने कहानियों के माध्यम से बेटों द्वारा पिता के साथ किए जाने वाले व्यवहार को बखूबी चित्रित किया है लेखिका साथ में यह भी बताना चाहती है कि अगर बेटे अपने कर्त्तव्य से विमुख हो रहे है ता उनका व्यवहार पिता को भी उनके प्रति किये जाने वाले व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए मजबूर कर रहा है।

## रेल लाइन का भूत

**राजेश जोशी**
**साहित्यकार, शिमला**

रात अंधेरी थी और मैं कालका शिमला रेल लाइन की
टनल नम्बर 103 में चला जा रहा था
अचानक मेरे दिमाग के दरवाजे पर दस्तक हुई
किसी ने झाँक कर कहा कि जानते हो
यह उत्तर औपनिवेशिक रात का अंधेरा है
उच्च अध्ययन संस्थान में यह शब्द इतनी बार सुनता था
कि अब खाना खाते, नहाते धोते, सोते जागते हर कभी, हर कहीं
यह सुनाई दे जाता था
कोई कहता था तुम्हारा खाना उत्तर और निवेशिक खाना है
और तुम्हारा नहाना उत्तर औपनिवेशिक स्नान
अचानक टूटा मेरा ध्यान

किसी आदमी ने एकदम पास आकर मुझसे पूछा
क्या तुम इस अंधेरी सुरंग से बाहर जाना चाहते हो ?
मैं एक पल का अचकचाया पर दूसरे ही पल मुझे कुछ याद आया
और मैंने कहा :
-ओह! तो तुम ही हो वह अंग्रेज भूत !
मैं तुम्हें बहुत अच्छे से जानता हूँ
जानता हूँ, मैंने उसके चेहरे को गौर से देखते हुए कहा ।
जानता हूँ कि तुम इसी सुरंग में घूमते रहते हो
रात भर
मैंने तुम्हारे बारे में कई कहानियाँ पढ़ी हैं !

उसने मेरी बातों पर कोई तवज्जो नहीं दी
बेमन से सुनता रहा वो मेरी बात
और किसी बात का कोई उत्तर भी नहीं दिया

उसने दुबारा पलटकर किया फिर वही सवाल
क्या तुम इस अंधेरी सुरंग से बाहर जाना चाहते हो ?
-क्या सचमुच इस समय संभव है
इस अंधेरी सुरंग से बाहर निकलसकना ?
मैंने पलट कर सवाल किया उस से

मैं भूत हूँ उसने चिढ़ कर कहा
मैं वर्तमान के बारे में नहीं जानता !
-तो क्या तुम खुद जा सकते हो इस सुरंग से बाहर ?
मैंने फिर पूछा ।
मेरी और तुम्हारी हालत में ज्यादा फ़र्क नहीं है
जैसे तुम्हें नहीं सूझ रहा है बाहर का रास्ता
ऐसे ही मैं भी बरसों से भटक रहा हूँ इस सुरंग में !
उसने कहा ।
-तो क्या तुम्हारे समय में संभव था इस अंधेरी सुरंग से बाहर जाना ?
मैंने फिर पूछा ।
उसने लगभग पिण्ड छुड़ाने के अंदाज़ में
तेजी से पलट कर जाते हुए कहा
अगर यह संभव होता तो मैं कभी का भाग नहीं गया होता
इस अंधेरी सुरंग से बाहर ।

# संजीव कृत ''सर्कस'' उपन्यास में सामाजिक समस्याएँ

**रूचिका शर्मा**
शोधार्थी
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

संजीव कृत ''सर्कस' उपन्यास में निम्नवर्गीय समाज के आर्थिक शारीरिक शोषण का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसमें 'सर्कस'के कलाकारों की समस्याओं को व्यापक रूप में चित्रित किया गया है जो निम्नलिखित है:-

**आर्थिक समस्याओं से जूझता हुआ निम्न वर्ग :-**

गरीबी, भूखमरी से जूझता हुआ निम्नवर्ग आर्थिक अभाव के कारण दयनीय अवस्था मे जीवन व्यतीत करता है। सर्कस में गरीबी के कारण भुखमरी के कगार पर पहुँचे निम्नवर्ग की समस्याओं का चित्रण है। सर्कस में काम करने वाले पात्र आर्थिक धरातल पर निम्नवर्ग से सम्बन्धित है जो कहीं ढंग का काम न मिल पाने के कारण जीवन का निर्वाह करने के लिए सर्कस से जुड़ गए हैं। सर्कस में कार्य करना उनकी विवशता है। रामूदादा अपना और बेटी का पेट पालन के लिए सर्कस में काम करता है।

बुलबुल भी अपने परिवार के जीवन-यापन के लिए पहले सर्कस में काम करता है फिर सर्कस को छोड़कर खेल तमाशा दिखाकर जीवन व्यतीत कर रहा है। वह अपनी विवशता को इन शब्दों में व्यक्त करता है: ''अकेला होता तो डूब मरता, अब बीवी और बच्चों के साथ हूँ, तो कुछ न कुछ उपाय करना ही पड़ता है।''

सर्कस में बौनो की कोई हैसियत नहीं है। उन्हें चूहें, छछून्दर आदि कहकर बुलाया जाता है। अपनी भूख मिटाने के लिए विवश बौनो की स्थिति शोचनीय है। सर्कस में सरजू, आलीवर, जानी नामक बौने जोकर की भूमिका निभाने का काम कर दर्शकों का मनोरंजन करते हैं। केवल दर्शको का ही नहीं वह अन्य लोगों के लिए भी केवल हँसी मजाक का माध्यम है।

जानी नामक बौना अपनी स्थिति को यूं प्रकट करता है: ''हमारा काम क्या है? हँसाना ही न। सर्कस या मैजिक कम्पनी में लोग हमीं को काहे सलेक्ट करता क्लाउन के लिए - इस खातिर कि हमको देख के खुदई हँसी आ जाता। दुनिया में जो ताकतवाला है, वो कमज़ोर पर हँसता।.... काहें हँसता?वा यही सोचकर कि हम वोइसा नही है।''

सर्कस में जोकर कितना भी अच्छा कार्य क्यों न करे उनका वेतन केवल सौ रुपए ही होता। सौ रुपए से उनकी सारी आवश्यकताएँ दूर नहीं होती। समाज मे हिजड़ों और वेश्याओं की जीविका का कोई निश्चित साधन नहीं है। भूख की समस्या से जुझते हुए इन वर्गो की समस्या को उपन्यासकार ने उठाया है। पेट की आग बुझाने के लिए हिजड़े, वेश्याएँ कहीं भी कोई भी कार्य कर लेती हैं। नियोगी के सर्कस 'ऐवरेस्ट' तथा योगेश के 'द हाक' सर्कस में लड़कियाँ कम होने के कारण हिजड़ों को औरतें बनाकर पेश किया जाता ताकि दर्शक उनके नृत्य देखकर आकर्षित हों। नृत्य दिखाते समय सुगिया नामक हिजड़ा ऊँचाई से गिर जाता है और बाँह टूट जाती है। सहानुभूति के कारण पेशे से डाक्टर एक दर्शक द्वारा स्टेज पर आकर सुगिया का इलाज करने पर पता चलता है कि सुगिया लड़की नहीं हिजड़ा है। यह तथ्य जान लेने के पश्चात् दर्शक भड़क जाते हैं सुगिया को जूतियाँ मार-मारकर लहुलुहान कर सर्कस से बाहर निकाल देतें हैं।

सर्कस से भगा देने के बाद सुगिया पुरुष वेश्या बन गया है लेकिन टूटी बाँह का दर्द उसे यह काम भी नहीं करने देता। अपनी विवशता प्रकट करते हुए उका कथन है: ''इदाड़ीजार दाढ़ी-मोछों को रोज पाउडर से साज करके नकली बॉडिस पहिन के मरद को कब तक रिझा सकब ? गोटा देशने तो चकलाकर हो गैल, अब हमर ओतना पूछ कहाँ।''

**पूँजीपतियों की संवेदनहीनता-**

उपन्यास में बुलबुल अपने जीवन यापन के लिए जगह-जगह काम करता है परन्तु हर जगह मालिक द्वारा उसे

कम वेतन दिया जाता है, एक जगह तो मालिक ने महीनों भर वेतन ही नहीं दिया उलटा खिलाए गए खाने के पैसे काटने के लिए उसके कपड़े ही छीन लिए। कपड़ों के बिना ही बुलबुल कई दिनों तक काम की तलाश में घूमता रहा।

सर्कस के मालिक नियोगी की दृष्टि में सर्कस मे काम करने वालों के जीवन की कोई कीमत नहीं है। जोखिम भरा काम करने वालों की सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। बाघ द्वारा घायल बुलबुल का यह कथन सर्कस के मालिक नियोगी की उपेक्षा को दर्शाता है: ''इन्सान हो या जानवर, टरेनिंग देने का एक-इ-कायदा है- भूखा रखो उसका सारा दिमागी शैतानी भूख पे लाकर तोड़ दो फिर अइसा ललचाओं, अरसा कि उसका लगे तुम दसका सच्चा हमदर्द है। तोड़ता रहो अइसा तोड़ते रहो।''

सर्कस में काम करने वाली लड़की रीता नियोगी की रखैल है। रीता के साथ अपने सम्बन्धों को पर्दे में रखने के लिए वह चाहता है कि रीता सरजु नामक बौने से विवाह कर ले। उनकी शादी तो हो जाती है परन्तु परिणाम अच्छा नहीं मिलता। रीता के नियोगी के साथ सम्बन्धों का पता चलने पर सरजु चाहता है कि रीता सर्कस छोड़कर उसके साथ चले। रीता यह बात मानने के लिए तैयार नहीं है। वह सरजु को सर्कस में बने रहने के लिए धमकी का प्रयोग भी करती है। सरजु द्वारा धमकी को अनदेखा करने पर वह गोली मारकर उसकी हत्या कर देती है।

एक अन्य सर्कस में हाथियों की बीमारी फैलती है। हाथियों की चिकित्सा तो करवाई जाती है किन्तु हाथियों की देखभाल करने वाले वीरेन नामक नौकर की चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता। इसी कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। मालिकों की इस उपेक्षा को देखते हुए बासुदेव झा कहता है: ''सर्कस में आदमी को जानवर और जानवर को आदमी की तरह ट्रीट किया जाता है।''

नियोगी की संवेदनहीनता जैनुल के संदर्भ में भी उभर कर समक्ष आती है। नियोगी की सर्कस प्रतियोगिता में जैनिथ नामक सर्कस से पिछड़ रही होती है। उसकी सर्कस में काम करने वाला जैनुल एक्रोवेट का जोखिम भरा खेल सर्कस में दिखाना चाहता है। नियोगी उसे यह खेल दिखाने का चांस देना चाहता है। इससे उसके दो स्वार्थो की सिद्धि संभव है। गर जैनुल का खेल चल निकला तो जैनिथ नामक सर्कस पिछड़ जाएगी क्योंकि उसके पास एक्रोवेट का खेल दिखाने वाला कोई नहीं है। अगर जैनुल खेल दिखाते समय मर जाता है तो भी लाभ नियोगी को होता। यह लाभ सर्कस मे काम करने वली लड़की झरना को प्राप्त करने के रूप में है। जैनुल झरना के प्रति आकर्षित है। उसे नियोगी भी प्राप्त करना चाहता है। जैनुल एक्रोवेट का खतरनाक खेल भी झरना को आकर्षित करने के लिए खेलना चाहता है एक्रोवेट का खेल दिखाते समय जैनुल की मृत्यु हो जाती है। झरना सर्कस मालिक नियोगी की चाल को समझ जाती है कि नियोगी को पता था जैनुल खेल दिखाते समय मर जाएगा। अंतत: वह सर्कस को छोड़ कर चली जाती है।

रामूदादा और उसकी बेटी झरना सर्कस में काम करते हैं। वह अपना जीवन सर्कस के कार्य में लगा देता है। लेकिन बीमार होने पर उसकी उपेक्षा ही की जाती है। ''सरकारी अस्पताल में भनभनाती मक्खियों, मलमूत्र और सड़ाँध फिनाइल, स्पिरिट की मिली-जुली गन्ध के बीच एक उपेक्षित शय्या'' पर वह रहता है।

इस प्रकार 'सर्कस' उपन्यास में पूँजीपति सर्कस मालिकों द्वारा आर्थिक रूप से विवश सर्कस में अनेक काम करने वालों के प्रति संवेदनहीनता प्रकट होती है। उनकी अनेक आवश्यकताओं की उपेक्षा की जाती है। सर्कस मालिक केवल लाभ को ही देखते है उनकी दृष्टि में व्यक्ति नगण्य है।

**पूँजीपतियो द्वारा स्वार्थ सिद्धि की समस्या:-**

उपन्यास में गरीब लोगों की रोटी छीनकर नेता अपने छोटे-छोटे स्वार्थें को सिद्ध करते हैं। निर्धन लोग भले ही भूखे रहें इससे नेतओं को कोई फर्क नहीं पड़ता। गाँव में भारी वर्षा तथा तूफान आने से झरना के प्रति विकास द्वारा निर्मित कलाभवन तथा बौने डेविड का सर्कस नष्ट हो जाता है और गाँव के अनेक लोग बेघर हो जाते हैं, और रोजी-रोटी के साधन खत्म हो जाते हैं। सरकार द्वारा कोई भी सहायता न मिलने पर लोग यह फैसला करते हैं कि गाँव में खाली पड़े मैदान में वह किसान तथा अन्य लोगों द्वारा अनेक वस्तुएँ बेचने के लिए मेला लगाएँगे और सर्कस के उजड़े हुए लोग अपने खेल तमाशा दिखाकर लोगों का मनोरंजन करेंगे। जिससे सबको जीविका कमाने का अवसर

मिलेगा, किन्तु स्थानीय जिलाधीश इसकी इजाज़त नहीं देता। हताश गोपाल बाबू का कहना है: ''देख रहे हैं साहब, जिलाधीश का कोड़ा....। फरमान भिजवाया है मेले का उद्घाटन आज नहीं कल होगा, जुबानी हुक्म है कि मेले की दुकान न खोली जाए।''

मेले की इजाज़त नहीं देने के पीछे नेताओं का अपना स्वार्थ है क्योंकि उन्हें लगता है कि अगर गाँव के लोग मेला देखने जाएंगे - तो उनका भाषण सुनने कोई नहीं आएगा और चुनाव में भारी नुकसान हो जाएगा। इस प्रकार नेता भूख से जुझते हुए गरीबों की परवाह न कर केवल अपने लिए ही सोचते हैं।

**असुरक्षित जीवन की समस्या:-**

उपन्यास में 'सर्कस' में काम करने वाले लोग सर्कस को ही अपना सहारा मानकर जिन्दगी व्यतीत करते हैं। सर्कस में जोखिम भरा काम करना पड़ता है। अपने जीवन को लेकर कलाकारों में अनिश्चितता बनी रहती है। उन्हें किसी भी समय जिदंगी और मौत का सामना करना पड़ सकता है। जैनुल अपनी कला का हुनर दिखाने के लिए सर्कस में एक्रोवेट खेलकर दिखाता है। एक शो में जैनुल एक्रोवेट खेल दिखाते समय खेल में छोटी सी गलती उसकी मौत का कारण बन जाती है। लेखक का कहना है: ''टाँगे तिरछी पड़े जमीन पर कटे पेड़ की तरह गिरा जैनुल सर पटरे पर! सछ: मृत अजगर की तरह।''

**देहिक शोषण:-**

'सर्कस' उपन्यास में सर्कस में काम करने वाली चन्द्रा को सर्कस मालिक नियोगी अनाथाश्रम से खरीद लाता है। चौदह साल की चन्द्रा सर्कस में काम करके जीविकोपार्जन करना चाहती है। चन्द्रा के प्रशिक्षक रघुनाथ द्वारा उसका लैंगिक उत्पीड़न होने पर चन्द्रा रघुनाथ के बारे में सर्कस मालिक के पास शिकायत करती है। मालिक उलटा चन्द्रा को ही डॉटता है। बेबस चन्द्रा द्वारा अपनी साथ कलाकार शुभलक्ष्मी को बताया गया दर्द इस प्रकर है: ''बहन.... तुझे क्या बताऊँ रात-दिन मैं किस असुरक्षा के बीच घिरी पाती हूँ।'' इससे स्पष्ट होता है कि नारी अकेली होती है तो मालिक लोग उसका दैहिक शोषण करते हैं।

अंतत: स्पष्ट है। कि सर्कस के पाखें को अनेक प्रकार की व्यावसायिक कठिनादयों का सामना करना पड़ता है तथा इन कलाकारों को बंधुआ मजदूर की तरह मालिकों की मर्जी से जीवन बिताना पड़ता है।

# जम्मू-कश्मीर का हिन्दी साहित्य : ऐतिहासिक संदर्भ

**अशोक कुमार**
**हिन्दी विभाग,**
**जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू**

रीतिकाल के वीररस के कवि भूषण और आदिकाल के कवि शालिभद्र सूरि की वीर-काव्य परम्परा में जम्मू-कश्मीर के पहले हिन्दी रचनाकर दत्त (देवदत्त) कवि आते हैं। दत्त रीतिकाल के समय जम्मू के महाराजा रंजीतदेव के पुत्र ब्रजराज देव के दरबारी कवि थे। शालिभद्र सूरि कृत 'पंच पांडव-चरित रास' की परम्परा में महाभारत के द्रोणपर्व का काव्यानुवाद इनकी 'वीर विलास' नामक कृति में हुआ है। भूषण और कवि दत्त के चित्रण में अंतर यह है कि युद्ध कृति में हुआ है। भूषण और कवि दत्त के चित्रण में अंतर यह कि युद्ध में महाराजा छत्रसाल की तलवार की गति तीव्र है और सर्पिणी के समान शत्रुओं के दल खा जाती है, जबकि कवि दत्त की कृति 'ब्रजराज पंचासिका' में ब्रजराज के कांगड़ा पर आक्रमण के समय तलवार निकलने से पहले ही शत्रु भाग जाता है - 'कोश रही तलवार सभी कुलनार पई जनु लाज के फांधे।' ... 'छेरि के लाज भगे दोऊ भूपति आह तजी धन प्रान धरा की।' डुग्गर-धरती की वीरता की परम्परा जो अब तक चली आ रही है अगर उसके हिन्दी साहित्य का आरंभ भी वीररस की कविता से हुआ तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

रीतिकाल के पश्चात भारतेन्दु युग में जम्मू के कवि पंडित नीलकंठ और कश्मीर के संत कवि परमानन्द भक्ति भावना, वेदान्त और अध्यात्म को विषय बना कर लिख रहे थे। इस काल मे जो पुनर्जागरण हुआ उसका प्रभाव इनकी रचनाओं में दिखाई नहीं पड़ता। छायावाद के पूर्वार्ध में कश्मीर के रहस्यवादी कवि जिन्दा कौल का उल्लेख मिलता है, जिनकी कृति 'पत्रम् पुष्पम्' 1924 ई. में छपी। इसी काल में पंडित हरदत्त शर्मा और पंडित नरोत्तम शास्त्री गांगेय कविता लिख रहे थे। हिन्दी के प्रचार प्रसार के इस युग में समाज सेवी संस्थाएँ साहित्यकारों को मंच प्रदान कर रही थीं। इसी युग में जम्मू-कश्मीर में हिन्दी की पहली पत्रिका 'वसुधा' का प्रकाशन बंसीलाल सूरी के सम्पादन में आरंभ हुआ। इसके पश्चात 'भारती', 'उषा', 'प्रताप', 'चन्द्रोदय', 'दीपक', 'रणवीर' और 'गुलाब' पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ। सन् 1935 के पश्चात् इस राज्य की साहित्यिक गतिविधियों में तीव्रता आती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक पृथ्वीनाथ 'पुष्प', दुर्गाप्रसाद काचरू, गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', दीनू भाई पन्त, चन्द्रकांत जोशी, मनसाराम शर्मा 'चंचल', शंकर शर्मा 'पिपासु', बंसी लाल सूरी, धर्मचन्द्र प्रशांत, राज तुली, सुशीला तुली, शकुन्ला सेठ, कृष्णा गुप्ता और सुभाष भारद्वाज काव्य क्षेत्र में उतर चुके थे। इनकी रचनाएँ 'हंस', लाहौर से प्रकाशित होने वाले विश्वबंधु और 'जनरवा', 'उषा', हिन्दी 'मिलाप' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। सन् 1942 में 'हिन्दी साहित्य मंडल' और 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' संस्थाएँ अस्तित्व में आती हैं, किन्तु 1947 ई. में बन्द हो जाती हैं। इन संस्थाओं में पढ़ी जाने वाली रचनाएँ विषय की दृष्टि से श्रृंगार, 'समाज सुधार, आचार संहिता विवेचन, देशानुराग, प्रकृति चित्रण' और रहस्यवाद से संबंधित थीं। इसी काल में जम्मू-कश्मीर में हिन्दी कहानी का आरंभ सत्यवती मल्लिक और पृथ्वीनाथ 'पुष्प' की कहानी से होता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1960 ई. तक देशबन्धु डोगरा 'नूतन', डॉ. ओम प्रकाश गुप्ता, ओम गोस्वामी, श्याम दत्त पराग, यश शर्मा, पद्मा 'दीप' (सचदेव), मोहन निराश, पृथ्वीनाथ 'मधुप', शशि शेखर 'तोषखानी', रत्न लाल शांत, हरिकृष्ण कौल, वेदराही, जवाहर लाल कौल और गोपनाथ कौशिक का उदय साहित्यिक शितिज पर होता है। इनमें से बहुत से कवि अब डोगरी के कवि के रूप में स्थापित हो कर साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हो चुके हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व के कवियों की प्रमुख प्रवृति छायावादी भावबोध को अपनाने की रही है। स्वतंत्रता के पश्चात 1960 ई. तक की कविता में राष्ट्रवाद, प्रगतिवाद और यथार्थवाद के स्वर प्रमुख हैं। सन् 1960 से लेकर 1970 ई. तक कविता के क्षेत्र में नयी कविता के भावबोध और शिल्प को पकड़ने का प्रयास हुआ। इस दशक में निर्मल विनोद और सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम्' का नाम कवियों की सूची में जुड़ जाता है। कहानी के क्षेत्र में 1960 ई. तक

'गद्यांजलि' शीर्षक से प्रकाशित संकलन की कहानियों में दमित प्रेम, वासना या अव्यक्त प्रेम को चित्रित किया गया। लेकिन, 1960 ई. के बाद की कहानी में यथार्थ के स्वर उभर कर आते हैं। हरिकृष्ण कौल और वेदराही का कहानी के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा। दुर्गादत्त शास्त्री, उषा व्यास 'छवि' और संतोष कौल ने भी कहानी लेखन में योगदान दिया। एकांकी के क्षेत्र में डॉ. ओम प्रकाश गुप्त का 'युद्ध और शांति', नरेन्द्र खजूरिया का 'रास्ता कांटे और हाथ' और मोती लाल केमू का 'तीन असंगत एकांकी' वर्चित रहे। आनन्दम् ने नाटक लिखने की शुरूआत की। 'हिन्दी साहित्य मंडल' का पुनर्जन्म इसी काल में हुआ।

सन् 1970 से 2000 ई. तक प्रकाशित कविता में प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, नयी कविता और साठोतरी कविता की प्रवृतियां एक साथ दिखाई देती हैं, दर्शन, प्रणय भावना, प्रकृतिचित्रण, अजनबीपन, देश प्रेम, जीवन की विसंगतियां, राजनीतिक संघर्ष चेतना, जीवन की विडम्बना, यांत्रिकता, राजनीतिक छल कपट, पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध, आर्थिक विषमता, मानव-मनः स्थितियों पर व्यंग्य आदि का चित्रण इस काल की कविता की विशेषता है। रमेश मेहता, ज्योतिश्वर पथिक, आज़ाद कुमार, अशोक कुमार, बलनील देवम, डॉ. राजकुमार, आदर्श, मनोज शर्मा, ओ.पी.शर्मा 'सारथी', क्षमा कौल, अग्निशेखर, महाराज कृष्ण संतोषी, शकुन्त दीपमाला, पहले से लिख रहे कवियों में डॉ. ओम प्रकाश गुप्त और रत्न लाल शांत चर्चा में रहे। कहानी के क्षेत्र में संजना कौल, चन्द्रकांता, किरण बख्शी, शिव रैणा, अशोक जेरथ, छत्रपाल, ओम गोस्वामी, सुदर्श त्रिलोचन, शकुन्त दीपमाला और डॉ. राजकुमार का विशेष योगदान रहा।

कहानी के क्षेत्र में संवेदना और शिल्प को लेकर कोई परिवर्तन इस काल की कहानियों में दिखाई नही देता। डॉ. ओम प्रकाश गुप्त, अर्जुन नाथ रैणा, दीदार सिंह, ओम गोस्वामी, बलनील देवम्, राज भल्ला, हरिकृष्ण कौल और नरेन्द्र खजूरिया के कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। 1980 के दशक में जम्मू क्षेत्र की संस्था 'युवा हिन्दी लेखक संघ' अस्तित्व में आई और 'घोषवती' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। इसी संस्था द्वारा जम्मू के कवियों की कविताओं का संग्रह 'चौराहे पर खड़े बाहर चेहरे' और कहानी संग्रह 'प्रिज्मों में बटी किरणें' का प्रकाशन हुआ। हिन्दी साहित्य मंडल द्वारा 'मधुरिमा' शीर्षक से पत्रिका ओर कहानियों का संकलन 'देवदार की छाया तले' का प्रकाशन हुआ। इन प्रकाशनों के साथ कुछ नए कहानीकार सामने तो आए, लेकिन कहानी-कर्म को लेकर आगे नहीं बढ़ पाए। नाटक रेडियो तक ही सीमित रहा।

सन् 2000 के बाद का समय युवा कवियों का है। अपनी कृति 'सच तो अब भी यही है' के साथ रुण बजाज, 'समय के धागे' के साथ शेख मोहम्मद कल्याण, 'नदी रोशनी की' के साथ कुलविन्दर सिंह 'मीत' 'प्रेम पवन की पहली थपकी' के साथ सुनील शर्मा 'पृथ्वियां' के साथ अरुणा शर्मा और अनिला सिंह चाढ़क काव्य-परिदृश्य में हलचल मचाते हैं। इन्हीं के साथ संजीव भसीन, राज जम्वाल, कपिल अनिरुद्ध, योगिता यादव, कृष्ण कुमार शर्मा, कमल चौधरी, सुधीर महाजन, अमिता मेहता, पवन खजूरिया, निदा निवाज़, सतीश विमल और कुंवर शक्तिसिंह ने मैदान संभाला है। पहले से लिख रहे कवियों में से अशोक कुमार, मनोज शर्मा, महाराज कृष्ण संतोषी, ओम प्रकाश गुप्त और अग्निशेखर काफी सक्रिय हैं।

उपर्युक्त कवियों को प्रवृति की दृष्टि से किसी चौखटे में नहीं बांधा जा सकता। इनका अनुभव-संसार व्यापक है। वस्तुतः लगभग 1975 से लेकर अभिन्न रूप से जुड़ी है। इधर जाने वाली कविताओं में बाज़ारवाद का विरोध, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, भ्रष्ट राजनीति का विरोध, आम आदमी की विवशता, व्यक्ति-संबंधों का खुलासा, जीवन-संघर्ष आदि कई विषय प्रत्यक्ष हैं। इन कवियों के संवेदन की कटार भी बहुत तीखी है।

कथा साहित्य के क्षेत्र में संजना कौल, किरण बख्शी, योगिता यादव, आदर्श, क्षमा कौल, नीरु शर्मा और कपिल अनिरुद्ध सक्रिय हैं। प्रगतिशील छात्रों ने नुक्कड़ नाटकों का सिलसिला अभी आरंभ किया है। कुल मिला कर जम्मू-कश्मीर, विशेष रूप से जम्मू में हिन्दी साहित्य की गतिविधियों - गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों और सेमिनारों के संदर्भ में बहुत अधिक हैं । अक्टूबर 2009 में 'युवा हिन्दी लेखक संघ' के अनुरोध पर जम्मू में आए डॉ. नामवर सिंह ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है।

# बोतल संस्कृति

**डॉ. (कु.) मालती जैन**
**सेवानिवृत्त प्राचार्य,**
**श्री चित्रगुप्त महाविद्यालय, मैंनपुरी(उ.प्र.)**

बहुत दिनों पहले हिन्दी के एक प्रख्यात साहित्यकार का निबन्ध पढ़ा था, जिसमें संस्कृति की चर्चा करते हुए लिखा गया था-संस्कृति वह आम का पेड़ नहीं जिसे मदारी पल भर में अपनी हथेली पर उगा दे, यह किसी जाति की शताब्दियों की सतत एवं सर्वांगीण साधना का फल है..... संस्कृति की जड़ें बहुत गहरी होती हैं ..... वगैरह-वगैरह । तब यही गंभीर चर्चा मेरे ख्याले शरीफ को जंची थी और मैं ऐसे विद्वान लेखक के वक्तव्य से सहमत हो गई थी। पर आज जब मैं आँखें खोलकर अपने चारों ओर के माहौल को देखती हूँ तो संस्कृति के विषय में मेरी यह पूर्व धारणा ''सौफ्टी' की तरह पिघलने लगती है। आधुनिक संस्कृति भले ही मदारी की हथेली पर उगने वाला आम का पेड़ न हो पर निश्चित रूप से यह बोतल-प्रोडक्ट है। कबीरदास की कमलिनी का उद्भव और निवास सरोवर के जल में वास, जल में था और आधुनिक संस्कृति का बोतल के जल में।

आपको मेरा यह कथन कि आधुनिक संस्कृति बोतल की उपज है, मिथ्या प्रतीत हो सकता है लेकिन प्रत्यक्षं किं प्रमाणं ? आप भी मेरी तरह अपनी आंखें खोलकर अपने चतुर्दिक वातावरण पर नजर डालिये और फिर देखिये-आधुनिक संस्कृति कैसे कांच की बोतल में कैद हो गयी है।

आधुनिक पीढ़ी-बच्चों से लेकर बूढ़ों तक-बोतल के पीछे दीवानी है। बोतल के प्रति आधुनिक पीढ़ी का अनुराग जन्म से भी पूर्व गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। परखनली शिशु (Test tube baby) के वैज्ञानिक आविष्कार के उपरान्त अब जिन्दगी का अंकुर बोतल में फटता है, रक्त मांस से निर्मित देह में नहीं। जन्म लेने के पश्चात् बच्चा माँ के स्तन से दूध नहीं पीता। पकड़ा दी जाती है उसके नन्हें-नन्हें सुकुमार हाथों में ''फीडिंग बोतल'' । क्योंकि अपनी ही आत्मा के अंश शिशु को दुग्ध-पान कराकर आधुनिक माँ अपने यौवन अक्षुण्ण रहना चाहिये। अमूल दुग्ध पूर्ण को फीडिंग बोतल से 'आया' द्वारा उदरस्थ करना सभ्य और सुसंस्कृत होने की पहचान है। यह तो गंवार औरतों का काम है कि बच्चों को छाती से चिपकाये फिरे। आधुनिक ''मम्मी'' को इतनी फुरसत कहाँ है कि वह अपने बच्चे को दुग्ध-पान करा सके। उसकी बड़ी व्यस्त दिनचर्या है। टॉमी को टहलना है, क्लब जाना है, पार्टीज अटैण्ड करना है, स्वास्थ्य संगठनों की सभाओं में बच्चें के स्वास्थ्य पर धुआँधार भाषण देना है..... ।

बोतल आतिथ्य-सत्कार का अभिन्न अंग है। दूध-दही की लस्सी को देखकर आधुनिक पीढ़ी को एलर्जी होती है। ये सब Out dated पेय पदार्थ हैं। कोका काला, लिमका, फेन्टा, लेमन, थम्सअप आदि की बोतलों के रंगीन नजारों के बिना किसी भी पार्टी की कल्पना नहीं की जा सकती। इतना ही नहीं स्वागत का परमोत्कर्ष तो ''लालपरी'' की बोतलों की टकराहट में ही होता है। जिन्दगी का सारा मजा इन बोतलों में सिमट आया है। अपने बॉस को रंगीन बोतलों का उपहार दीजिये और बदले में लीजिये मनचाहे प्रमोशन, मनचाहे ट्रान्सफर। किसी साहब के बंगले पर पहुँचाइये लालपरी और फिर देखिये परमिट, कोटा, नौकरी, अनुदान सब कुछ आपके घर पहुँच जायेगा। किसी 'मूडी' कवि के हाथों में थमाइये एक रंगीन बोतल बदले में वह आपको काव्य-रस से सराबोर कर देगा। ''बोतल के बिना न बॉस बस में आता है, और न कवि की सोई सरस्वती जागती है।'' बोतल प्रेरणा का अजब स्रोत है।

घड़ों और नक्काशीदार सुराहियों में कुम्भकार की कला देखने का अवकाश किसे हैं ? इनके पानी में बसी माटी की सौंधी गंध अब हमारी नासिका को रास नहीं आती। हमारे तृषित कंठ को अब केवल फ्रीज की बोतलों का वाटर Suit करता है।

घर आँगन में तुलसी का चौरा अब गांवों में देखा जा सकता है या फिल्मों में (मैं तुलसी तेरे आंगन की) नगरों

और महानगरों के ड्राइंग रूम की शोभा तो बोतलों में उगे ''मनीप्लॉट'' ही चढ़ाते हैं। नदी और तालाबों के किनारे ''हरी घास पर क्षण भर'' बैठकर छोटी बड़ी रंगीन मछलियों की उछल-कूद देखने की फुरसत किसे है ? अब तो मछलियां भी काँच के ''शो केस'' में कैद कर ली गई हैं।

जीवन के प्रत्येक क्रिया-व्यापार पर बोतल का यह आधिपत्य हमें कुछ सोचने को मजबूर करता है। क्या सचमूच आधुनिक संस्कृति बोतल की संस्कृति है ? बोतल को गौर से देखिये- बोतल का मूंह संकरा और पेट बड़ा होता है। बोतल का यह आकार हमारी पूंजीवादी मनोवृत्ति का प्रतीक है। हम भी आज सब कुछ अपने लिये संचित कर लेना चाहते हैं, दूसरों को कुछ देना नहीं चाहते, ''आपन पेट हाऊ कछु न देहै काहू' हमारे जीवन का आदर्श है। पड़ोसी भूखा मरता है तो मरता रहे, हम तो अपने टॉमी को भी ब्रेड और बटर पर पालेंगे। हमारा ''बार्ड रोब'' तो साड़ियों से भरा रहना चाहिये, भले ही फुटपाथ पर चीथड़ों में लिपटी भिखारिन रात को ठंड से ठिठुरकर मर जाये।

आप बोतल के आर-पार बड़ी सरलता से देख सकते हैं, बोतल कुछ छिपाना नहीं चाहती। जो कुछ उसके अन्दर है उसका खुला प्रदर्शन उसे अपेक्षित है। बोतल चाहती है कि उसके रंगीन नजारों पर लोलुप निगाहें टकरायें। आधुनिकता के मोह में हमने भी अपनी लज्जा, शालीनता व संकोच को तिलांजलि दे दी है। हम भी अपना सब कुछ चौराहे पर खुले आम नीलाम करने को तैयार हैं। पुरातन पीढ़ी को न धन के प्रदर्शन की आकांक्षा थी, न विद्वता की धाक जमाने की और न सौन्दर्य का मीना बाजार लगाने की। तब धन उपेक्षा की वस्तु था (Wealth is lost nothing is lost- शेक्स पीयर) । विद्या विनय देती थी (विद्या ददाति विनयं) और चपल सौन्दर्य लज्जा धात्री की उंगली पकड़कर चलता था (मैं उसी चपल की धात्री हूँ, गौरव-महिमा हूँ सिखलाती-''प्रसाद'')। आज वैभव का प्रदर्शन अभिजात्य का द्योतक है। आलीशान वातानुकूलिक बंगला, चमचमाती कारें, कीमती पोशाकें, इर्द-गिर्द घूमते नौकर-चाकर बड़प्पन की निशानियाँ हैं। पुराने लोग जो कुछ भी वे भी दिखाना नहीं चाहते थे, हम जो कुछ नहीं है वह भी दिखते रहने का प्रयास करते हैं। ''रामचरित्र मानस'' जैसे अमर महाकाव्य का प्रणेता ''तुलसी'' ''कवित विवेक एक नहीं मोरे, सत्य कहौ लिख कागद कोरे'' का उद्घोष करता था। आज के टुटपुंजिये लेखक का समस्त कृतित्व केवल ''मैं'' के चारों ओर चक्कर काटता है।

सुन्दरता अब शालीनता के कंधे पर बाँह रखकर नहीं चलती। पारदर्शिता कपड़ों में झांकता यौवन का उभार कामुक निगाहों को प्रतिपल आमंत्रण देता है। सौन्दर्य का मीना बाजार लगता है और उसमें नीलाम होती है-खुले आम नारी की अस्मिता । सौन्दर्य का यह नग्न प्रदर्शन आधुनिकता की माँग है। लज्जा और संकोच रूढ़िवादिता का पर्याय बन गये हैं।

बोतल को आपने गौर से देख लिया न ? अब जरा इसे छूकर देखिये-कितना मसृन स्पर्श है इसका। आप इसमें कुछ भी रखिये- यह अप्रभावित रहती है उससे। यह कुछ नहीं सोखती। पानी डालेंगे आप इस पर, बह जायेगा। माटी के बर्तन में आप जल डालिये, बर्तन जल आर्द्रता को समाहित कर लेगा। हमारा व्यक्तित्व भी बोतल की तरह चिकना हो गया है। आसपास की कोई घटना, कोई क्रिया-व्यापार हमारे मन को नहीं छूता, हमारी संवदेना को नहीं उभारता। ऊपर की मंजिल से आने वाले हंसी के ठहाके और पॉप म्यूजिक नीचे की मंजिल में पड़ी लाश का मजाक उड़ाते हैं। पंजाब या आसाम का नरसंहार हो, या श्रीलंका का बर्बर हत्या काण्ड, भीषण विमान दुर्घटना हो या भूकम्प का ताण्डव नृत्य-मानवीय विनाश के इन समाचारों का स्थान केवल कागज के अखबारों में है, हाड़-मांस के धड़कते हमारे दिल के किसी कोने में इनके लिए जगह नहीं है। हम-निस्पृह हैं, अनासंग हैं, वीतराग हैं, धर्म निरपेक्ष हैं, तटस्थ हैं। वह जमाना गया जब मौत का किसी भी घर में मातम छा जाने पर सारा गांव आंसू बहाता था। गांव की किसी भी बिटिया की विदाई सारे गांव की स्त्रियों की आँखों से गंगा-यमुना बहा देती थी। अपने ही दुख दर्द अब क्या कम हैं, जो जमाने का दुख-दर्द बाँटते फिरें ।

बोतल और आधुनिक पीढ़ी के इस साम्य विवेचन के उपरान्त आप भी मेरे साथ स्वर में स्वर मिलाकर कहेंगे कि आधुनिक संस्कृति बोतल-संस्कृति है- वो संस्कृति जो हमें तल की ओर ले जा रही है।

# लोक

**डॉ. शिवशंकर मिश्र**
**महाविद्यालय अजीतमल, औरैया (उ.प्र.)**

'लोक' शब्द संस्कृत की 'लोकदर्शने'

धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ है (सिद्धान्त कौमुदी, पृ0 417), जिसका अर्थ है देखना। 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद के 'पुरूष सूक्त' में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान-दोनों अर्थो में किया गया है-

'नाभ्या आसीदन्तरिक्षं
शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पदभ्यां भूमिर्दिशः
श्रोत्रात्तथा लोकान् अकल्पयन्त् ।।

(ऋ. 10/40/24)

उपनिषदों में अनेक स्थानों में 'लोक' शब्द व्यवहार हुआ है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में कहा गया है कि यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में यह प्रभूत या व्याप्त है। प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह कौन जान सकता है ?

'बहुव्याहितो वा अयं बहुशो लोकः।
क एतद् अस्य पुनरीहितो अयात्।।

(जैमिनीय उ.ब्रा. 3/28)

पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी'

में 'लोक' तथा 'सर्वलोक शब्दों का उल्लेख किया है। इनमें 'ठञ' प्रत्यय लगाने पर 'लौकिक' तथा 'सार्वलौकिक' शब्दों की निष्पत्ति होती है।

पाणिनि ने वेद से पृथक लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अनेक शब्दों की निष्पत्ति बताते हुए लिखा है कि वेद में इसका रूप अमुक प्रकार का है, परन्तु लोक में इसका स्वरूप भिन्न प्रकार का समझना चाहिए। वररूचि ने अपने वार्तिकों में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है।

(सि.कौ.पृ.297/6)

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। (डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'जनपद', वर्ष-1, अंक-1, पृ. 65)

# ब्रज की लोकोक्तियाँ

**डॉ. शिवशंकर मिश्र**
**महाविद्यालय अजीतमल, औरैया (उ.प्र.)**

मौसम, कृषि, नीति और स्वास्थ्य-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ थोड़े हेर-फेर के साथ पूरे हिन्दी भाषी लोक में समान रूप से प्रचलित हैं, किन्तु ब्रज क्षेत्र में इनके अतिरिक्त कुछ लोकोक्तियाँ प्राप्त हेती हैं, जो अन्यत्र नहीं पायी जाती। इन विशेष प्रकार की लोकोक्तियों के निम्नलिखित प्रकार हैं:-

1. अनमिल्ला
2. अचका
3. भेरि
4. खुंसि
5. औठपाय
6. ओलना
7. गहगड्ड

**अनमिल्ला** में नाम के अनुरूप ही बेमेल बातों का एक साथ उल्लेख हाता हैं। जैसे -

'भार भुजावन हम गये, पल्ले बाँधी ऊन।
कुत्ता चरखा लै गयौ, काए ते फटकूँ चून।।

**अचका** में आश्चर्य की प्रधानता रहती है। जैसे -

'पीपर पै ते उड़ी पतंग, जौ कहुँ लगि जाय मेरे अंग।
मैं ने दै दई बजर किवार, नहीं उड़ि जाती कोस हजार।।'

**भेरि, खुंसि, औठपाय:-**

इन तीनों का सामान्य धर्म यह है कि ये सभी ऐसी बातों का दिग्दर्शन कराती हैं, जो अवांछनीय होती हैं। भेरि का अन्तिम चरण एक समान होता है। वह है -

'गड्ुओ गढ़त भेरि है गयी।'
राँड नारि ने पहर्‌यौ काँचु
अब मति जानौ वाकौ साँचु।
सालू पहिरि पैठें कू गयी
गड्ुओ गढ़त भेरि है गयी।।'

खुंसि ऐसी ही बातों को कहने का दूसरा ढंग है। इसमें तीन दोषों की गणना की जाती है। जैसे-

'एक तो बूढ़ी गाय,
दूसराँ कूँ खेत खाय।
तीसराँ कूँ दूध हीन,
खुंसि ऊपर खुंसि तीन।।'
अन्तिम चरण सब में समान होता है।

जिस प्रकार 'खुंसि' में स्वाभाविक दोषों की गणना होती है, उसी प्रकार 'औठपाय' में जान-बूझकर किये गये कुछ कार्यों का परिणाम दिखाया जाता है। जैसे

'कुआँ पनघट जाइकें
पाँव दिये ललराय।
पीठ भिड़ावै सोति पै,
जेइ मरिबे के औठपाय।।'

**ओलना :-** इस प्रकार की लोकोक्ति में सुख देने वाली वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा निविष्ट रहती है।

जैसे- 'रिमझिम बरसै मेह कि ऊँची रावटी,
कामिनि करै सिंगार कि पहिरै पामटी।
बारह बरस की नारि गरे में ढोलना
इतनो दै करतार फेरि ना बोलना।।'

**गहगड्ड:-** इसमें दो लोगों के संवाद रहते हैं। एक व्यक्ति सुख के साधनों का सुझाव रखता है और दूसरा उन सुझावों को तब तक अस्वीकार करता जाता है, जब तक उसकी अभीष्ट वस्तु न प्रस्तुत की जाय। जैसे - ''किनक कटोरा घ्यौ चना,
गुर बनिये की हट्ट।
तपूँ रसोई जेओं मुसाफिर,
यों माचै गहगड्ड।।
न हीं गहगड्ड नहीं गहगड्ड।'

डॉ. सत्येन्द्र ने अपनी पस्तक 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' (पृ.237-242) में इन लोकोक्तियों का संकलन प्रस्तुत किया है।

# कौन चुका पायेगा कीमत.....?

**श्री कृष्ण निर्मल**
**राष्ट्रीय कवि, नई दिल्ली**

प्रसंग - पुत्र की प्राप्ति माँ की सर्वोत्तम कामना है, जिसकी पूर्ति हेतु वह धर्म व सम्प्रदायों की सीमाओं को पार करती हुई हर सम्भव प्रयास करती है। परिवार की अखण्डता माँ के उत्तम धैर्य व पत्नी की उत्कृष्ठ समझ पर निर्भर करती है। पुरूष को आदर्श समीक्षक होना चाहिए।

सन्तानों की आश लिए वह भटकी पीर मारों पर।
छुपकर काम किये ऐसे भगतों के बहुत इशारों पर।।
जिनके रहस्य वह खोल न पाई अपने पति के भी आगे।
कारण, मन चाहे लालों के सपने थे आखों में जागे।।
जिनमें उठ रही कल्पनाएँ, सौरभ-सिक्त बहार की।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (1)

देवालयों और दरगाहों पर भी शीश झुकाये थे।
व्रत रखे किये पूजन अर्चन, आरती सुमंगल गाये थे।।
धागे बाँधे और कहा, ''ये गाँठे तब ही खोलूँगी ।
पा लूँगी जब पुत्र रत्न और हृदय ताप सब धोलूँगी''।।
तब मैं ही जान सकूँगी कीमत, बेटे के दीदार की।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (2)

गोदभरी गूँजने लगी, सूने आँगन में किलकारी
सानन्द हुआ घर लगी महकने आशाओं की फुलवारी
चन्द्रकला की तरह पल्लवित विकसित सुत का गात हुआ
जिसे देख खुश होती ज्यों, जीवन में नवल प्रभात हुआ
कहती कौन करेगा समता? ममतामयी दुलार की ।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (3)

पल-पल में स्वच्छ विस्तरे पर, माता उसे सुलाती थी।
और मधुर लोरी गा-गाकर, झूला उसे झुलाती थी।।
हुआ न सक्षम कभी कठिन श्रम, सुत से ध्यान हटाने में।
तत्पर रही सदा बेटे को मीठा दूध पिलाने में।।
कौन तपस्वी ले पायेगा पद्वी माँ के प्यार की।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (4)

बड़ा हुआ विद्यालय भेजा, उत्तम शिक्षा पाने को।
और किये शुभ यत्न पुत्र को, मानव-रत्न बनाने को।।
निज कुमार के सम्वर्धन में, तिल-तिल देह गला डाली।
थक गये अंग रह गई अकेली, ज्यों तरू की सूखी डाली।।

फिर भी तोड़ी डोर न उसने आशा के संचार की।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (5)
किया विवाह खुशी से सुत का, पुत्रबधू घर में आई।
कुछ कुसंस्कार थे बेटे में कुछ लेकर पुत्रबधू आई।।
फलतः आते ही हुए अलग कैसी माँ की किस्मत फूटी।
जीवनभर जुटती रही, अन्त में दिल के टुकड़े ने लूटी।।
देखों! कितनी कर दुर्दशा बेटे के व्यवहार की।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (6)
धैर्य न छोड़े कभी आप, चाहे आपदा भयंकर हो।
पीना गरल पड़ेगा तुमको, बनकर ज्यों शिवशंकर हो।।
यह विचारकर पुत्रबधू से सासू आँसू भर बोली।
पुत्रवती तुम बनो और दी खोल दुआओं की झोली।।
और सुना दी पूर्ण कहानी, बेटे के संसार की।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (7)
पति का सुन इतिहास सास से, पुत्रवधू ऐसे बोली।
''ये रहें भले ही अलग, किन्तु मैं पूर्ण आप की होली।।''
पत्नी के सुनबैन गिरा वह अपनी माँ के पावों में।
यूँ लगा कि जैसे मरहम लगता घायल के घावों में।।
आंसू लगे बताने कीमत, माँ के अनुपम प्यार की।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (8)
सुनो बालकों! जिन लोगों ने माता-पिता सताये हैं।
सर्वविदित उन लोगों ने, जीवनभर कष्ट उठाये है।।
जननी हो या जन्मभूमि हो, है दोनों ही मातायें।
करनी होगी पूर्ण तुम्हें, इन दोनों की अभिलाषाएं।।
क्योंकि आप पर टिकी हुई हैं, नजरें इस संसार की।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (9)
बढ़ता नित आनन्द असीमित, बच्चों जहाँ सुभति होती।
रहते दुःख दारिद्रय सनातन देखो। जहाँ कुमति होती।।
अतः सुसंस्कृत होकर बच्चों अपनी माँ को प्यार करो।
पत्नी को सहचरी बनाकर, अपना रोशन नाम करो।।
तब कुछ कीमत चुका सकोगे! माँ के मधुरिम प्यार की।
कौन चुका पायेगा कीमत .....।। (10)

----0---

# हिन्दी साहित्य में समस्यापूर्ति परक रचनाएँ

डॉ. भारतेन्दु कुमार पाठक
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

समस्यापूर्ति शब्द संस्कृत साहित्य से हिन्दी में आया है। कालिदास व धाराधिपति भोज के राजकवियों से संबंधित समस्यापूर्ति परक रचनाएँ सुनी जाती हैं। जैसे- घटं घटं टं टं टम् टम्-।

कालिदास ने कहा भी-

''राज्यभिषेक जलमानयन्त्या .....

'अर्थात्-राजा के स्नानार्थ जलपूर्ति घट परिचारिका के द्वारा सोपान से चढ़ाया जा रहा था- अचानक घड़ा छूट कर शब्द कर रहा है-'टम् टम् टम् ।'

हिन्दी में आदि काल से ही यह प्रवृति दिखायी पड़ती है। मध्यकालीन कवियों में गोस्वामी तुलसीदास में यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है-यथा-कपि संकट मोचन नाम तिहारो की पूर्ति। उसी प्रकार राजिवलोचन राम चले तजि बापु को राज बटाउ की नाई की पूर्ति-और भी' अवधेश के बालक चारि सहातुलसी मन मंदिर में बिहरैं।' इस ढंग के दो छन्द हैं। समस्या पूर्ति की परम्परा क्षीण रूप में प्रत्येक युग में दिखायी पड़ती है, किन्तु 'भारतेन्दु-युग' में यह प्रवृत्ति विशेष रूप में दृष्टिगत होती है। गुजरात निवासी गोविन्द गिल्लाभाई ने' समस्यापूर्ति प्रदीप नामक ग्रन्थ निकाला था। ''भारतेन्दु युग में'' भारतेन्दु ने कवि-समाज भी स्थापित किए थे, जिनमें समस्यापूर्तियाँ बराबर हुआ करती थीं। दूर-दूर से कवि लोग आकर उसमें शमिल हुआ करते थे। पं. अम्बिंकादत्त व्यास ने अपने कवि-जीवन का आरंभ कविता-वद्धिनी-सभा में पूरी अमी की कटोरिया सी, चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी।' समस्या की पूर्ति करके किया था और इस पर उन्हें 'सुकवि' की उपाधि प्राप्त हुई थी। उनके पिता दुर्गादत्त व्यास भी ब्रजभाषा के रसिक कवि थे उनके द्वारा संकलित समस्यापूर्ति-सर्वस्व गोविन्द गिल्लाभाई का समस्यापूर्ति-प्रदीप और सीतापुर-निवासी गंगाधर 'द्विजगंग का' समस्या-प्रकाश उल्लेखनीय है।''

''नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह के कविता-संग्रह 'पंचरत्न' में उनकी समस्यापूर्तियाँ भी संगृहीत हैं।'' ''भारतेन्दु-युग में गृहित रीतिकाली काव्यशैलियों में 'समस्यापूर्ति' पर्याप्त लोकप्रिय काव्यपद्धति थी। कवियों की प्रतिभा और रचनाकौशल को परखने के लिए कवि-गोष्ठी और कवि-समाजों में कठिन-से-कठिन विषयों पर समस्यापूर्ति करायी जाती थी। भारतेन्दु द्वारा काशी में स्थापित कविता-वर्द्धिन-सभा, कानपुर का रसिक-समाज, बाबा सुमेरसिंह द्वारा स्थापित कवि-समाज आदि ऐसे मंच थे,- कानपुर के रसिक-समाज में पपीहा जब पूछहै पीव कहा की प्रतापनारायण मिश्र द्वारा की गयी पूर्ति कितनी हृदयस्पर्शी बन पड़ी-''

''बन बैठि है मान की मूरति-सी, मुख खोलत बोलैन नाहीं न हां यह व्याहि तबै बंदलैगी कछू, पपीहा जब पूछिहै पीव कहां।

उसी प्रकार धुरबान की धावन में की पूर्ति भी मिश्र जी ने की थी।

प्रेमधन जी भी इस प्रकार की-कविता किया करते थे। 'चरचा चलिबे की चलाइए ना' को लेकर बनाया हुआ उनका यह सबैया देखिए-

''बगियान बसंत बसेरो कियो, बसिए, तेहि त्यागि तपाइए ना।।

''पं. अंबिकादत्त व्यास और बाबू रामकृष्ण वर्मा (बलबीर) के उत्साह से काशी कविसमाज चलता रहा। उसमें दूर-दूर के कविजन भी कभी-कभी आ जाया करते थे। समस्या कभी-कभी बहुत टेढी दी जाती थी-जैसे -सूरज देखि सकै रहिं घूग्घू, मोम के मंदिर माखन के मुख बैठे हुतासन आसन मारे।' उक्त दोनों समस्याओं की पूर्ति व्यासजी ने बड़े विलक्षण

ढंग से की थी।''

भारतेन्दु ने अँखियाँ दुनियाँ नहिं मानति ह और मरहूँ पे आँखे खुली ही रहिजायेगी' की सुन्दर पूर्ति की हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय ने भी कवि समाज की समस्याओं की पूर्ति की है। 'राय देवीप्रसाद' पूर्णजी ने कुछ दिनों तक 'रसिकवाटिका नाम की एक पत्रिका भी चलाई, जिसमें समस्यापूर्ति और पुराने ढंग की कविताएँ छपा करती थी। पं. नाथूराम शर्मा शंकर पद्यरचना में अत्यन्त सिद्ध हस्त थे।--समस्यापूर्ति वे बड़ी ही सटीक और सुन्दर करते थे जिनसे उनका चारों ओर पदक, पगड़ी, दुशाले आदि से सत्कार होता था। 'कवि व चित्रकार' काव्यसुधारक 'रसिक मित्र आदि पत्रों में उनकी अनूठी पूर्तियाँ और ब्रजभाषा की कविताएँ बराबर निकला करती थीं। जैसे- ''जो पै वा वियोगिन की आह कढ़ जाएगी।''

हरिश्चन्द्र मैगजीन में, शिव गोविन्द कवि द्वारा की गयी-समस्या पूर्ति उपलब्ध है। ''किसी ओढ़नी बैजनी पैजनी पावन'' परक सुन्दर पूर्ति की गयी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि 'भारतेन्दु-युग व रीतिकाल उत्तरार्द्ध में समस्या पूर्ति परक साहित्य अधिक रचा गया। समस्या पूर्ति द्वारा बड़ी सुन्दर-सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत हुई। सामान्य कवि उतनी कुशलता व सुन्दर रचनाएँ नहीं कर पाता, अत: प्रतिभा रचनाकार समस्याओं की सजीव मार्मिक पूर्ति प्रस्तुत कर पाता है कला की समष्टि प्रस्तुति प्रतिभा का वैशिष्ट्य है। प्रति उपसर्ग का योग 'भा' धातु से होकर प्रतिभा शब्द निर्मित हुआ है, 'भा' प्रकाश वाचक भी है-अत: रचनाकार प्रतिभा के आलोक में सटीक शब्दों का चयन कर कलात्मक प्रस्तुति प्रस्तुत करना है। कहा भी गया है कि कविता करना अनंत जन्मों के पुण्य का फल है- कविता भी एक तपह$^{3}$-रचनाकार तप स्वरूप काव्य का निर्माण करता है। कहा भी गया है--

'एक लहै तपपुंजन के फल' ।

अत: समस्याओं की सुन्दर पूर्ति प्रतिभ रचनाकार ही कर सकता है, क्योंकि शब्दों का योग, समस्याओं को अपने में एक रस बना लेता हे, अपितु वह पृथक दृष्टिगत होता है। सारांश यह है कि हिन्दी में समस्या पूर्ति परक काव्य अपनी समृद्धता की वृद्विका परिचायक है। अत: साहित्य का भण्डार इस प्रवृत्ति के कारण कभी भी रिक्त नहीं होगा।

अपितु सहृदय-हृदय को आकृष्ट करता रहेगा। अत: समकालीन रचनाओं को भी इस परम्परा को गतिशील रखने में सहयोग करना चाहिए।

## माँ बाप की रुसवाई

मंदिर में पूजा भगवान को
दान किया वेशुमार।
इक बार न पूछा उन माँ बाप को
जिनके तुम हो अवतार।।
दूसरों के साथ की बहुत हमदर्दी
बहुत जताया प्यार।
लेकिन जिन्होंने तुम्हं पाला पोसा
उनको दिया दुत्कार।।
खुद को जगाकर जिसने तुम्हें
अपनी बाहों में सुला दिया।
आज उस माँ बाप को इक बिस्तर
के लिए रूला दिया।।
अच्छे बुरे हर कर्म किए तुम्हारे लिए।
इक बाप ने तुम पर आने ना दी कोई आँच
लेकिन उसका दिल तूने तोड़ा ऐसे जैसे तोड़े
कोई काँच।
सब रिश्तो को भूलाकर हर पल
रहे तुम्हारे साथ जैसे दिया और बाती।
लेकिन इक पल में उनको भूला दिया।
जिन्दगी में तुम्हारी आया जब नया जीवन
साथी।।
कद्र माँ बाप की अगर कोई जान ले।
अपनी जन्नत को पहचान ले।।

**बब्ली**
**स्थापना अनुभाग**
**आई.आई.आई.एम, जम्मू**

# देवनागरी लिपि : विकासक्रम एवं प्रासंगिकता

**डॉ.हरीश कुमार सेठी, प्रोफेसर,**
**इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,**
**नई दिल्ली**

किसी भी भाषा में अभिव्यक्त किए गए भाव, विचार, संवेदना आदि को लिखित रूप देने में लिपि का विशेष महत्व है। लिपि ही वह माध्यम है जिसके द्वारा सृजित ज्ञान को संरक्षित रख पाना संभव होता है। लिपि भाषा को स्थायित्व प्रदान करती है, उसे जीवंत बनाए रखती है और अमरता प्रदान करती है। लिपि-विहीन भाषा का केवल समकालीन महत्व है, अस्तित्व है। किंतु लिपि वर्तमान में तो महत्व है ही, संचित ज्ञान-राशि को भविष्य को भी पहुँचाने की दृष्टि से भी इसकी उपादेयता सिद्ध है। विज्ञान-प्रौद्योगिकी, साहित्य एवं कला आदि क्षेत्रों में मानव की समस्त बौद्धिक उपलब्धियों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषा का लिखित रूप में सुलभ होने में लिपि का महत्व निहित है।

लिपि के परिणामस्वरूप हमें हजारों वर्ष पूर्व रचित वेद, रामायण, महाभारत, उपनिषद, अष्टाध्यायी, जातक कथाएँ आदि उपलब्ध हैं और हम आज आद्याचार्य भरतमुनि, पाणिनि, व्यास, भवभूति, वाल्मीकि, कालिदास, चरक, सुश्रूत आदि अनगिनत विद्वानों के साहित्यिक/चिकित्सा संबंधी ग्रंथों से परिचित हैं। यही स्थिति विदेशी विद्वानों-साहित्यकारों के साहित्य की भी है। लिपिबद्ध होने की वजह से शेक्सपियर, बर्नार्ड शा, मिल्टन, होरेस, अरस्तू, इलियट, कॉलरिज, ड्राइडन आदि अनेक विदेशी विद्वानों की कृतियाँ भी उपलब्ध हैं। वस्तुतः लिपि ही वह माध्यम है जिसने देश-काल के बंधन को दूर कर भाषा को चिरस्थायी रूप प्रदान किया है। लिपि के अभाव में भाषा मृतप्रायः है।

लिपि के विकास की मुख्य रूप से तीन अवस्थाएँ मानी जाती हैं-चित्र लिपि (Pictographic Script), भाव संकेत लिपि (Idiographic Script), और ध्वनि लिपि (Phonetic Script)। भावों को चित्र अथवा रेखाचित्र के द्वारा व्यक्त करना 'चित्र लिपि' थी। उदाहरण के लिए , सूर्य के लिए सूर्य का चित्र बना देना या फिर पेड़ के लिए पेड़ का चित्र बना देना। चित्र लिपि से आगे चलकर 'भाव लिपि' विकसित हुई। इस लिपि में चित्रों का स्थान प्रतीकात्मक चिह्नों ने ले लिया। यानी इसमें चित्र न बनाकर वस्तुओं के लिए प्रतीकात्मक चिह्न बनाए जाने लगे। इन चिह्नों को वस्तुतः इस आधार पर चित्र लिपि का ही विकसित रूप कहा जा सकता है कि चित्रों को क्रमशः सम्बद्ध भावों के लिए प्रतीक मान लिया जाने लगा। कालांतर में भाव लिपि से 'ध्वनि लिपि' का विकास हुआ। ध्वनिलिपि में चिह्नों का संबंध भावों से न होकर ध्वनियों से हो गया। ये ध्वनियाँ ही भावों अथवा वस्तुओं को व्यक्त न करके उनके लिए प्रयुक्त नामों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो गईं।

विश्व की लिपियों का संबंध लिपि की इसी तीसरी अवस्था अर्थात ध्वनि लिपि से है। ध्वनि लिपि दो प्रकार की होती है -'वर्णात्मक लिपि' (Alphabetic Script); और 'अक्षरात्मक लिपि' (Syllabic Script)। वर्णात्मक लिपि में चिह्न केवल एक ध्वनि को व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए, M = म्, N = न्, G = ज्। अक्षरात्मक लिपि में लिपि-चिह्न अक्षर को व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए, ज = ज्+अ, स = स्+अ, त =त्+अ। रोमन लिपि वर्णात्मक है, जबकि देवनागरी या भारत की अन्य सभी लिपियाँ अक्षरात्मक हैं। देवनागरी लिपि विकास की अंतिम अवस्था अर्थात अक्षरात्मक लिपि की स्थिति को ही दर्शाती है। अक्षरात्मक लिपि में प्रयुक्त प्रत्येक वर्ण एक अक्षर को घोषित करता है। देवनागरी के प्रत्येक वर्ण का एक निश्चित स्वनिमिक नियम होता है। इस कारण किसी भी शब्द अथवा अक्षर के सही-सही उच्चारण बोध हो जाने पर देवनागरी लिपि में लिखने के नियमों से परिचित कोई भी व्यक्ति उसे सही रूप में लिख सकता है।

## देवनागरी लिपि : उद्‌भव और विकास

भारत में अनेक भाषाएँ-बोलियाँ बोली जाती हैं। इनमें से कई भाषाएँ और बोलियाँ काफी समृद्ध एवं समुन्नत हैं। भाषायी विभिन्नता के समान, भारत में लिपि के स्तर पर भी विभिन्नता पाई जाती है। एक अनुमान के अनुसार यहाँ 26 लिपियों का प्रयोग होता है। लेकिन उर्दू को छोड़कर आधुनिक भारत की समस्त लिपियों का मूलाधार ब्राह्मी लिपि है। इन समकालीन प्रचलित लिपियों को ब्राह्मी लिपि की शाखाएँ कही जा सकता है।

ब्राह्मी लिपि पाँचवीं-छठी शताब्दी में अस्तित्व में आ चुकी थी। जबकि इस दौरान कुछेक अन्य लिपियों के साथ-साथ खरोष्ठी लिपि भी चलन में थी। खरोष्ठी लिपि पश्चिमोत्तर प्रदेश की लिपि थी और शेष भारत में ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी। व्यापक प्रचलन के कारण और खरोष्ठी आदि अनेक लिपियों के बावजूद बौद्ध और जैन धर्म-प्रचारकों ने अपने धर्म-प्रचार और ग्रंथों के निर्माण के लिए ब्राह्मी लिपि को ही प्रमुख माध्यम बनाया।

संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के लिए ब्राह्मी लिपि लगभग 500 ई.पू. से लेकर 350 ई. तक प्रचलित रही। उल्लेखनीय है कि इस दौरान ब्राह्मी लिपि न केवल भारत में ही बल्कि अन्य अनेक पड़ोसी देशों में भी प्रयुक्त हो रही थी। अशोक के शिलालेखों पर आज भी इसके नमूने उपलब्ध हैं। आगे चलकर चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्राह्मी दो शैलियों में विभक्त हो गई। इन शैलियों को 'उत्तरी शैली'; और 'दक्षिणी शैली' कहा जाता है।

उत्तर भारत की सभी परवर्ती लिपियों का विकास ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शैली से और दक्षिण भारत की सभी परवर्ती लिपियों का विकास ब्राह्मी लिपि की दक्षिणी शैली से हुआ। कालांतर में इन लिपियों के प्रचलित रूपों में अंतर होने लगा। उत्तरी शैली के रूप पुराने रूप के समीप थे, जबकि दक्षिणी रूप धीरे-धीरे विकसित हो भिन्न हो गए। ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शैली से गुप्त लिपि, कुटिल लिपि, प्राचीन नागरी और शारदा लिपि का विकास हुआ तथा दक्षिण शैली में तेलुगु-कन्नड़ लिपि, ग्रंथ लिपि, तमिल लिपि, कलिंग लिपि, मध्यदेशी लिपि और पश्चिमी लिपि विकसित हुई।

ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शैली से 'गुप्त लिपि' का विकास हुआ। गुप्त लिपि के अनेक वर्णो की आकृति देवनागरी लिपि के वर्णो से मिलती-जुलती है। गुप्त लिपि में वर्णो की शिरोरेखा का स्पष्ट रूप से प्रयोग मिलता है। छठी शताब्दी तक आते-आते गुप्त लिपि में भी बहुत अधिक बदलाव आ गए। इसलिए इसके परिवर्तित रूप का नाम 'कुटिल लिपि' रखा गया। स्वरों की मात्राओं की आकृति कुटिल (टेढ़ी) होने के कारण इसका नाम 'कुटिल लिपि' पड़ा। छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक संपूर्ण उत्तर भारत में यह लिपि प्रचलित थी।

इसी कुटिल लिपि से अन्य अनेक आर्यभाषाओं की लिपियों--शारदा लिपियों-के साथ-साथ देवनागरी या नागरी का भी विकास हुआ जिसे नागरी का प्राचीन रूप कहा जाता है। इस प्रकार देवनागरी लिपि का उद्‌भव आठवीं-नवीं शताब्दी के आसपास कुटिल लिपि से हुआ। यह लिपि आठवीं शताब्दी में दक्षिण में विकसित हुई। बाद में, दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चालुक्य, यादव और विजयनगर के तीन राजकुलों ने भी अनेक शिलालेखों में इसी लिपि का बहुत प्रयोग किया है। इसके अलावा, दक्षिण में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रंथों के लिए अब भी इसका प्रयोग होता है। देवनागरी इस लिपि का उत्तर भारतीय रूप है। दक्षिण भारत में इसे नागरी न कहकर 'नंदिनागरी' कहते हैं। ब्राह्मी की दक्षिण शैली से ग्रंथ लिपि और तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम आदि भाषाओं की लिपियाँ विकसित हुईं। दक्षिण में संस्कृत लिखने के लिए 'ग्रंथ लिपि' का प्रयोग होता था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अपने उद्‌भव काल से ही देवनागरी पूरे भारत में व्यवहृत होने लग गई थी। वस्तुत: ब्राह्मी लिपि का वास्तविक राष्ट्रीय स्वरूप देवनागरी लिपि के रूप में ही अवतरित हुआ है।

संपूर्ण संस्कृत साहित्य अधिकांशत: देवनागरी लिपि में ही रचित है। हिंदी और उसकी अनेक क्षेत्रीय बोलियाँ

देवनागरी में लिखी जाती हैं। इसके अलावा, नेपाली और मराठी भाषाओं के साथ-साथ मुंडा-संथाली आदि अनार्य भाषाओं में भी देवनागरी लिपि ही प्रयुक्त होती है। अब कोंकणी और सिंधी के लिए नागरी लिपि को स्वीकार किया जा चुका है। पश्चिम में गुजराती, उत्तर में डोगरी और पंजाबी भाषा की गुरुमुखी लिपि तथा पूर्व की बंगला, असमिया एवं ओड़िया आदि भाषाओं की लिपियाँ भी देवनागरी से समानता रखती हैं। इस प्रकार देवनागरी को अखिल भारत की विविध भाषाओं के बीच एकता का सूत्र कहा जा सकता है।

ब्राह्मी लिपियों की शैलियों का न केवल भारत में ही बल्कि दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों तक भी पहुँच गई। इन देशों में म्यांमार, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, कम्बोडिया, मंगोलिया, थाईलैंड, नेपाल और तिब्बत शामिल हैं। श्रीलंका में यह लिपि 'सिंहली' नाम से विकसित हुई। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्राह्मी मूल की होने की वजह से न केवल भारतीय लिपियाँ एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं बल्कि दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों की लिपियाँ भी देवनागरी के बहुत निकट हैं। मॉरिशस, फिजी, गुआना, सूरीनाम, ट्रिनीडाड आदि देशों तथा वे देश भी जहाँ भारतीय प्रवासी बहुत बड़ी संख्या में हैं, देवनागरी सहज ही पहुँच रही है। हालाँकि आक्षरिक एवं कुछेक अन्य संदर्भों में कठिनाई की वजह से देवनागरी को मुश्किल माना जाता है जबकि यह रोमन सहित विश्व की अनेक लिपियों से बहुत अच्छी है। यह वस्तुतः सभी भाषाओं के लेखन में सक्षम लिपि है।

नागरी लिपि के महत्व को समझते हुए आधुनिक काल में और विशेष तौर पर स्वतंत्रता-पूर्व की अवधि में भी देश-भर में इसके प्रयोग को बढ़ाने पर बल दिया। इस संदर्भ में राजा राममोहनराय, बंकिमचंद्र चटर्जी, जास्टिस शारदा चरण मित्र, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, श्री केशव वामन पैठे, दयानंद सरस्वती, कृष्णस्वामी अय्यर तथा अनन्त शयनम आयंगर और पंडित गौरीदत्त का नाम विशेष तौर पर उल्लेखनीय है। इनमें से शारदा चरण मित्र ने 1905 में 'लपि विस्तार परिषद' की स्थापना की और 'देवनागर' नामक पत्रिका के माध्यम से नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार का सूत्रपात किया। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, महादेव गोविंद रानाडे, वीर सावरकर, काका कालेलकर, विनोबा भावे, डॉ. श्यामसुंदरदास, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, मुहम्मद करीब छागला और डॉ. गोरख प्रसाद आदि ने नागरी लिपि के महत्व पर बल दिया।

लिपि के महत्व को दृष्टि में रखते हुए भारत के संविधान निर्माताओं ने राजभाषा के साथ-साथ लिपि पर भी विचार किया और संविधान के अनुच्छेद 343(1) में हिंदी को संघ की राजभाषा स्वीकार करने के साथ-साथ देवनागरी को उसकी आधिकारिक लिपि के रूप में मान्यता प्रदान की। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।' किंतु साथ ही यह भी कहा गया है कि 'संघ के शासकीय कार्यों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।' प्रथम पंद्रह वर्षों तक यह भी प्रावधान था कि भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का भी उपयोग हो सकेगा। बाद में 1963 के राजभाषा अधिनियम में अंकों के देवनागरी रूप को आगे नहीं बढ़ाया गया। वैसे, इस अधिनियम में हिंदी की परिभाषा में देवनागरी की स्थिति पर विशेष बल देते हुए यह कहा गया है कि 'हिंदी से वह हिंदी अभिप्रेत है जिसकी लिपि देवनागरी है।' इस प्रकार आज देवनागरी भारत की राष्ट्रलिपि के रूप में अंगीकृत है।

भाषा और लिपि का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि देवनागरी एक आदर्श लिपि है, जिसका बोध अन्य लिपियों से विभिन्न आयामों से तुलना करके होता है। विश्व की समस्त भाषाओं की ध्वनियों को समतुल्य अभिव्यक्त करने में सक्षम यह पूर्णतया विकसित लिपि है। समय के साथ-साथ यह लिपि विकास की विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरी है, इसमें यथोचित संशोधन-परिवर्धन हुए हैं। अन्य लिपियों की तुलना में अधिक प्रचार-प्रसार जहाँ इसके विकास का प्रमुख कारण रहा है वहीं फारसी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओं की ध्वनियों के साथ समन्वयन जैसी समन्वयकारी प्रकृति इसके विकास का मूलाधार है।

# भारत एवं विश्व की सभ्यता और संस्कृति में समन्वय

**विनीत कुमार**
**(आशुलिपिक)**
**आयकर कार्यालय, जम्मू**

विश्व में प्रत्येक देश अपनी सभ्यता-संस्कृति के लिए ही जाना-पहचाना जाता है। सभ्यता और संस्कृति ही हर एक देश की रीढ़ व आधारशिला होती है। उनका इतिहास सुनहरा व अहसास सुहाना होता है। विपरीतार्थ जिन देशों की अपनी कोई सभ्यता नहीं होती, जिनकी अपनी कोई संस्कृति नहीं होती, संसार में उन देशों की कोई पहचान नहीं होती है। और वे देश अपने को ज्यादा समय तक इतिहास के पन्नों पर नहीं रख पाते हैं। उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। उन देशों के संबंध में एक उक्ति कही जा सकती है।:-

''डूबता है तो पानी को दोष देता है
गिरता है तो पत्थर को दोष देता है
इंसान भी बड़ा अजीब प्राणी है
कुछ कर नहीं पाता, तो किस्मत को दोष देता है।''

इसके विपरीत जिन देशों की अपनी एक पहचान होती है, उसकी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति होती है। वे देश सदा-सदा इतिहास के पन्नों पर स्थायत्वि जमाए रहते है। वे देश नित नए कीर्तिमान प्रस्तुत करते हैं। उनका रोज ही इतिहास के पन्नों की बढ़ोत्तरी में योगदान रहता है। किसी भी देश के अस्तित्व में रहने का एक मूल कारण होता है ''उसकी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति''। वेदों में उनकी महिमा का बखान मिलता है तथा पुराणों में उनकी वीरोचित गाथाएं गायी जाती हैं। उन देशों के लिए भी एक उक्ति सुझाई जा सकती है:-

''सूरज की किरणों को चुराया नहीं जाता
फूलों की खुशबू को छिपाया नहीं जाता
कितना भी दूर हो अपने देश से हम
मगर अपनी सभ्यता-संस्कृति को भूलाया नहीं जाता''।

सभ्यता कोई चीज नहीं है, वरन् ये तो एक एहसास है जो कि अपनों को अपनों से जोड़ने की परंपरा है, रीति है, जो सदियों से चली आ रही है और सदियों तक रहेगी। सभ्यता तो मानों जैसे एक वृद्ध पेड़ की जड़ हो, जिसको की मनुष्य मात्र द्वारा सींचा जाता है। यदि जड़ उन्नत होगी तो पेड़ सदा अपनी सुंदरता बनाए रखता है। अत: सभ्यता के बिना जीवन असंभव सा प्रतीत होता है। इस संबंध में एक उक्ति कही जा सकती है:-

''इंसान मिट जाते हैं, यादे नहीं मिटती
मंजिल मिल जाने पर भी राहे नहीं मिटती
मनुष्य कभी अपनी सभ्यता को नहीं भूलता
प्रित छूट जाने पर भी रीति नहीं मिटती''

संस्कृति भी सभ्यता के समान ही होती है, जो एक प्राणी को दूसरे से मिलाए रखने में सहायक होती है। यौं तो हम कह सकते हैं कि सभ्यता और संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। अत: जो भी देश इसका निर्वाह करता है, वह हमेशा ही अपनी सभ्यता का परचम लहराये रहता है। उनकी सभ्यता के बारे में दूर-दूर तक सुना व देखा जा सकता है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति तो विश्व में सबसे प्राचीन भी है कि दूसरे देश इसकी संस्कृति को सबसे अग्रणी मानते हैं। इसके बारे में एक पंक्ति कह सकते है:-

''आप समझते हैं हमने भूला दिया है आपको
ये नहीं समझते सारे संसार में बसा दिया है आपको
कोई भूला ना दे आपकी विरासतों को
इसी डर से पहला दर्जा जीवन में दिया है आपको''

संसार के पटल से निकलने के बाद अब हम भारत-वर्ष/हिन्दुस्तान/आर्यवृत आदि अनेक नामों से विख्यात देश के बारे में तथा उसकी सभ्यता-संस्कृति के बारे में गुणगान करेंगे। जैसा कि आरंभ में ही जिस देश को अनेक नामों से पुकारा गया है। वेदो में, पुराणों में जिसकी महिमा का उत्तरोत्तर बखान मिलता है, जिसे अपनी सभ्यता-संस्कृति के लिए ''सोने की चिड़िया'' जैसे उपनामों से जाना जाता है।

हमारा देश धर्म-निरपेक्ष होने का कदम-कदम पर उदाहरण प्रस्तुत करता रहा है। 28 राज्यों व 7 संघ शासित प्रदेश होने के बावजूद यहाँ की एक ही सांझी भाषा, संपर्क भाषा रही है ''हिन्दी''। इसे देखकर ही किसी रचनाकार ने इतनी बड़ी रचना कर डाली:-

''हिन्द देश के निवासी सभी जन एक हैं
रंग-रूप, वेश-भाषा चाहे अनेक है।''

यहाँ की सभ्यता इतनी रोमांचपूर्ण है कि लिखते-लिखते ही वर्षो लग जाएं, फिर भी इसकी महिमा का शुद्धतम गुणगान शायद ही कोई कर सके। जहाँ के प्रत्येक राज्य को एक भौगोलिक उपनाम से पुकारा जाता है, जैसे- पांच नदियों का राज्य पंजाब व पृथ्वी का स्वर्ग कश्मीर एवं देवों की भूमि अर्थात् उत्तराखंड़ आदि राज्यों को भी इसी प्रकार किसी-न-किसी उपनाम से सुशोभित किया गया है।

जिस देश में ''नदियों को माँ'' का दर्जा तथा गाय को माता जैसे उपनामों से पुकारा जाता है, अनेक जाति-धर्म होने पर भी एक-दूसरे के प्रति आस्थावान हों और दूसरे धर्मो को सम्मान से देखते हों, ऐसा अनूठा देश तो सिर्फ भारत ही हो सकता है, अन्यत्र कोई नहीं। इस संबंध में मौ. इकबाल ने झूमकर एक नगमा प्रस्तुत किया:-

''सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ता हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी, ये गुलिस्तां हमारा-हमारा।''

भारत शब्द को सुनते ही लगता है, मानो कोई गीत हो, कोई परंपरा हो, कोई अदभुत अहसास हो, जो हमें एक-दूसरे के साथ पिरोए रखता है। यहाँ किसी के सुख-दु:ख स्वयं के नहीं, वरन् सभी के सांझे होते हैं। सभी एक दूसरे को अपना तथा अपनत्व का भाव दिखाते हैं। चाहे कितनी भी दूर के हों, परन्तु एक-दूसरे से जब भारतीय बनकर मिलतें हैं, तो लगता है- जैसे सदियों की पहचान हो। ये सिर्फ और सिर्फ भारत-वर्ष जैसे महान् देश की ही परंपरा हो सकती है। एक बात इस बारे में कही जा सकती है:-

''ये आरजू नहीं है कि किसी को भूला दें हम
न ये तमन्ना कि किसी को रूला दें हम
बस दुआ है उस ईश्वर से इतनी कि
जिसको जितना याद करते हैं, उसको उतनी ही याद दिला दें हम।''

भारतीय सभ्यता-संस्कृति इतनी महान् है कि जिसकी महिमा का बखान करते करते जुबान साथ छोड़ सकती है, परन्तु महिमा का पूर्ण बखान नहीं कर सकती। भारत देश में पूर्व से लेकर पश्चिम तक, उत्तर से लेकर दक्षिण तक चाहे कितनी ही बोलियाँ बोली जाती हों, किन्तु भाषा एक ही है जिसको हम बड़े सम्मान से हिन्दी कहते हैं। तो इसी से पता चलता है कि भारतीय सभ्यता व संस्कृति कितनी महान् है ? कितनी उदार है?बल्कि यों कहिए! कि भारत अपनी आदर्शवादिता, सहनशीलता व उन्नति की एक ऐसी मिशाल है, जिसका वर्णन करना मानों खुद में एक अतिश्योक्ति ही हो।

''जय हो हिन्दोस्तान की, भारत देश महान् की
ईश्वर ने जो दिया वरदान
सभ्यता-संस्कृति हो जिसकी शान
जय हो उस संतान की भारत देश महान् की
गंगा-यमुना जिसकी शान
नारी पूजा जिसकी आन
जय हो उस गुणगान की, भारत देश महान् की।
प्यार-सद्भावना जिसका मान
पाते सारे यहाँ सनमान
जय हो उस गुणगान की, भारत देश महान् की।

विश्व के सभी देश अपनी सभ्यता-संस्कृति को ही बढ़ावा देने में लगे हुए है, वहीं भारत आज भी अपने साथ सबकी भाषा एवं सभ्यता-संस्कृति को अपने में संजोए हुए विश्व के पटल पर अडिग खड़ा हुआ है। विश्व की महानतम सभ्यताओं में भारतीय सभ्यता की एक अहम भूमिका है और सदा रहेगी ऐसी हम कामना करते हैं।

# नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू की गतिविधियाँ
# बैठकों का आयोजन नियमित रूप से (जुलाई-दिसम्बर)

- राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) का अनुपालन सभी सदस्य कार्यालयों में बेहतर ढंग से हो रहा है। पत्राचार की वृद्धि सुनिश्चित की गई है, जबकि हिन्दी में प्राप्त पत्रों के उत्तर अनिवार्य रूप से हिन्दी में देने का क्रम जारी है।
- भारत सरकार, राजभाषा विभाग द्वारा जम्मू में हिन्दी भाषा, हिन्दी टंकण एवं आशुलिपि का प्रशिक्षण नियमित रूप से संचालित किया जा रहा है। जम्मू स्थित केन्द्र सरकार के कार्यालयों/बैंकों/उपक्रमों/निगमों के कर्मचारी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं, विभिन्न कार्यालयों में लगभग 95 प्रतिशत कर्मचारी प्रशिक्षित हो चुके हैं और जो कर्मचारी प्रशिक्षण के लिए शेष हैं उन्हें बारी-बारी से प्रशिक्षण के लिए उनके कार्यालयों द्वारा नामित किया जा रहा है।
- राजभाषा विभाग द्वारा जारी नियम/अधिनियम/सूचनाएं सभी सदस्य कार्यालयों को समिति कार्यालय द्वारा समय से प्रेषित किए जाते हैं।
- नराकास के सभी सदस्य कार्यालयों में कम्प्यूटरों के माध्यम से हिन्दी में कार्य सम्पन्न किए जा रहे हैं। यह राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में सदस्य कार्यालयों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।
- नराकास कार्यालय द्वारा प्रतिवर्ष अन्तर्विभागीय भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है साथ ही अन्य प्रतियोगिता एवं संयुक्त रूप से भी कार्यक्रमों में सभी कार्यालयों को आमंत्रित किया जाता है।
- सभी कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है और विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें नियमित रूप से सम्पन्न हो रही हैं और उनके कार्यवृत्त व तिमाही प्रगति रिपोर्ट नियमानुसार समय से प्राप्त हो रही हैं।
- समिति के सभी सदस्य कार्यालयों में 2015 के दौरान हिन्दी दिवस/सप्ताह/पखवाड़ा/मास का आयोजन विशेष हर्षोल्लास के साथ किया गया और उनकी रिपोर्ट नियमानुसार समिति कार्यालय को प्राप्त हुई और हिन्दी की प्रगति एवं विकास में बढ़ोत्तरीहुई है।
- यदि सदस्य कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी समस्याएँ हैं तो अध्यक्ष महोदय द्वारा उन्हें दूर करने के लिए सभी संभव प्रयास किये जाते हैं। समिति बेबसाड www.tolicjammu.org.
- अध्यक्ष नराकास द्वारा सदस्य कार्यालयों को अच्छा कार्य करने पर पुरस्कृत किया जा रहा है साथ ही संबंधित कार्यालय के हिन्दी अधिकारियों/अनुवादकों/हिन्दी सेवियों को अध्यक्ष महोदय द्वारा शील्ड एवं प्रशस्ति पत्र (Merrit Certificate) प्रदान किए जा रहे हैं।
- नराकास, जम्मू के सभी कार्यालयों में हिन्दी पुस्तकों के साहित्य की उपलब्धता है, अर्थात् सभी सदस्य कार्यालयों में पुस्तकालयों की विधिवत व्यवस्था की गई।
- संसदीय समिति द्वारा नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति एवं अन्य सदस्य कार्यालयों में बेहतर ढंग से निरीक्षण कार्य सम्पन्न हो रहे हैं। वर्ष 2014-2015 में कई सदस्य कार्यालयों के राजभाषा निरीक्षण किये गये हैं।
- नगर समिति कार्यालय द्वारा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की समेकित प्रशासन-शब्दावली सभी सदस्य कार्यालयो को उपलबध करवाई गई है।
- प्रतिवर्ष नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति जम्मू को राजभाषा नीति के श्रेष्ठ निष्पादन के लिए राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय से प्रथम पुस्कार प्राप्त हुआ।
- 09-10 जून, 2015 को यूनिकोड प्रशिक्षण कार्यक्रम/अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन कुछ सदस्य कार्यालयों के सौजन्य से नराकास, जम्मू के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ।
- नराकास, जम्मू की आइ.डी. ई मेल तैयार की गयी और इसके माध्यम से पत्राचार किया जा रहा है।
- नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की राजभाषा पत्रिका ज्ञानवार्ता का नियमित प्रकाशन किया जा रहा है।

# नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू

**भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग,**
**सीएसआईआर–भारतीय समवेत औषध संस्थान**
**केनाल रोड, जम्मू तवी–180001**
**के तत्त्वावधान में**
**भारतीय खाद्य निगम, क्षेत्रीय कार्यालय–I, जम्मू**
**एनएचपीसी लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, जम्मू**
**स्टील अथॉर्टी ऑफ इंडिया लिमिटेड, जम्मू**
**राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, जम्मू**
**द्वारा प्रायोजित**

**राजभाषा सम्मेलन/यूनिकोड/कंप्यूटर अनुप्रयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम**

**दिनांक 09–10 जून, 2015**

**संस्थान के निदेशक एवं नराकास अध्यक्ष डॉ. राम विश्वकर्मा कार्यक्रम की अध्यक्षता करेंगे।**

**स्थल : कॉन्फ्रेंस हॉल, सीएसआईआर–आइ.आइ.आइ.एम., जम्मू**

**आपकी उपस्थिति सादर प्रार्थित है।**

**संयोजक : डॉ. अमर सिंह, सदस्य–सचिव, नराकास, जम्मू**
**ई–मेल : amarsingh@iiim.ac.in**
**मो. : 09858629580**

## राजभाषा सम्मेलन/यूनिकोड/कंप्यूटर अनुप्रयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम

मंगलवार 09–10 जून, 2015

उद्घाटन सत्र

| | | |
|---|---|---|
| पूर्वाह्न | 9.30 बजे | पंजीकरण |
| पूर्वाह्न | 9.45 बजे | अतिथियों का पुष्प गुच्छ द्वारा स्वागत |
| पूर्वाह्न | 9.55 बजे | दीप प्रज्ज्वलन एवं सरस्वती वंदना |
| पूर्वाह्न | 10.00 बजे | स्वागत भाषण – डॉ. अमर सिंह, संयोजक |
| पूर्वाह्न | 10.10 बजे | श्री किशोर कुमार, आई.एस.एस., महाप्रबंधक, भारतीय खाद्य निगम, क्षेत्रीय कार्यालय–I, जम्मू श्री ओम प्रकाश, कार्यपालक निदेशक, एन.एच.पी.सी.लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, जम्मू। श्री एन.ए.आज़ाद, शाखा प्रबंधक, स्अील अथॉर्टी ऑफ इंडिया लिमिटेड, जम्मू प्रो. रामानुज देवनाथन, प्राचार्य, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, जम्मू विशिष्ट अतिथियों द्वारा संबोधन |
| पूर्वाह्न | 10.15 बजे | अध्यक्ष महोदय द्वारा संबोधन – डॉ. राम विश्वकर्मा |
| पूर्वाह्न | 10.30 बजे | धन्यवाद प्रस्ताव – पंकज बहादुर, प्रशासनिक अधिकारी, आई.आई.आई. एम द्वारा |
| पूर्वाह्न | 10.35 बजे | जलपान एवं चाय |
| पूर्वाह्न | 11.20 बजे | कंप्यूटर अनुप्रयुक्त प्रशिक्षण सत्र प्रारम्भ श्री विनोद कुमार मिश्र, आई.आई.टी., रूड़की, सहायक महाप्रबंधक, सेन्ट्रल इलैक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड, साहिबाबाद (उ.प्र) –प्रधानमंत्री द्वारा ''मेक इन इंडिया एवं पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन संबंधी कार्य मेंहिन्दी का प्रयोग''। |
| पूर्वाह्न | 12.00 बजे | तकनीकी सत्र : श्री आर.एस.गौतम, उपनिदेशक (राजभाषा), एन.डी.आर.आई., (आई.सी.ए.आर) एवं सचिव, नराकास, करनाल – ''राजभाषा हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर दशतक एवं स्वरूप''। अन्य वक्ताओं द्वारा कंप्यूटर पर प्रस्तुतीकरण। |
| अपराह्न | 1.30 बजे | दोपर भोज – आई.आई.आई.एम कैफे, जम्मू |

## नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू कार्यालय को राजभाषा नीति के श्रेष्ठ निष्पादन के लिए 'प्रथम' पुरस्कार प्रदान किया गया है।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू कार्यालय को राजभाषा नीति के श्रेष्ठ निष्पादन के लिए वर्ष 2014-2015 के लिए 'प्रथम' राजभाषा पुरस्कार दिनांक 16.10.2015 को गुरूनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर के दसमेश ऑडिटोरियम में भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के तत्वावधान में पंजाब के राज्यपाल माननीय प्रोफेसर कप्तान सिंह सोलंकी एवं सचिव, राजभाषा विभाग, नई दिल्ली द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया। यह पुरस्कार संस्थान के निदेशक, भारतीय समवेत औषध संस्थान, जम्मू एवं अध्यक्ष, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू की ओर से संस्थान के प्रशासनिक अधिकारी, श्री पंकज बहादुर ने शील्ड प्राप्त की तथा प्रमाण पत्र वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी एवं सदस्य-सचिव डॉ. अमर सिंह ने प्राप्त किया।

संस्थान के प्रशासनिक अधिकारी, श्री पंकज बहादुर शील्ड प्राप्त करते हुए साथ ही वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी एवं सदस्य-सचिव डॉ. अमर सिंह प्रमाण पत्र प्राप्त करते हुए।

संस्थान के प्रशासनिक अधिकारी, श्री पंकज बहादुर शील्ड प्राप्त करते हुए साथ ही वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी एवं सदस्य-सचिव

**भारतीय समवेत औषध संस्थान, जम्मू कार्यालय को राजभाषा नीति के श्रेष्ठ निष्पादन के लिए 'द्वितीय' पुरस्कार प्रदान किया गया है।**

भारतीय समवेत औषध संस्थान, जम्मू कार्यालय को राजभाषा नीति के श्रेष्ठ निष्पादन के लिए वर्ष 2014-2015 के लिए 'द्वितीय' राजभाषा पुरस्कार दिनांक 16.10.2015 को गुरूनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर के दसमेश ऑडिटोरियम में भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के तत्वावधान में पंजाब के राज्यपाल माननीय प्रोफेसर कप्तान सिंह सोलंकी एवं सचिव, राजभाषा विभाग, नई दिल्ली द्वारा प्रदान किया गया। यह पुरस्कार एवं शील्ड संस्थान के निदेशक, भारतीय समवेत औषध संस्थान, जम्मू की ओर से संस्थान के प्रशासनिक अधिकारी, श्री पंकज बहादुर ने शील्ड प्राप्त की तथा प्रमाण पत्र वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी एवं सदस्य-सचिव डॉ. अमर सिंह ने प्राप्त किया।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू के सदस्य कार्यालय वर्ष 2014-2015 में राजभाषा नीति के श्रेष्ठ निष्पादन के लिए संयुक्त रूप से पुरस्कार का प्रदर्शन।

संयुक्त रूप से राजभाषा पुरस्कार शील्ड एवं प्रमाण पत्र का प्रदर्शन करते हुए।

# नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति जम्मू के यूनिकोड/कंप्युटर कार्यक्रम में पुरस्कार वितरण समारोह की गतिविधियाँ

ISSN 2320 - 2998

CSIR-IIIM

सीएसआईआर- भारतीय समवेत औषध संस्थान, जम्मू

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जम्मू

Design & Printed By :
Jandiyal Printing Press
Ph. : 0191-2553140